RNI-UPBIL/2011/38102

ISSN-2231-5837
DOI - REF. No. IIJIF241001

Indian Journal of Social Concerns

इण्डियन जर्नल ऑफ सोशल कन्सर्न्स

Volume -15 Issue -73 July. - Aug. 2026 Ghaziabad

(कला–मानविकी–समाजविज्ञान–जनसंचार–विधि–वाणिज्य–विज्ञान, वैचारिकी की अंतरराष्ट्रीय द्विमासिक शोध पत्रिका)

A RESEARCH JOURNAL OF HUMANITIES AND SOCIAL SCIENCES

(An International Peer-Reviewed & Refereed Journal)

Journal Impact Factor No. : 8.01

Editor
Dr. RAJ NARAYAN SHUKHLA

Editor in Chief
Dr. HARI SHARAN VERMA

Asstt. Editor
Dr. MUKTA SONI

Sub Editor
Dr. PUSHPA
Dr. BEENA PANDEY (SHUKLA)

Art Editor
Dr. MANISHA VERMA

Managing Editor
Dr. SANGEETA VERMA

Legal Advisor
Dr. JASWANT SAINI
SHRI BHAGWAN VERMA

Joint Editor
Dr. PRIYANKA SINGH
Dr. SUBHASH SAINI

Office Assistant
JITENDER GIRDHAR

Computer Operator
MS. NEHA VERMA

- The responsibility of the originality of the articles/papers shall be of the author.
- The editor does not owe any kind of responsibility in this regard

Dr. Hari Sharan Verma
D.Litt
Editor in Chief

Dr. Raj Narayan Shukhla
Editor

Dr. Sangeeta Verma
Managing Editor

नोटः 1. प्रकाशित आलेखों के विचारों से सम्पादक मण्डल का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
2. सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।
3. शोध–पत्रिका से सम्बन्धित सभी विवाद केवल गाजियाबाद/फरीदाबाद न्यायालय के अधीन होंगे।

**मानविकी शोध पीठ प्रारम्भ सोसायटी,
गाज़ियाबाद द्वारा संचालित**

प्रकाशक : डॉ० राजनारायण शुक्ला, सम्पादक
SH, A-5, कविनगर, गाजियाबाद (उ० प्र०)
दूरभाष : 9910777969
E-mail : *harisharanverma1@gmail.com*
WWW.IJSCJOURNAL.COM
सहयोग राशि (भारत में)
(व्यक्तिगत) (आजीवन 5100 रुपये)
(संस्थागत) (आजीवन 7100 रुपये)

कृपया सहयोग राशि बैंक ड्राफ्ट से ही भेजें।
बैंक ड्राफ्ट, संपादक "इण्डियन जर्नल ऑफ सोशन कन्सर्न्स" के पक्ष में देय होगा। आजीवन सदस्यता केवल दस वर्षों के लिए मान्य होगी। यदि किसी कारणवश पत्रिका का प्रकाशन बन्द हो जाता है तो आजीवन सदस्यता स्वतः ही समाप्त हो जायेगी।

संपादकीय कार्यालय :

1. **डॉ० हरिशरण वर्मा, प्रधान सम्पादक**
F-120, सेक्टर–10, DLF, फरीदाबाद (हरियाणा)121006
harisharanverma1@gmail.com 09355676460
WWW.IJSCJOURNAL.COM

2. **डॉ० राजनारायण शुक्ला, सम्पादक**
SH, A-5, कविनगर, गाजियाबाद (उ०प्र०)

क्षेत्रीय सम्पादक

1. डॉ० वाई.आर. शर्मा, A-24, रेजिडेंसल कैम्पस, न्यू कैम्पस, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू–180001, फोन : 09419145967
2. डॉ0 सलमा असलम, ओल्ड टाउन बारामुला, कश्मीर पिन – 193101, मौ0 9682162934
3. डॉ0 आरती लोकेश P. o. Box 99846, Dubai, UAE 97150-4270752
4. श्री मोहनलाल, 11 अशोक विहार, संजय नगर, पो. इज्जत नगर बरेली (उ०प्र०) फोन : 09456045552
5. श्री जितेन्द्र गिरधर, कार्यालय सहायक 105/26 जवाहर नगर,कॉपरेटिव बैंक के पीछे, रोहतक 09896126686
6. **Dr. Vimla Devi,** Asst. Professor (History) M.B.G.P.G College Haldwani Nainital (Uttrakhand) G-mail address. drvimla2015@gmail
7. डॉ0 प्रिया कपूर, सहायक प्रोफेसर, डी0 ए0 वी शताब्दी कालेज, फरीदाबाद मौ0 9711196954
8. डॉ0 ऊषा रानी,हिन्दी–विभाग हिमाचल प्रदेशविश्वविद्यालय, शिमला
9. विमला टोप्पो, एस0 आर0 इंटरप्राइसेस म्युनिसिपल काम्पलेक्स सोप न0 4, डेरी फार्म, पोर्ट बलेयर, पी0 ओ0 जंगली घाट –744103 साउथ अंडमान
10. डॉ0 राजपाल, सहायक प्रो0 राजकिय स्नातकोत्रर महाविद्यालय,हिसार
11. डॉ0 प्रवेश कुमारी, सहायक प्रो0 (हिन्दी –विभाग), बाबा मस्तराथ, विश्वविद्यालय, रोहतक, (हरियाणा)
12. **डॉ०निर्भय शर्मा**, असिस्टेंट प्रोफेसर (हिंदी) ,संघटक राजकीय महाविद्यालय भदपुरा, नवाबगंज, एम०जे०पी० रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली (उ०प्र०) पिन कोड – 262406. Mobile No: 9634160016 Email: dr.nirbhaysharma@gmail.com

संरक्षक मण्डल :

1. **प्रो0 डॉ0 चक्रधार त्रिपाठी** पूर्व **कुलपति,** उड़ीसा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, कोरापुट, 763004, चलभाषाः 9437568809
2. **डॉ0 दिनेश मणी त्रिपाठी**, प्रधानाचार्य एन0 पी0 के0 आई कालेज, सरदार नगर बसडीला (गोरखपुर) उ0प्र0
3. **डॉ० नरेश मिश्रा** (पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय. रोहतक)
4. **डॉ० वाई.आर.शर्मा,** (राजनीति शास्त्र विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू)
5. **डॉ0 सुंधांशु कुमार शुक्ल** पूर्व चेयर हिन्दी, आई. सी. सी. वार्सा विश्वविद्यालय, वार्सा (पोलैन्ड) मौ0 48579125129
6. **डॉ0 तपन कुमार शण्डिल्य,**पूर्व **कुलपति,** डॉ0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय राँची, (झारखण्ड) 9431049871
7. **डॉ0 जंगबहादुर पाण्डेय** (पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग) रांची विश्वविद्यालय, रांची – 834008 फोन : 09431595318
8. **सुदेश रावत** प्रांचार्या एस. एन. आर. जयराम महिला कॉलेज, लोहार माजरा, कुरूक्षेत्र हरियाणा 36119 (सेठ नारंग राय लोहिया जय राम महिला कॉलेज)
9. Sh. Butta Singh gill, PPS, Dy Superintendent of Police. No 409 ,Street no 7 Ghuman Nagar , Sarhind Road, Patiala Punjab -147001.

परामर्शदात्री समिति :

1. **डॉ0 विजयदत्त शर्मा, पूर्व निदेशक, हरियाणा ग्रन्थ अकादमी पंचकूला(हरियाणा)**
2. **डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल** (पूर्व रीडर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, वर्धमान कॉलेज, बिजनौर)
3. **डॉ० राजकुमारी सिंह,** प्रोफेसर एफ.टी.एम. विश्वविद्यालय लोधीपुर राजपूत मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश 9760187147
4. **डॉ० माया मलिक,**पूर्वप्रोफेसर हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
5. **डॉ० ममता सिहल,** (प्रोफेसर एवं अध्यक्षा अंग्रेजी विभाग) जे०वी० जैन कॉलेज सहारनपुर
6. **डॉ० विनीत बाला,** सहायक प्रो. भूगोल विभाग, वैश्य पी.जी. कॉलेज, रोहतक

संपादकीय विशेषज्ञ समिति :
हिन्दी विभाग:

1. **डॉ० राजेश पाण्डे** (डी.वी. कॉलेज, उरई, जिला जालौन, उ०प्र०)
2. **डॉ0 अनिता, सहायक प्रोफेसर**, (हिन्दी), श्री अरबिन्दो कालिज दिल्ली (सांध्य) मौ0 :8595718895
3. **डॉ० सुशील कुमार शर्मा** (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय शिलांग, मेघालय)
4. **डॉ० शशि मंगला,** पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पलवल
5. **डॉ0 के0डी0 शर्मा,** पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, गोस्वामी गणेशदत्त, सनातन धर्म स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पलवल
7. **मुकेश चन्द्र गुप्ता** (हिन्दी विभाग, एम.एच.पी.जी. कॉलेज, मुरादाबाद)
8. **डॉ० गीता पाण्डेय** (रीडर एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, एस.डी.

9. **डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा** (प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग) गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म महाविद्यालय, पलवल

10. **डॉ0 सुधा चौहान,** पूर्व अध्यक्षा हिन्दी विभाग, वैश्य कालिज, भिवानी

11. **डॉ० रूबी,** (सीनियर सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग कश्मीर

12. **डॉ0 सुमन राठी,** सहायक प्रो0 हिन्दी विभाग, मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर रोहतक

13. **डॉ0 सुधा कुमारी** (हिन्दी विभाग) एन0जी0एफ0 डिग्री कालिज, उडदू, अध्ययन केन्द्र मथूरा रोड, पलवल 982719456

14. **डॉ० एम. के. कलशेट्टी,** हिन्दी विभाग, श्री माधवराव पाटिल महाविद्यालय, मुरूम तह० अमरगा, जिला उस्मानाबाद (महाराष्ट्र)–413605

15. **डॉ० मनोज पंड्या,** व्याख्याता हिन्दी विभाग, श्री गोविन्द गुरु, राजस्थान महाविद्यालय, बांसवाड़ा–327001, मो० 09414308404

16. **डॉ. कृष्णा जून,** प्रो० हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

17. **डॉ. विपिन गुप्ता,** सहायक प्रोफेसर, वैश्य कॉलेज भिवानी

18. **प्रो0 (डॉ0) वन्दना शर्मा, म. न. 2, प्रोफेसर लोंज, किचम सी. डी. एम.,मोदीनगर (उ.प्र.) 201204, मो0 2760411251**

19. **डॉ० जाहिदा जबीन,** (प्रो0 एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर–६)

20. **डॉ० टी०डी० दिनकर,** पूर्व प्रो0 एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग अग्रवाल कॉलेज, बल्लभगढ़)

21. **डॉ० सुभाष सैनी,** (सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग दयालसिंह कॉलेज, करनाल, हरियाणा

22. **डॉ० उर्विजा शर्मा,** (सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग शम्भु दयाल स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, गाजियाबाद

23. **डॉ0 ममता कुमारी,** सहायक प्रो0, डी0 ए0वी0 शताब्दी महाविद्यालय, फरीदाबाद हरियाणा

24. **डॉ० मधुकान्त,** (वरिष्ठ साहित्यकार) 211- L मॉडल टाऊन, रोहतक

25. **डॉ.सुनीता सिंह प्रोफेसर**, हिन्दी मानविकी संकाय, ओम स्टर्लिंग ग्लोबल विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा) 125001

26. **डॉ0 प्रवेश कुमारी,** सहायक प्रो0 हिन्दी बाबा मस्तराथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर रोहतक

27. **डॉ0 राजपाल,** सहायक प्रो0 राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हिसार

28. **डॉ0 प्रवेश कुमारी,** सहायक प्रो0 टिकाराम कन्या कॉलेज, सोनीपत, हरियाणा

29. **प्रो. प्रणव शास्त्री,** प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष–हिन्दी विभाग, उपाधि महाविद्यालय, पीलीभीत – 262 001 उ. प्र. मो.98379 60530 drpranav&pbt23@rediffmail-com

30. **प्रो. राखी उपाध्याय,** प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष – हिन्दी विभाग, डी. ए . वी. कॉलेज, देहरादून – 248 001 (उत्तराखंड) मो. 94111 90099 drrakhi.418@gmail-com

31. **डॉ0 सुनीता जसवाल,** असिस्टेंट प्रोफेसर – हिन्दी विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला (हिमाचल प्रदेश) मो. 7018621542

32. **डॉ0 सुमन रानी**, सहायक प्रोफेसर, अस्थाई, हिन्दी विभाग, गोस्वामी गणेषदत्त सनातन धर्म महाविद्यालय पलवल हरियाणा मौ0 9050289680 sumanbhati808@gmail.com

33. **डॉ0 संगम वर्मा**, सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, राजकीय महिला महाविद्यालय, सैक्टर 11,चण्डीगढ़ 9463603737,kavysavvy@yahoo.com

34. **डॉ0 प्रीति गुप्ता**, हिन्दी व्याख्याता GGSSS राम नगर न01 पहाड़गंज नई दिल्ली (शिक्षा निदेशालय दिल्ली सरकार) मौ0 8058138017 sweetpriti80@gmail.com

35. **संजय कुमार,** व्याख्याता, GBSSS करावल नगर,दिल्ली (शिक्षा निदेशालय दिल्ली सरकार)संपर्क– 8769406872 ई मेल sanjaydholpuria51@gmail.com

अंग्रेजी विभाग:

1. **डॉ. ममता सिहल, अध्यक्षा,** अंग्रेजी विभाग, जे.वी. जैन कॉलिज, सहारनपुर, उ.प्र.
2. **डॉ. रणदीप राणा, प्रोफेसर,** अंग्रेजी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
3. **डॉ. जयबीर सिंह हुड्डा, प्रोफेसर,** अंग्रेजी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
4. **डॉ० रविन्द्र कुमार,** एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष अंग्रेजी विभाग, चौ० चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ
5. **डॉ. अनिल वर्मा** (पूर्व रीडर, अंग्रेजी विभाग, जे.वी. जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सहारनपुर)
6. **डॉ0 जे. के. शर्मा,** प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक
8. **डॉ. पी.के. शर्मा,** (प्रो., अंग्रेजी–विभाग, राजकीय के.आर.जी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर)
9. **डॉ. गीता रानी शर्मा,** (सहायक प्रोफेसर) गो.ग.दत्त सनातन धर्म कॉलेज, पलवल
10. **डॉ. किरण शर्मा,** (एसोसिएट प्रोफेसर) राजकीय स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय रोहतक
11. **डॉ0 राजाराम,** सहायक प्रोफेसर (अंगेजी) ओम स्ट्रलिंग ग्लोबल, विष्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

वाणिज्य विभाग: Commerce & Management

1. **डॉ० नवीन कुमार गर्ग** (वाणिज्य विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
2. **डॉ० ए.के. जैन**पूर्वरीडर (वाणिज्य विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर)
3. **डॉ० दिनेश जून,** एसोसिएट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, फरीदाबाद
4. **डॉ० एम.एल. गुप्ता,** (पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, वाणिज्य एवं व्यवसायिक प्रशासन संकाय, एस.एस.वी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हापुड़ एवं संयोजक–शोध उपाधि समिति एवं संयोजक बोर्ड ऑफ स्टीडिज चौधरी चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ)
5. **डॉ. गीता गुप्ता,** (सहायक प्रोफेसर) वाणिज्य विभाग, वैश्य महिला महाविद्यालय, रोहतक)
6. **Dr,shaveta Kakkar** Associate professor in commerce Vaish Mahila Maha vidyalaya Rohtak
7. **Prof. (Dr.) Manisha Pandey** Dean- Faculty of Commerce and Management Shri Davara University, Raipur CG Mobile no 7898441198Email ID - mkkp1997@gmail.com

राजनीति शास्त्र विभाग:

1. **साकेत सिसोदिया,** (राजनीति शास्त्र विभाग, एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद)
2. **डॉ० रोचना मित्तल** (रीडर एवं अध्यक्षा, राजनीति शास्त्र–विभाग, शम्भु दयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
3. **डॉ० राजेन्द्र शर्मा** (एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद, उ०प्र०)
4. **डॉ० कौशल गुप्ता,** एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, देशबन्धु महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली **Mob.: 09810938437**
5. **डॉ०पी.के. वार्ष्णेय**, एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, जे.वी.जैन कॉलेज, सहारनुपुर
6. **डॉ० सुदीप कुमार,** सहायक प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, डी.ए.वी. कॉलेज, पेहवा (कुरुक्षेत्र) **Mob.: 9416293686**
7. **डॉ० वाई०आर० शर्मा,** एसो० प्रो०, राजनीति शास्त्र विभाग, जम्मू
8. **डॉ. रेनू राणा,** (सहायक प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, प. नेकीराम शर्मा राजकीय महाविद्यालय रोहतक 124001
9. **डॉ. ममता देवी,** (सहायक प्रोफेसर, राजनीतिक शास्त्र विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

इतिहास विभाग:

1. **डॉ० भूकन सिंह** (प्रवक्ता, इतिहास विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
2. **डॉ० मनीष सिन्हा,** पी.जी. विभाग, इतिहास, मगध विश्वविद्यालय बोधगया, बिहार–824231
3. **डॉ० राजीव जून,** सहायक प्रो० इतिहास, सी.आर इन्स्टीट्यूट ऑफ ला, रोहतक
4. **डॉ० मीनाक्षी** (सहायक प्रोफेसर इतिहास विभाग) सी.आर. किसान कॉलेज, जीन्द
5. **डॉ0 रश्मि,** (अध्यक्षा) इतिहास विभाग, हिन्दू कन्या महाविद्यालय, जीन्द (हरियाणा) पिन – 126102

भूगोल विभाग:

1. **डॉ० पी.के शर्मा,** पूर्व रीडर एवं अध्यक्ष, भूगोल विभाग, जे.वी. जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सहारनपुर
2. **रश्मि गोयल** (भूगोल विभाग, एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद)
3. **डॉ० भूपेन्द्र सिंह,** एसोसिएट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, राजकीय पी.जी. कॉलेज, हिसार
4. **डॉ० विनीत बाला,** सहायक प्रो. भूगोल विभाग, वैश्य पी.जी. कॉलेज, रोहतक
5. **डॉ0 प्रदीप कुमार शर्मा**, एसोसिएट प्रोफेसर, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक

शिक्षा विभाग:

1. **डॉ० उमेन्द्र मलिक,** एसिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, म.द.वि. , रोहतक
2. **डॉ० संदीप कुमार,** सहायक प्रो० शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्लीएसोसिएट
3. **डॉ० तपन कुमार बसन्तिया,** एसोसिएट प्रोफेस, सैंटर फॉर एजुकेशन, सैट्रल यूनिवर्सिटी ऑफ साउथ विहार, गया कैम्या, विनोभा नगर, वार्ड नं. **29**, **Behind ANMCH** मगध कालोनी, गया–**823001**बिहार**Mob.: 09435724964**
4. **डॉ० (प्रो०) अनामिका शर्मा,** प्राचार्या, एम.आर. कॉलिज ऑफ एजुकेशन, फरीदाबाद
5. **डॉ० मनोज रानी,** सहायक प्रोफेसर (अंग्रेजी) एम.एल.आर.एस. कॉलिज ऑफ एजुकेशन, चरखी दादरी (भिवानी)
6. **डॉ० राजकुमारी सिंह,** प्रोफेसर एफ.टी.एम. विश्वविद्यालय लोधीपुर राजपूत मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश 9760187147
7. **डॉ० ममता देवी,** (सहा. प्रो. बी.आई.एम.टी. कॉलेज कमालपुर गढ़ रोड़, मेरठ)

गृह विज्ञान

1. **डॉ0 श्रीमती पंकज शर्मा,** (सहायक प्राफेसर), गृह विज्ञान (प्रसार शिक्षा) राजकिय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रोहतक

शारीरिक शिक्षा विभाग:

1. **डॉ० सरिता चौधरी,** सहायक प्रोफेसर, शारीरिक शिक्षा विभाग, आर्य गर्ल्ज कॉलेज, अम्बाला कैंट, हरियाणा
2. **डॉ० वरुण मलिक,** सहायक प्रोफेसर, म.द.वि., रोहतक
3. **डॉ० सुनील डबास,** (पद्मश्री व द्रोणाचार्य अवार्ड) HOD in physical education"DGC Gurugram
4. **डॉ रामवीर सिंह,** एसोसिएट प्रोफेसर शारीरिक शिक्षा किशन लाल पब्लिक कॉलेज रेवाड़ी 123401 हरियाणा

समाज शास्त्र विभाग:

1. **प्रवीण कुमार** (समाजशास्त्र विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
2. **डॉ० कमलेश भारद्वाज,** समाज शास्त्र विभाग, एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद

मनोविज्ञान विभाग:

1. **डॉ० चन्द्रशेखर,** सहायक प्रोफेसर साईक्लोजी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू
2. **डॉ. रश्मि रावत,** (मनोविज्ञान विभाग, डी.ए.वी. कॉलेज, देहरादून)
3. **अनिल कुमार लाल** (प्रवक्ता, मनोविज्ञान विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)

अर्थशास्त्र विभाग:

1. **डॉ० जसवीर सिंह** (पूर्व रीडर अर्थशास्त्र विभाग, किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मवाना)
2. **डॉ० सुशील कुमार** (एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद, उ०प्र०)
3. **डॉ० अखिलेश मिश्रा** (प्राध्यापक, अर्थशास्त्र–विभाग, एस.डी.पी. जी. कॉलेज, गाजियाबाद)
4. **डॉ० सत्यवीर सिंह सैनी,** एसो०प्रो० (अर्थ०वि०, गो०ग० सनातन धर्म पी०जी० कॉलेज, पलवल)

विधि विभाग:

1. **डॉ० नरेश कुमार,** (प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
2. **डॉ० विमल जोशी,** (प्रोफेसर, विधि–विभाग भगत फूलसिंह महिला विश्वविद्यालय खानपुर, सोनीपत)
3. **डॉ० जसवन्त सैनी,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
4. **डॉ० वेदपाल देशवाल,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
5. **डॉ. अशोक कुमार शर्मा,** एसो. प्रोफेसर, विधि विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर
6. **डॉ. राजेश हुड्डा,** सहायक प्रो०, विधि विभाग, बी.पी.एस. महिला विश्वविद्यालय, खानपुर कलां, सोनीपत
7. **डॉ० सत्यपाल सिंह,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
8. **डॉ० सोनू,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
9. **डॉ० अर्चना वशिष्ठ,** (सहायक प्रोफेसर, के०आर० मंगलम विश्वविद्यालय, सोहना रोड, गुरुग्राम)
10. **डॉ० आनन्द सिंह देशवाल,** (सहायक प्रोफेसर, सी०आर० कॉलेज ऑफ लॉ रोहतक)
11. **अनसुईया यादव,** (सहायक प्रोफेसर, विधि विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा)

गणित विभाग:

1 **डॉ० विनोद कुमार,** रीडर एवं अध्यक्ष गणित विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर

2. **डॉ० विरेश शर्मा,** लेक्चरार गणित विभाग, एन.ए.एस. कॉलेज, मेरठ

3. **डॉ0 सलौनी श्रीवास्तव** सहायक प्रो0, गणित विभाग आर0 बी0 एस0 कालेज आगरा

4. **Dr. Dhrub Kumar Singh.**HOD, Department of Mathematics, YBN University, Rajaulatu, Namkum, Ranchi, Jharkhand, India. Pin-834010

5. **डॉ रश्मि मिश्रा** प्रोफेसर (एप्लाइड साइंस एंड हमनीटीएस), मैथमेटिक्स गनेशी लाल बजाज इंस्टिट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी एंड मैनेजमेंट ग्रेटर नॉएडा

कम्प्यूटर विभाग:

1. **प्रो० एस.एस. भाटिया** (अध्यक्ष, स्कूल ऑफ मैथमेटिक्स एण्ड कम्प्यूटर एप्लीकेशन, थापर विवि, पटियाला)

2. **सर्वजीत सिंह भाटिया** (प्रवक्ता, कम्प्यूटर साईंस, खालसा कॉलेज, पटियाला)

3. **डॉ० बालकिशन सिंहल,** सहायक प्रोफेसर, कम्पयूटर विभाग, म०द०विश्वविद्यालय, रोहतक

संस्कृत विभाग:

1. **डॉ० रामकरण भारद्वाज** पूर्व रीडर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, लाजपत राय कॉलेज, साहिबाबाद (गाजियाबाद)

2. **डॉ० सुनीता सैनी,**एसो० प्रोफेसर संस्कृत विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

3. **डॉ० सुमन,** (सहायक प्रोफेसर, संस्कृत–विभाग, आदर्श महिला महाविद्यालय, भिवानी।)

4. **डॉ0 दिनेश मणि त्रिपाठी {प्रधानाचार्य}** एल ० पी ० के ० इंटर कॉलेज सरदार नगर बसडिला {गोरखपुर}

5. **डॉ0 दानपति तिवारी,** प्रोफेसर, एवं अध्यक्ष, महात्मा गांधी काशी विद्यापिठ, वाराणसी, उत्तर–प्रदेश

6. **डॉ0 दिनेशचन्द्र शुक्ल,** सहायक प्रोफेसर, महात्मा गांधी काशी विद्यापिठ, वाराणसी, उत्तर–प्रदेश

रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग:

1. **डॉ० आर०एस० सिवाच,** प्रो० एवं अध्यक्ष, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, म०द०वि०, रोहतक

दृश्यकला विभाग:

1. **डॉ० सुषमा सिंह,** एसोसिएट प्रोफेसर, दृश्यकला विभाग, म०द० विश्वविद्यालय, रोहतक

पंजाबी विभाग:

1. **डॉ० सिमरजीत कौर,** सहायक प्रो० (पंजाबी), ईश्वरजोत डिग्री कालेज, पेहवा (कुरूक्षेत्र)

संगीत विभाग:

1. **डॉ० संध्या रानी,** अध्यक्षा, संगीत विभाग, यूआरएलए, राजकीय पीजी कॉलेज, बरेली

2. **डॉ० हुकमचन्द,** एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष तथा डीन, संगीत विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा

3. **डॉ. अनीता शर्मा,** (संगीत–गायन प्राध्यापिका, जयराम महिला महाविद्यालय लोहारमाजरा (कुरुक्षेत्र)

4. **डॉ. वन्दना जोशी,** (सहायक प्राध्यापक, विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग, एस.एस.जे. परिसर, अल्मोड़ा)

पत्रकारिता एवं जन संचार विभाग:

1. **डॉ० सरोजनी नंदल,** प्रोफेसर (पत्रकारिता एवं जन संचार विभाग) महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

उर्दू विभाग:

1. **डॉ० मो. नूरूल हक,** (एसोसिएट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष, उर्दू, बरेली कॉलेज, बरेली)

कृषि विभाग

1. **डॉ0 गोविन्द प्रकाश आचार्य** सह–आचार्य (कृषि–प्रसार) श्री गोविन्द गुरू राजकीय महाविद्यालय, बांसवाड़ा राजस्थान मो. 9460545836

दर्शनशास्त्र

1. Prof, Dr, Asha Devi department of Philosophy Govt P G college kotdwar pauri Garhwal Uttarakhand 246149

LIFE MEMBERS OF INDIAN JOURNAL OF SOCIAL CONCERNS

1. **Dr. Praveen Kumar Verma**
   Associate Professor, Hindi Department, GGD Sanatan Dharam Post Graduate College, Palwal.

2. **Smt. Veena Pandey (Shukla)**
   Hindi Teacher, Jawahar Navodya Vidyalya, Dhoom Dadri, Distt. Gautambudhnagar - 203207 (U.P.)

3. **Dr. Suman**
   H.No. 1001, Radha Swami Colony, Rohtak Road, Bhiwani (Haryana)

4. **Dr. Subhash Chand Saini** (Hindi Department, Dyal Singh College, Karnal, Haryana

5. **Dr. Vimla Devi, Asst. Professor (History)** M.B.G.P.G College Haldwani Nainital (Uttrakhand)
   G-mail address. drvimla2015@gmail

6. **Princepal,** Associat Professor (Hindi), Aggarwal College, Ballabhgarh (Haryana)

7. **Dr. Dinesh Mani Tirpathi (Principal)** L-P=-K Inter College sardar Nagar, Basdila Gorkhpur

8. **Dr. Govind Prakash Acharya** F--63, Chandra Vardai Nagar, UIT, Colony, Shaheed Bhagat Singh Marg, Opposite Ramganj Thana, Taragarh Road, Ajmer (Rajasthan) Pincode--305003.

9. **Amardeep Singh** Mcf C -21, Near Deep Vatika, Bhagat Singh Colony, Ballabgarh121004, Mob. 9873814066

10. **Principal,** Goswami Ganesh Dutt Sanatam Dharma College Palwal (Haryana)

ज्ञान-विज्ञान विमुक्तये
आचार्य मनिष र. जोशी
सचिव
Prof. Manish R. Joshi
Secretary

सत्यमेव जयते

आज़ादी का अमृत महोत्सव

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग
University Grants Commission
(शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार)
(Ministry of Education, Govt. of India)

F.No. 1-1/2018(CARE/JOURNAL)-Part file 22 माघ 1946/11 February, 2025

सार्वजनिक सूचना

In supersession of the Public Notice dated 28th November 2018 for establishing UGC Consortium for Academic and Research Ethics (UGC- CARE), the Commission, in its 584th meeting held on 3rd October 2024, based on the recommendations of the expert committee, has decided to discontinue UGC-CARE listing of Journals and develop suggestive parameters for choosing peer-reviewed journals by faculty members and students. The suggestive parameters, developed by a group of experts and academicians, are now placed in the public domain for their feedback till **25th February, 2025 at email id: journal@ugc.gov.in.**

The stakeholders, including HEIs, faculty members, researchers, and students, may take note of it.

(मनिष जोशी)

बहादुरशाह जफ़र मार्ग, नई दिल्ली-110002 | Bahadur Shah Zafar Marg, New Delhi-110002
दूरभाष (Ph.): 011-23236288/23239337 | सम्पर्क सूत्र (ई-मेल) (E-mail) : secy.ugc@nic.in

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ स.
1.	Fava's Well-Being Therapy in Depression: From Symptom Remission to Psychological Recovery	Aditi Solanki, Dr. Amra Ahsan	10–16
2.	Anti-conversion Laws: A Socio-legal Analysis	Dr. Babita Baeraiya	17–22
3.	डॉ0 बी0 आर0 अम्बेडकर के राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक विचारों की प्रासंगिकता	डॉ0 सुशील दत	23–27
4.	मानसिक स्वास्थ्य का समाजशास्त्रः युवाओं के संदर्भ में एक अध्ययन	डॉ. आशुतोष	28–33
5.	मीराबाई के पदों का सांगीतिक विश्लेषण	डॉ0 रुचि गर्ग	34–36
6.	सूरदास के काव्य में ब्रज प्रकृति के विभिन्न परिदृश्य विवेचनात्मक अध्ययन	डॉ. पुष्पा रानी (डी.लिट.)	37–41
7.	नरेश मेहता के काव्य की समकालीन प्रासंगिकता	डॉ. सुनीता रानी	42–45
8.	भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में अनुसूचित जाति/जनजाति के क्रान्तिवीरों का विद्रोह एवं उसका प्रभाव	मिथिलेश कुमार, डॉ0 मीरा पाल	46–48
9.	बनारस घराना परंपरा में पंडित किशोर कुमार मिश्रा जी का एक गुरु के रूप में योगदान	डॉ0 गोविन्द सिंह बोरा, मेघा पन्त	49–52
10.	विदुशी शांति शर्मा का इंदौर घराने के संरक्षण एवं संवर्धन में योगदान : एक सूक्ष्म परिचय	डॉ0 मोनी जोशी	53–54
11.	''भीष्म साहनी के उपन्यासों में धार्मिक और सांस्कृतिक चेतना''	शिमला रानी, डॉ॰ जसबीर सिंह	55–59
12.	डॉ. राजपालः जीवन, व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद	60–63
13.	भारतीय ज्ञान परंपरा का ऐतिहासिक विकासः प्राचीन भारत से समकालीन भारत तक	मुकुन्द कुमार	64–67
14.	डिजिटल युग में बाल सुरक्षा एवं अधिकारः परिवार की बदलती जिम्मेदारियाँ और नई चुनौतियाँ	डॉ० कुमारी निभा	68–72
15.	"आदिवासी जीवन और सह–अस्तित्व की भावना"	कुमारी राजबाला, डॉ. संजय कुमार	73–74
16.	"दलित साहित्य पर आंबेडकरवादी विचारधारा का प्रभाव "	शालू सिन्हा, डॉ. संजय कुमार	75–77
17.	उदय प्रकाश की कथन–शैली	नविन्ता कुमारी	78–80
18.	'जूठन' और 'धरती धन न अपना' में दलित जीवन जागृति मिश्रा, डॉ. सुनील कुमार भाटिया		81–83
19.	'मनीषा कुलश्रेष्ठ के कहानी संग्रह 'गंधर्व–गाथा' की कहानियों के पात्रों का विश्लेषणात्मक अध्ययन'	चंचल शर्मा, डॉ. सुमन शर्मा	84–89
20.	औपनिवेशिक काल में अकाल तथा भारतीय समाज पर उनका विनाशकारी प्रभाव : एक संक्षिप्त अध्ययन	विदित वीर यादव, डॉ यशपाल सिंह	90–92
21.	डॉ० रमेश पोखरियाल निशंक की कहानियांः विविध पक्ष	किरणा देवी, डॉ० भारती	93–97
22.	'नई वाली हिंदी'ः समकालीन हिंदी लेखन की प्रवृत्तियाँ और प्रतिनिधि रचनाकार	प्रो० विष्णु के० अग्रवाल	98–101
23.	बाल साहित्य के विकास में डॉक्टर नागेश पांडेयः संजयः का विशिष्ट योगदान ।	वर्षा लाम्बा, डॉ0 (प्रोफेसर) दिग्विजय शर्मा	102–105
24.	भीष्म साहनी की रचनाधर्मिता	नूतन कुमारी	106–107
25.	नागेश पांडेय संजय के बाल साहित्य मे बाल जीवन की विविध समस्याए	वर्षा लाम्बा, डॉ0 (प्रोफेसर) दिग्विजय शर्मा	108–111
26.	सादा जीवन उच्च विचार के विग्रह रूप्रो. पं. जगन्नाथ प्रसाद मिश्र	प्रो डॉ0 रेखा मिश्रा	112–115
27.	आदर्श शिक्षक के विग्रहः डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन (5.9.1888–16.4.1975)	डॉ0 जंग बहादुर पाण्डेय	116–118
28.	Romantic Poetry: Nature, Imagination, and the Subjective Self in the Odes of John Keats	Dr. Saumya Singh	119–121
29.	Teacher Freezing Among Secondary School Teachers In Relation To Occupational Attainment	Dr Umender Malik	122–124
30.	Employer-sponsored Skill Development And Workforce Outcomes In Indian Public Sector Enterprises: A Critical Review With Special Reference To National Fertilisers Limited	Radha, Prof. (Dr) Sandeep Shandilya	125–134

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ स.
31.	Narcotics Control, Drug Trafficking and Criminal Liability: A Comparative Review of India, Indonesia and the Kingdom of Saudi Arabia	Vikas Kohli[1, a], Dr. Deepak Miglani[2, b], Dr. Priya A Sondhi[3]	135—144
32.	Employer-sponsored Skill Development And Employee Retention In The Indian Energy Sector: A Comparative Review Of Public Sector And Refinery-based Organizations	Radha, Prof. (Dr) Sandeep Shandilya	145—154
33.	Impact Of Urbanization On Land Use Land Cover : A Case Study Of Palwal District Using Remote Sennsing And Gis	Sonu, Prof. (Dr) Pardeep Kumar Sharma	155—159
34.	Rostow's Stages Of Economic Growth Revisited Theoretical Synthesis, Policy Imperatives And Development Planning Dilemmas	Prof. Tapan Kumar Shandilya	160—167
35.	Tribal Heritage Tourism and Local Economic Development in India	Dr. Tanya Sharma	168—173
36.	Negotiating Caste and Gender: Dalit Women's Search for Dignity Beyond Hinduism	Mamta Mathur	174—177
37.	Affordable Housing and the Right to Housing: An Analysis of the Indian Legal Framework	Shekhar Bhatia, Dr. Shreya	178—185
38.	Real Estate Dispute Resolution: A Study Of Remedies Available Under Real Estate Regulation Act And Consumer Protection Act.	Dr. Santosh Kumar Sharma	186—191
39.	Gender Differences in Health Promoting Lifestyle Behaviours Among College Students	Surjit Singh, Prachi Malik, Sakshi kajla	192—199
40.	**New Frontiers in Literary Criticism: Exploring Emerging Paradigmsin 21st-Century Literature** *A Critical Analysis ofInterdisciplinary Methods, Ecological Epistemologies, and Post-Humanist Discourse*	Mridul Tiwari	200—203

1

Fava's Well-Being Therapy in Depression: From Symptom Remission to Psychological Recovery

Aditi Solanki, Dr. Amra Ahsan

ABSTRACT

Background: Depression ha s traditionally been conceptualized and treated primarily through the reduction of psychological symptoms. Although symptom remission remains a central therapeutic objective, remission does not necessarily imply restoration of positive psychological functioning. Fava's Well-Being Therapy (WBT) provides a distinctive framework for addressing this gap.

Objective: This theoretical review examines the conceptual foundations, therapeutic mechanisms, clinical applications, and empirical status of WBT in depression. Particular attention is given to the proposition that psychological well-being represents a clinically meaningful dimension of recovery that is related to, but not synonymous with, the absence of depressive symptoms.

Method: A narrative theoretical review was undertaken of foundational and subsequent literature on WBT, psychological well-being, Ryff's multidimensional model, depression, residual symptoms, relapse prevention, and interventions targeting eudaimonic well-being.

***Results*:** WBT is a structured psychotherapeutic approach developed by Giovanni A. Fava. It is substantially informed by Ryff's multidimensional conceptualization of psychological well-being and integrates self-observation, structured monitoring of well-being, identification of thoughts and behaviors that interrupt positive experiences, cognitive restructuring, and behavioral assignments. The six principal dimensions are autonomy, environmental mastery, personal growth, positive relations with others, purpose in life, and self-acceptance. Preliminary clinical studies suggest that WBT can improve psychological well-being and residual symptoms, while sequential cognitive-behavioral treatment and WBT have demonstrated encouraging long-term outcomes in recurrent depression. More recent research involving depressed patients with acute coronary syndromes has further illustrated the potential utility of sequential CBT/WBT. Meta-analytic evidence indicates that interventions explicitly targeting Ryff's model can improve eudaimonic psychological well-being, although the evidence specific to WBT remains comparatively limited.

***Conclusion*:** WBT offers a theoretically coherent extension of conventional depression treatment by shifting part of the therapeutic focus from elimination of psychopathology toward restoration and maintenance of positive psychological functioning. Its greatest potential may lie in residual depression, post-remission care, recovery-oriented treatment, and relapse prevention. However, evidence remains insufficient to position WBT as a stand-alone first-line treatment for acute major depressive disorder. Future research should employ larger randomized trials, active comparators, dismantling designs, long-term follow-up, mediation analyses, and culturally diverse samples.

Keywords: *Well-Being Therapy; depression; psychological well-being; Fava; Ryff; eudaimonic well-being; residual symptoms; relapse prevention; psychological recovery; positive clinical psychology*

INTRODUCTION

Major depressive disorder is characterized by persistent disturbances in mood, cognition, motivation, behavior, and functioning. Psychological treatments for depression have consequently focused largely on reducing pathological symptoms and modifying the cognitive, behavioral, interpersonal, and emotional processes that maintain them. Cognitive-behavioral therapy (CBT), interpersonal psychotherapy, behavioral activation, and related approaches have established substantial empirical support for the treatment of depressive disorders.

The success of symptom-focused interventions, however, raises a broader question concerning the meaning of recovery. Is a patient who no longer satisfies diagnostic criteria for depression necessarily psychologically well?

The answer may be negative. A person can achieve substantial symptomatic improvement while continuing to experience low self-worth, limited interpersonal satisfaction, uncertainty about life direction, reduced autonomy, restricted engagement, or a diminished sense of personal development. This distinction between symptom remission and positive psychological functioning is central to the conceptualization of Well-Being

Therapy(WBT).

Developed by Giovanni A. Fava and colleagues, WBT is a structuredpsychotherapeuticstrategyspecificallydesigned to enhance psychological well-being and resilience. Its development was strongly influenced by the multidimensional model of psychological well-being proposed by Carol Ryff. Rather than defining well-being solely as happiness or the absence of negative affect, Ryff's model conceptualizes well-being as positive functioning across multiple domains, including autonomy, environmental mastery, personal growth, positive relations withothers,purposeinlife,andself-acceptance.

Fava'sinitialclinicalworkappliedWBTtopatients withaffectivedisorderswhohadalreadyreceivedsuccessful treatment but continued to experience residual symptoms. The development of WBT represents an important conceptual movement within clinical psychology: from askingonlywhetherpsychopathologyhasdecreasedtoward askingwhetherpositivefunctioninghasbeenrestored.

The present article therefore examines WBT not simplyasanotherpsychologicalinterventionfordepression but as a theoretical framework that potentially expands the definitionoftherapeuticsuccess.

ConceptualizingDepressionBeyondSymptomatology

The dominant clinical approach to depression necessarily emphasizes symptom reduction. However, the absence or reduction of symptoms does not automatically produceameaningfulorfulfillinglife.

This distinction can be expressed through two complementarydimensions.

DimensionA: Reductionofpsychopathology—depressed mood, anhedonia, hopelessness, guilt, excessive self-criticism,anxiety,sleepdisturbance,cognitiveimpairment, andbehavioralwithdrawal.

Dimension B: Restoration of positive functioning — self-acceptance, autonomy, purpose in life, environmental mastery,personalgrowth,andpositiverelationships.

The two dimensions are related but theoretically distinguishable.Apatientmaymovefromseveredepression to partial remission and symptomatic remission without necessarily progressing to psychological recovery, resilience, and flourishing. WBT is particularly concerned with this latter pathway. Fava, Cosci, Guidi, and Tomba conceptualized WBT as a strategy for increasing psychological well-being and resilience and noted that evidence concerning the specific contribution of WBT remained limited, particularly when it was combined with otherpsychotherapeuticmethods.Thisbalancedpositionis important. WBT should not be understood as a replacement for established depression treatment but as a potentially complementaryapproachtopsychologicalrecovery.

TheoreticalFoundationsofWell-BeingTherapy

WBT was developed within the context of clinical observationsconcerningresidualsymptomsandincomplete recovery. Fava and colleagues initially sought a therapeutic approachthatcouldenhancepsychologicalwell-beingafter successfultreatmentofaffectivesymptoms.

Theinitialworkisparticularlysignificantbecause it targeted patients who had already received successful behavioral or pharmacological treatment. Rather than treatingacutepsychopathologyasthesoletherapeutictarget, theinterventionaddressedthepatient'sabilitytoexperience andsustain

Psychologicalwell-being.

Thesubsequentdevelopmentof WBTresultedina structured treatment program. Fava's treatment manual formally presented WBT as an eight-session program and included applications to depression, mood instability, generalizedanxietydisorder,panicdisorder,post-traumatic stressdisorder,andotherclinicalcontexts.

The treatment is based on monitoring psychological well-being, through which patients progressively learn to recognizeandstrengthenpositivepsychological functioning.

Ryff's Multidimensional Model of Psychological Well-Being

The theoretical architecture of WBT is substantiallyinformedbyRyff'smultidimensionalmodelof psychological well-being. The model differs from purely hedonic definitions of well-being. Happiness and pleasure are not regarded as sufficient indicators of psychological health. Instead, well-being is conceptualized in terms of positivefunctioningandtherealizationofhumanpotential.

1.Self-Acceptance

Self-acceptance refers to a positive and realistic attitude toward oneself, including acceptance of personal

strengths and limitations. Depression frequently involves negative self-evaluation, excessive guilt, feelings of worthlessness, and persistent self-criticism. WBT therefore conceptualizes self-acceptance as an important component of recovery.

2. Positive Relations With Others

Positive relations involve the capacity to develop meaningful, trusting, and reciprocal interpersonal relationships. Depression can lead to withdrawal, interpersonal sensitivity, reduced social engagement, and a perception that others are critical or rejecting.

3. Autonomy

Autonomy concerns self-determination and the capacity to act according to personally meaningful standards. Depressed individuals may become highly dependent upon external evaluation or perceive themselves as incapable of making effective decisions.

4. Environmental Mastery

Environmental mastery concerns the capacity to manage everyday responsibilities and shape one's environment effectively. Depression can produce reduced motivation, impaired confidence, avoidance, and a diminished sense of competence.

5. Purpose in Life

Purpose in life refers to having meaningful goals, direction, and a sense that one's life possesses significance. Depression can be associated with hopelessness, future pessimism, and loss of meaning.

6. Personal Growth

Personal growth involves the perception of continued development and the realization of one's potential. Depression can produce a subjective sense of stagnation. WBT consequently conceptualizes recovery as an ongoing developmental process.

Distinctive Therapeutic Principles of WBT

WBT shares important features with CBT but has a different primary therapeutic focus. Conventional symptom-focused CBT may ask which thoughts and behaviors are maintaining psychological distress. WBT adds a complementary question: which thoughts and behaviors prevent the individual from maintaining experiences of psychological well-being?

A person may experience a positive event but immediately discount it, become concerned that it will not last, feel undeserving of it, or interpret it through perfectionistic standards. WBT attempts to identify and modify this process. The therapeutic target is not artificial positivity; it is the capacity to recognize, tolerate, maintain, and integrate genuine experiences of well-being.

Core Therapeutic Processes

Self-observation, structured diary-based monitoring, identification of interfering thoughts, cognitive restructuring, behavioral experiments, and pursuit of meaningful positive experiences are central processes in WBT. The objective is not merely to record pleasant events but to understand when well-being occurs, what facilitates it, what thoughts accompany it, and what interrupts it.

WBT and Residual Depression

Residual symptoms represent one of the most theoretically appropriate areas for WBT. Patients who have responded to antidepressant treatment or psychotherapy may nevertheless continue to experience low self-confidence, reduced pleasure, interpersonal difficulties, pessimism, low motivation, excessive self-criticism, reduced sense of purpose, and restricted engagement in life. The initial WBT study specifically targeted this stage. Twenty patients with affective disorders who had previously received successful treatment were randomly assigned to WBT or cognitive-behavioral treatment for residual symptoms. Both approaches reduced residual symptoms, while observer-rated measures indicated an advantage for WBT. The findings were preliminary and required further research. The central idea is that once acute psychopathology has been reduced, psychotherapy may need to address the processes that prevent positive functioning from being restored.

WBT and Relapse Prevention

Depression is frequently recurrent, making long-term prevention a major clinical objective. The theoretical rationale for WBT in relapse prevention is that patients may remain vulnerable even after symptom remission if important psychological vulnerabilities remain unresolved.

Fava and colleagues investigated a sequential psychotherapy approach involving CBT for residual symptoms supplemented by lifestyle modification and WBT. In the six-year follow-up of 40 patients with recurrent

major depression, relapse occurred in 40% of the psychotherapy group compared with 90% of the clinical-managementgroup.

An important methodological qualification must be emphasized: the intervention was not WBT alone. It consisted of CBT for residual symptoms supplemented by lifestyle modification and WBT. Consequently, the results support the potential value of the sequential CBT-WBT model, but cannot establish that WBT independently caused theobservedreductioninrelapse.

WBTinDepressionwithMedicalComorbidity

The TREATED-ACS study was a multicenter randomized controlledtrialinvolving100depressedand/ordemoralized patients identified following a first acute coronary syndrome. Participants were randomized to sequential CBT/WBT with lifestyle suggestions or clinical management, with follow-up extending to 30 months. This study is theoretically important because it treats psychological well-being as a clinically relevant target in a population where depression and psychological distress coexist with substantial medical vulnerability. Nevertheless, the study evaluated a sequential CBT/WBT intervention rather than WBT in isolation. Although WBT and CBT overlap substantially, their therapeutic emphases differ.

TheoreticalModel:FromDepressiontoFlourishing

Based on the reviewed literature, a conceptual model is proposed. Depressive psychopathology may be accompanied by reduced psychological well-being and disruption of positive psychological experiences. These processes may contribute to residual symptoms and continuing vulnerability following symptomatic improvement. WBT is hypothesized to interrupt this cycle through systematic self-observation, monitoring of well-being experiences, identification and restructuring of cognitions that interfere with well-being, behavioral experimentation, and strengthening of the six dimensions of psychologicalwell-being.

Table 1. Conceptual Comparison of Conventional CBT and Well-BeingTherapy

Domain	Conventional CBT	Well-Being Therapy
Primary focus	Reduction of psychopathology	Enhancement of psychological well-being
Main therapeutic question	What maintains distress?	What interrupts well-being?
Cognitive target	Dysfunctional beliefs	Cognitions interfering with well-being
Behavioral target	Avoidance and maladaptive behavior	Engagement and maintenance of positive functioning
Conceptual emphasis	Symptom reduction and functional improvement	Positive functioning, resilience and flourishing
Potential clinical phase	Acute and maintenance treatment	Residual/recovery phase and potentially maintenance
Theoretical foundation	Cognitive-behavioral theory	Ryff's well -being model integrated with CBT principles

EvidenceforInterventionsBasedonRyff'sModel

Although evidence specific to WBT remains limited, the broader intervention literature concerning eudaimonic psychological well-being provides relevant theoretical support. A meta-analytic review by Van Dierendonck and Lam examined interventions using Ryff's Scales of Psychological Well-Being and concluded that eudaimonic psychological well-being can be enhanced through targeted interventions. The evidence supports the proposition that psychological well-being is modifiable, while the WBT-specific evidence remains less extensive than the evidence baseforestablisheddepressiontreatments.

CurrentStateoftheEvidence

The WBT literature can be organized into four levels: foundational evidence from early residual-symptom work; sequential treatment evidence involving CBT and WBT; clinical application evidence in medically complex populations; and broader intervention evidence concerning Ryff-basedeudaimonicwell-being.Together,thesefindings indicate that WBT is theoretically promising and clinically relevant, buttheevidencebaseremainssubstantiallysmaller thanthatforestablisheddepressiontreatments.

StrengthsoftheWBTFramework

WBT expands the therapeutic target beyond psychopathology, is compatible with established psychotherapy, is relevant to residual symptoms, fits recovery-oriented mental health care, has potential relevance to relapse prevention, and has a structured manualizedimplementation.

LimitationsandCriticalAppraisal

Thecurrentevidenceislimitedbytherelativelysmallnumber

of WBT-specific trials, small samples in foundational studies, combination-treatment designs, limited use of adequate active comparators, limited independent replication, measurement issues concerning overlapping constructs, and cultural limitations. The evidence should thereforebeinterpretedaspromisingratherthandefinitive.

CulturalAdaptation:AResearchOpportunityinIndia

The cultural adaptation of WBT represents an especially promisingareaofresearch.InIndiancontexts,psychological functioning may be influenced by family relationships, interdependence, social responsibilities, community expectations,occupationalroles,spirituality,socialidentity, andcollectivenotionsofwell-being.Autonomymayneedto be understood as self-congruent decision making within meaningful relationships rather than simply individual independence. Future Indian research should examine whether the functional meaning of each well-being dimensionremainsequivalentacrossculturalcontexts.

ClinicalImplications

WBT may be particularly relevant to residual depression, post-remission care, recurrent depression, patients with chronic medical illness, and recovery-oriented mental healthservices.Itshouldbeconsideredacomplementaryor sequential framework rather than a demonstrated replacementforestablishedacutedepressiontreatments.

Future research should move beyond whether WBT works andinvestigatehow,forwhom,andunderwhatconditionsit works.Prioritiesincludelargerandomizedcontrolledtrials, dismantlingstudies,mediationanalyses,long-termfollow-up, culturally adapted trials, and rigorous evaluation of digitaldelivery.

CentralTheoreticalProposition

Depressivepsychopathologyandpsychologicalwell-being representrelatedbutpartiallydistinguishabledimensionsof mental health. Consequently, reduction of depressive symptoms may be necessary but insufficient for complete psychologicalrecovery.WBTmaycontributetorecoveryby strengthening positive psychological functioning and modifyingcognitiveandbehavioralprocessesthatinterrupt experiencesofwell-being.

A second proposition follows: restoration of psychological well-being may function not merely as an outcome of recovery but as a potential mechanism through which recoveryismaintained.

Implicationsfor the Concept of Recovery

A traditional model may be represented as depression → treatment → symptom reduction → remission. A broader recovery model is depression → symptom reduction → restoration of functioning → psychological well-being → resilience→sustainablerecovery.

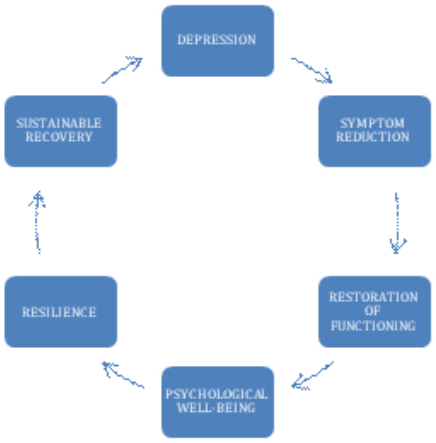

Psychological well-being does not mean the absence of negative emotions. It involves the capacity to maintain meaningful functioning despite stress, disappointment, uncertainty, and negative affect. From this perspective, the objective of WBT is not perpetual positive emotion but psychologicalflexibilityandbalancedfunctioning.

Figure1.ProposedConceptualModelofWell-Being TherapyinDepression

DepressiveDisorder

↓

DepressiveSymptoms

Lowmood Anhedonia Hopelessness Self-criticism Withdrawal Reducedfunctioning

↓

ReducedPsychologicalWell-Being

Self-acceptance Autonomy Environmentalmastery Positiverelations Purposeinlife Personalgrowth

↓

DisruptionofPositiveExperiences

Discountingsuccess Fearoflosinggains Perfectionism Negativeinterpretation Avoidance

↓

ResidualSymptoms&Vulnerability

↓

FAVA'SWELL-BEINGTHERAPY(WBT)

Self-observation Well-beingmonitoring Identificationof interruptingcognitions Cognitiverestructuring Behavioralexperiments Strengtheningpositive psychologicalfunctioning

↓

RestorationofPositivePsychologicalFunctioning

↓

RESILIENCE

Greateragency Cognitiveflexibility Positiveengagement Adaptivecoping

↓

SUSTAINABLERECOVERY

Symptomremission+psychologicalwell-being+ functionalrecovery

↓

ReducedVulnerabilitytoDepressionRecurrence

Figurecaption: Proposedconceptualmodelillustratingthe hypothesizedroleof Fava'sWell-BeingTherapy(WBT)inthe transitionfromdepressivesymptomreductiontosustainable psychological recovery. The model is a theoretical framework rather than a demonstrated causal pathway. It proposesthatdepressivepsychopathologymaycoexistwith reduced psychological well-being and disrupted positive experiences,whichmaycontributetoresidualvulnerability. WBT is hypothesized to strengthen positive functioning through systematic monitoring, identification of interrupting cognitions, cognitive restructuring, behavioralexperimentation,anddevelopmentacross Ryff's sixdimensions.

Conclusion

Fava's Well-Being Therapy represents a theoretically distinctive development within contemporary psychotherapy for depression. Its principal contribution is the explicit recognition that psychological recovery involvesmorethanreductionofpsychopathology. Grounded substantially in Ryff's multidimensional model, WBT addresses autonomy, environmental mastery, personal growth, positive relations with others, purpose in life, and self-acceptance. Through self-observation, structured monitoring, identification of thoughts and behaviorsthatinterruptwell-being,cognitiverestructuring, andbehavioralassignments,WBTattemptstostrengthenan individual's capacity to experience and sustain positive functioning.

The available evidence is encouraging but should beinterpretedcautiously.Themostdefensibleinterpretation is that WBT represents a promising recovery-oriented extension of psychotherapy for depression, with particular theoretical relevance to residual symptoms, post-remission functioning,resilience,andrelapseprevention.

Thecentralargumentofthisreviewisthatbeingfree fromdepressionisnotnecessarilyequivalenttolivingwell.A comprehensive model of recovery should seek both the reduction of psychological suffering and the restoration of positivehumanfunctioning.

References

Beck,A.T.(1979).Cognitivetherapyofdepression.Guilford Press.

Fava,G.A.(2016).Well-beingtherapy:Treatmentmanual andclinicalapplications.Karger.

Fava,G.A.,Cosci,F.,Guidi,J.,&Tomba,E.(2017).Well-beingtherapyindepression:Newinsightsintotheroleof psychologicalwell-beingintheclinicalprocess.Depression andAnxiety,34(9),801–808. https://doi.org/10.1002/da.22629

Fava,G.A.,Rafanelli,C.,Cazzaro,M.,Conti,S.,&Grandi,S. (1998).Well-beingtherapy:Anovelpsychotherapeutic approachforresidualsymptomsofaffectivedisorders. PsychologicalMedicine,28(2),475–480. https://doi.org/10.1017/S0033291797006363

Fava,G.A.,Ruini,C.,Rafanelli,C.,Finos,L.,Conti,S.,& Grandi,S.(2004).Six-yearoutcomeofcognitivebehavior therapyforpreventionofrecurrentdepression.American JournalofPsychiatry,161(10),1872–1876. https://doi.org/10.1176/ajp.161.10.1872

Guidi,J.,Rafanelli,C.,&Fava,G.A.(2018).Theclinicalrole ofwell-beingtherapy.NordicJournalofPsychiatry,72(6), 447–453.
Rafanelli,C.,Gostoli,S.,Buzzichelli,S.,Guidi,J.,Sirri,L., Gallo,P.,Marzola,E.,Bergerone,S.,DeFerrari,G.M., Roncuzzi,R.,DiPasquale,G.,Abbate-Daga,G.,&Fava,G. A.(2020).Sequentialcombinationofcognitive-behavioral treatmentandwell-beingtherapyindepressedpatientswith acutecoronarysyndromes:Arandomizedcontrolledtrial (TREATED-ACSStudy).Psychotherapyand Psychosomatics,89(6),345–356. https://doi.org/10.1159/000510006
Ryff,C.D.(1989).Happinessiseverything,orisit? Explorationsonthemeaningofpsychologicalwell-being. JournalofPersonalityandSocialPsychology,57(6), 1069–1081.https://doi.org/10.1037/0022-3514.57.6.1069
Ryff,C.D.(2014).Psychologicalwell-beingrevisited: Advancesinthescienceandpracticeofeudaimonia. PsychotherapyandPsychosomatics,83(1),10–28. https://doi.org/10.1159/000353263
VanDierendonck,D.,&Lam,H.(2023).Interventionsto enhanceeudaemonicpsychologicalwell-being:Ameta-analyticreviewwithRyff'sScalesofPsychologicalWell-Being.AppliedPsychology:HealthandWell-Being,15(2), 594–610.https://doi.org/10.1111/aphw.12398

Aditi Solanki
Ph.D. Scholar
Faculty of Behavioral Sciences
SGT University Gurugram

Dr. Amra Ahsan
Professor
Dept. of Clinical Psychology
FBSC, SGT University, Gurugram

2

ANTI-CONVERSION LAWS: A SOCIO-LEGAL ANALYSIS

Dr. Babita Baeraiya

Abstract

This paper explores the evolution, constitutional validity, and sociological impact of anti-conversion legislations in India. By examining the tension between state-mandated "public order" and the fundamental right to "freedom of conscience," this analysis highlights the shift from colonial-era regulation to contemporary stringent state statutes. It argues that while the state possesses a legitimate interest in preventing coerced conversions, the current legislative framework—characterized by vague terminology and procedural burdens—often infringes upon individual autonomy, privacy, and secular values.

Keywords: Anti-conversion laws, Freedom of religion, Article 25, Right to privacy, Individual autonomy, Interfaith marriage, Secularism, Paternalism, Chilling effect, Allurement, Scheduled Castes, Transformative constitutionalism, Love Jihad, Burden of proof, Public order.

Introduction

While ancient and medieval empires frequently passed laws regarding religion, modern **anti-conversion laws**—as statutory frameworks designed to criminalize conversion via "force, fraud, or allurement"—were born in colonial India**.** If we look at the broadest definition of a law preventing someone from changing their faith, the earliest versions were **Apostasy Laws** in theological empires. It was first introduced in Late Antiquity Roman Empire (4th to 6th Centuries CE) and various early Islamic Caliphates.

In the Roman Empire, after the ***Edict of Thessalonica* (380 CE)** made Nicene Christianity the state religion, the ***Codex Theodosianus*** codified laws that heavily penalized citizens who reverted to paganism or converted to Judaism.

These were strictly **one-way preservation laws**. The state's purpose was to maintain total theological unity, as religious dissent or leaving the state religion was viewed as political treason against the ruler.

The specific model of "Anti-Conversion Law" used globally today—which uses legal language to prohibit conversion by "inducement" or "fraud"—was explicitly invented in **British India during the 1930s and 1940s**.The very first specific statute was the **Raigarh State Conversion Act of 1936**, enacted in the princely state of Raigarh (now part of Chhattisgarh, India). This was quickly followed by similar laws in other princely states, such as the *Surguja State Apostasy Act (1942)* and the *Udaipur State Anti-Conversion Act (1946).*

They were enacted **to preserve local religious demographics and socio-political identity against British Christian missionaries**. The rulers feared that mass conversions of Scheduled Castes and tribal populations (Adivasis) would strip them of their cultural heritage, alter the local population balance, and ultimately expand British political leverage over their territories.

When India became independent, the central government tried to pass national anti-conversion bills (like the *Indian Conversion Bill of 1954*), but the federal Parliament consistently rejected them in defense of constitutional free speech.

The legal history of religious conversion in India is as old as the Republic itself. While the colonial era saw sporadic "Freedom of Religion" acts in princely states like Raigarh and Patna, the post-independence era transformed these into tools of state-led social engineering. As of 2026, twelve Indian states—including the most recent additions like Maharashtra—have enacted "Freedom of Religion" laws. These statutes have evolved from simple notifications to rigorous regulatory frameworks that involve police verification and judicial oversight of personal faith.

In recent years, the legislative intent behind anti-conversion statutes has undergone a dramatic structural shift, moving from protecting marginalized communities to policing personal relationships and interfaith marriages.

The Marriage Nexus: Newer state laws (pioneered by Uttar Pradesh in 2020/2021, and followed by states like Himachal Pradesh, Gujarat, Uttarakhand, and the recent 2026 Maharashtra legislative pushes) specifically target conversions done **"solely for the purpose of marriage."** Under these provisions, such marriages can be declared judicially null and void.

Massive Escalation of Penalties: Under older frameworks,

violations carried minor fines or 1–2 years in prison. Modern amendments (like the *UP Prohibition of Unlawful Conversion of Religion Amendment Act, 2024*) have escalated punishments to **up to 10 years or life imprisonment** for aggravated offenses, putting them on par with heinous crimes.

Prior Administrative Approval: Contemporary statutes strip away the privacy of faith by requiring individuals to submit a formal declaration to the District Magistrate (DM) **30 to 60 days before** converting. The state then initiates a local police inquiry to verify the "true intent" of the convert, fundamentally altering the relationship between the citizen's conscience and state authority.**Secularism in the Indian Context**

Indian secularism, or **Sarva Dharma Sambhava**, differs from the Western **"wall of separation."** In India, the State is an active mediator in religious affairs. Theoretical scholars argue that anti-conversion laws represent a "Positive Secularism" gone awry, where the State's attempt to ensure religious neutrality results in the policing of religious fluidity.

Autonomy vs. Paternalism

Sociologically, these laws are framed through the lens of **paternalism**. By categorizing women, Minors, SCs, and STs as groups needing "special protection" from allurement, the State assumes a guardian-like role. This effectively suggests that individuals from these groups lack the intellectual or social agency to make autonomous spiritual choices.

The "Chilling Effect" Theory

A legal "chilling effect" occurs when the threat of legal sanction causes individuals to self-censor or abandon their rights. In the case of conversion, the requirement for public notice and police inquiry acts as a deterrent, not because the act is illegal, but because the **process is the punishment**.

The Constitutional mandate

Article 25 and the "Propagate" Debate

During the Constituent Assembly debates, the word "propagate" was hard-won. However, the scope was immediately narrowed by the judiciary. Article 25(1) subjects the right to "public order, morality, and health," giving the State a broad hook for intervention.

Judicial Precedents

- **Rev. Stainislaus vs. State of MP (1977): Chief Justice A.N. Ray** held that the fundamental right to *propagate* one's religion simply means the right to transmit or spread its tenets; it does **not** grant a fundamental right to *convert* another person. The court reasoned that purposeful conversion could disrupt "public order" by fracturing communal peace. This ruling provided the permanent constitutional validation that states needed to legislate on the matter.
- **Shafin Jahan vs. Asokan KM (Hadiya Case, 2018):** Akhila Asokan, a 24-year-old homeopathic medical student in Kerala, voluntarily converted to Islam and adopted the name **Hadiya** and then married a Muslim man named Shafin Jahan. Her father,

Asokan K.M., filed a *Habeas Corpus* petition in the Kerala High Court, on the ground of systematic brainwash, radicalization and forceful conversion as a part of organized “Love Jihad”. The Kerala High Court took the extraordinary step of **annulling the marriage**. The High Court called the marriage a "sham" and handed physical custody of Hadiya back to her father. The court notoriously remarked that *"a daughter in hertwenties is vulnerable and helpless... her marriage can be held only with the active involvement of her parents."* Shafin Jahan appealed this decision to the Supreme Court of India. A three-judge bench of the Supreme Court, headed by **Chief Justice**

Dipak Misra, unanimously overturned the Kerala High Court's decision, restoring

Hadiya's marriage and validating her freedom. The Court held that the right to marry a person of one's choice is an integral part of Article 21 of the Constitution.

- **Chinthada Anand v. State of Andhra Pradesh (2026):** A bench of **Justices Prashant Kumar Mishra and N.V. Anjaria** explored the sociological and legal consequences of religious conversion on affirmative action.The Court held that when

an individual born into a Scheduled Caste (SC) converts to a religion other than

Hinduism, Sikhism, or Buddhism (specifically Christianity in this case), they face an **"immediate and complete loss"** of their SC status and cannot invoke the protections of the *SC/ST (Prevention of Atrocities) Act*.

Relying on the Constitution (Scheduled Castes) Order, 1950, the bench reasoned that because Christianity does not doctrinally recognize the caste system, the social and economic disabilities arising from Hinduism legally cease upon conversion.

- **Justice K.S. Puttaswamy v. Union of India (2017*)*:** In this landmark case, the Supreme Court declared the Right to Privacy a fundamental right under Article 21. The 9-judge bench explicitly ruled that privacy protects personal autonomy, including the "freedom of conscience" and the "intimacies of marriage."

In the context of state anti-conversion laws, this jurisprudence serves as a powerful constitutional shield. It establishes that an individual's choice of religion and life partner falls squarely within their private domain. Consequently, statutory provisions requiring prior state notifications, public declarations, or bureaucratic inquiries before changing one's faith face severe challenges under *Puttaswamy's* strict proportionality test.

- **Noor Jahan Begum @ Anjali Mishra v. State of U.P. (2014)**: In *Noor Jahan Begum @ Anjali Mishra v. State of U.P. (2014)*, the Allahabad High Court ruled that religious conversion solely for the purpose of marriage, without a bona fide belief in the tenets of the new faith, is invalid. The court dismissed protection pleas of interfaith couples where Hindu women had converted to Islam to solemnize a *Nikah*, finding the conversions mechanical and legally unsustainable.

However, this restrictive view was subsequently overruled by a Division Bench in the landmark *Salamat Ansari v. State of U.P. (2020)* case, which firmly established that the right to choose a partner, irrespective of religion, is intrinsic to the Right to Life and Personal Liberty under Article 21.

- **Salamat Ansari v. State of U.P. (2020)**: In *Salamat Ansari v. State of U.P. (2020)*, the Allahabad High Court fiercely defended personal autonomy, quashing a kidnappingFIR filed by an interfaith bride's family. Overruling a conservative 2014 precedent, the court held that an adult's right to choose a life partner and convert voluntarily is an intrinsic facet of the Right to Privacy and Life (Article 21). The bench powerfully observed that it saw the couple not as "Hindu and Muslim," but as two mature individuals living together by choice, declaring that neither family nor the State has any legal authority to interfere in their private relationship.

- **Supreme Court (2025-2026 Observations):** In ongoing challenges, the Court has noted that while forced conversion is a "serious issue," laws must not be "weaponized" to target consenting adults. In March 2026, the Court quashed a conversion case in Uttar Pradesh, citing a lack of "credible evidence" and "legally flawed complaints."

Comparative Legislative Analysis Evolution of the Statutes

The "first generation" laws (e.g., Odisha, 1967) were largely focused on physical force. The "new generation" laws (e.g., UP 2021/2024, Maharashtra 2026) have introduced much harsher penalties and broader definitions.

Defining "Allurement" and "Force"

Under the **Uttar Pradesh Amendment Act 2024**, "allurement" includes "divine pleasure," "better lifestyle," or "free education." Such vague terminology allows for subjective police interpretation, where even charitable work by religious organizations can be characterized as illegal inducement.

The Marriage Link

Recent laws in Uttarakhand and UP declare marriages "void" if the sole purpose is conversion. This creates a legal paradox: to marry under personal law, one must often convert; but converting to marry is now potentially a crime.

Shifting the Burden of Proof

In a radical departure from standard criminal law (where the prosecution is innocent until proven guilty), these acts place the **burden of proof on the accused**. The person who converted or the "converter" must prove the act was voluntary, making defense nearly impossible in the face of communal or familial pressure.

Sociological Analysis: The Ground Reality Impact on Interfaith Unions The requirement for a 60-day prior notice (as seen in the **Maharashtra Freedom of Religion Bill, 2026**) exposes couples to "vigilante intervention." Once a notice is filed, it often becomes public knowledge, allowing fringe groups to harass the couple before the legal process even begins.

Protection vs. Infantilization

By mandating higher penalties for conversions involving women and SC/STs, the law reinforces social hierarchies. It treats these individuals as "property" of their original religious community that must be "protected" from "theft" by other faiths.

The Role of Non-State Actors

Research shows that many FIRs under these laws are filed not by the person who converted, but by "distantly related" family members or social organizations. This empowers non-state actors to act as moral police, using the law to settle personal or political scores.

Critical Challenges and Human Rights Privacy and Personal Liberty

The Puttaswamy (2017) judgment established privacy as a fundamental right. Requiring a citizen to declare their religious change to a District Magistrate for "approval" is a direct violation of this "unviolated sanctuary" of the mind.

International Human Rights Standards

The **ICCPR** (to which India is a party) explicitly protects the "freedom to have or to adopt a religion or belief of his choice." India's current legislative trend, particularly the criminalization of "inducement" like "praising another religion" on social media, sits in direct conflict with global standards of free expression and faith.

Conclusion & Recommendations

An analysis of the historical trajectories, constitutional frictions, and sociological realities detailed in this paper reveals that India's anti-conversion legislative framework has reached a critical structural turning point. What began as a fragmented, defensive mechanism in the colonial-era princely states to preserve demographic autonomy has transformed into a highly centralized, bureaucratic apparatus for monitoring personal liberty.

A comprehensive, socio-legal synthesis of the preceding sections leads to three core analytical conclusions.

1. The Realignment of the Constitutional Balance The constitutional friction animating this discourse exposes a profound shift in how the state conceptualizes its relationship with individual conscience. While the framework of Article 25 was hard-won in the Constituent Assembly to ensure a fluid, expressive "right to propagate," the judicial shield erected by *Rev. Stainislaus (1977)* permanently elevated "public order" over personal exploration.

However, as highlighted by Upendra Baxi's paradigm of transformative constitutionalism, modern state statutes have expanded far beyond the preventative scope of *Stainislaus*. By injecting state oversight directly into the domestic sphere—such as mandating a 30-to-60-day prior administrative notice to a District Magistrate—the current framework fundamentally violates the "unviolated sanctuary of the mind" protected under the *Puttaswamy (2017)* privacy doctrine. The process itself has been transformed into a punitive mechanism, creating an pervasive "chilling effect" that deters citizens from exercising their basic civil liberties.

2. The Paternalistic Subversion of Individual Agency

Sociologically, the "new generation" statutes (such as the Uttar Pradesh 2024 Amendments and the Maharashtra 2026 Bill) rely on deeply regressive, paternalistic assumptions. By introducing hyper-escalated penalties—stretching up to life imprisonment—for conversions involving women, Scheduled Castes, and Scheduled Tribes, the law explicitly shifts from protecting choice to enforcing the religious status quo.

As synthesized through Baxi's critique, this legal architecture structurally infantilizes the most marginalized segments of society. It frames these individuals not as independent, rational agents capable of making autonomous spiritual or romantic decisions, but as vulnerable community "property" prone to "allurement" by vague definitions like "divine pleasure."

Furthermore, this institutionalized entrapment is compounded by complex structural penalties: as settled in the Supreme Court's *Chinthada Anand (2026)* ruling, an individual from a Scheduled Caste who exercises their freedom of conscience by converting to a non-Indic faith faces an immediate, statutory forfeiture of their affirmative action protections. The legal system thus creates a double bind: it simultaneously polices an individual's outward social mobility while legally punishing their inward spiritual mobility.

3. The Weaponization of Criminal Procedure

From a strictly jurisprudential perspective, the most alarming evolution within these statutes is the systematic inversion of foundational criminal law principles. By shifting the burden of proof entirely onto the accused convert or clergy, the state effectively dismantles the presumption of innocence.

This procedural vulnerability is heavily exploited by non-state actors. Because the legislative language relies on highly subjective definitions of "allurement" and "inducement," it provides wide discretion for local law enforcement and invites vigilante groups to file third-party FIRs.While the Supreme Court's recent 2025–2026 observations have attempted to curb this weaponization—ruling that sweeping, uncorroborated allegations cannot sustain a trial and that complaints must come strictly from an "aggrieved person"—these ground-level interventions only address the symptoms of a deeper structural malady. Because the apex court has deferred a definitive verdict on the overarching constitutional validity of these state acts, a massive legislative gap persists, allowing states to continue escalating regulatory restrictions.

Final Analytical Takeaway

Ultimately, a comprehensive socio-legal analysis demonstrates that modern anti-conversion laws have overshot their legitimate state interest of preventing coercive fraud. In abandoning the "principled distance" essential to Indian secularism (*Sarva Dharma Sambhava*), the state has transformed the constitutional "Right to Freedom of Religion" into an absolute Right of the State to Regulate Religion. For the transformative promise of the Indian Constitution to endure, the judiciary must re-examine these statutes through the lens of strict individual autonomy, ensuring that the legal machinery of the republic protects the citizen's right to choose their own faith, their own partner, and their own destiny.

Policy Recommendations

- **Narrow Tailoring:** Define "allurement" and "force" with clinical precision to exclude charitable work or voluntary change of heart.
- **Privacy Shields:** Remove the requirement for public notices; verification should be a confidential matter between the individual and the Magistrate.
- **Restoring the Burden of Proof:** Revert to the standard "innocent until proven guilty" to prevent the harassment of innocent couples and clergy.

Final Outlook

The future of Indian secularism depends on whether the judiciary can harmonize the State's interest in public order with the individual's absolute right to personal conscience. Without reform, these laws risk turning the "Right to Freedom of Religion" into a "Right of the State to Regulate Religion."

References

I. Primary Legal Sources (Statutes)

- The Constitution of India, 1950, Arts. 14, 19, 21, 25.
- The Constitution (Scheduled Castes) Order, 1950.
- The Orissa Freedom of Religion Act, 1967 (Act 2 of 1968).
- The Raigarh State Conversion Act, 1936.
- The Special Marriage Act, 1954 (Act 43 of 1954).
- The Uttar Pradesh Prohibition of Unlawful Conversion of Religion Act, 2021 (U.P. Act No. 3 of 2021).
- The Uttar Pradesh Prohibition of Unlawful Conversion of Religion (Amendment) Act, 2024.
- The Maharashtra Dharma Swatantrya (Freedom of Religion) Bill, 2026.

II. Judicial Precedents (Case Law)

- *Chinthada Anand v. State of Andhra Pradesh*, 2026 SCC OnLine SC 294.
- *Justice K.S. Puttaswamy (Retd.) v. Union of India*, (2017) 10 SCC 1.
- *Noor Jahan Begum @ Anjali Mishra v. State of U.P.*, 2014 SCC OnLine All 15124.
- *Rev. Stainislaus v. State of Madhya Pradesh*, (1977) 1 SCC 677.
- *Salamat Ansari & 3 Others v. State of U.P. & 3 Others*, 2020 SCC OnLine All 1382.
- *Shafin Jahan v. Asokan K.M.*, (2018) 16 SCC 368.

III. Theoretical Scholarship & Book References

- **Baxi, Upendra.** (2010). *The Future of Human Rights*. Oxford University Press.

Application: Used in Section 2 & Section 7 to support the critique of state paternalism and the "infantilization" of marginalized groups.

- **Baxi, Upendra.** (2015). "Preliminary Notes on Transformative Constitutionalism." in *Transformative Constitutionalism in Southeast Asia*, Routledge.

Application: Directly frames Section 2.2 and Section 7.1 regarding how the law freezes social mobility instead of enabling individual dignity.

- **Bhargava, Rajeev.** (2006). *Secularism and Its Critics*. Oxford University Press.

Application: Foundational text for Section 2 and Section 2.1 to define the concept of "Positive Secularism" in India.

- **Bhargava, Rajeev.** (2023). *Between Hope and Despair: 100 Essays on Contemporary India*. Tulika Books.

Application: Supports Section 2.1 and the Conclusion's argument regarding how hyper-regulation dilutes the "principled distance" of the state.

IV. Journal Articles & Academic Reports

- **Chiriyankandath, James.** (2019). "The Politics of Religious Freedom in India: The Origins and Impact of Anti-Conversion Laws." *Journal of Church and State*, 61(2), 223–245.

Application: Excellent material to expand Section 1.1 (Historical Background) regarding Princely States.

- **Dhavan, Rajeev.** (2001). "Religious Freedom in India: The Constitutional Right to Propagate." *Journal of the Indian Law Institute*, 43(3), 293–321.

Application: Expands Section 3.1 regarding the Constituent Assembly debates on the word "propagate."

- **Sarkar, Tanika.** (2021). "Love Jihad, Unlawful Conversion, and the Policing of Inter-Community Marriages." *Social Scientist*, 49(5/6), 33–49.

Dr. Babita Baeraiya
Associate Professor
Law School, BHU
Varanasi

3

डॉ0 बी0 आर0 अम्बेडकर के राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक विचारों की प्रासंगिकता

डॉ0 सुशील दत

सारांश

डॉ. भीमराव अम्बेडकर एक भारतीय वकील, अर्थशास्त्री, राजनीतिज्ञ और समाज सुधारक थे। उन्हें भारतीय इतिहास में सबसे प्रभावशाली शख्सियतों में से एक माना जाता है। अंबेडकर का जन्म मध्य भारत के एक छोटे से शहर महू में एक मामूली साधन वाले परिवार में हुआ था और उनकी दलित पहचान के कारण उनके साथ भेदभाव किया गया था। इस अनुभव ने सामाजिक न्याय के प्रति उनके जुनून को बढ़ावा दिया और वह जाति व्यवस्था और दलितों और अन्य निचली जाति के समुदायों द्वारा सामना किए जाने वाले बड़े पैमाने पर भेदभाव के मुखर आलोचक बन गए। वह शिक्षा की शक्ति में भी दृढ़ विश्वास रखते थे और उन्होंने सभी भारतीयों, विशेषकर वंचित पृष्ठभूमि के लोगों के लिए शैक्षिक अवसरों को बेहतर बनाने के लिए अथक प्रयास किया। दलित आंदोलन के नेता के रूप में, अम्बेडकर दलित और अन्य उत्पीड़ित समुदायों के लिए सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक अधिकारों के संघर्ष में सबसे आगे थे। उन्होंने बड़े पैमाने पर विरोध प्रदर्शन आयोजित किए, सामाजिक अन्याय के मुद्दे पर विस्तार से लिखा और विधायी परिवर्तन लाने के लिए अन्य सुधारकों के साथ काम किया। अंबेडकर को 1950 में भारतीय संविधान को अपनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का श्रेय दिया जाता है, जिसने सभी भारतीयों को समान अधिकार प्रदान किए और जाति व्यवस्था को समाप्त कर दिया। उनके प्रयासों का भारत के सामाजिक और राजनीतिक परिदृश्य पर स्थायी प्रभाव पड़ा है और उन्हें आज भी सामाजिक न्याय और समानता के संस्थापक के रूप में याद किया जाता है। इस शोध पत्र का उद्येश्य वर्तमान की परिस्थितियों के संदर्भ में अम्बेडकर जी के विचारों की प्रासंगिकता का अध्ययन करना है। अम्बेडकर जी द्वारा दिये गये विचार केवल 1950 के दशक तक ही उचित थे या वर्तमान समाज में उनकी महता शेश है या नहीं या वे विचार अब केवल कोरे आदर्श विचार ही रह गये हैं।

सार शब्द : सामाजिक न्याय, दलित, आर्थिक, जाति, अवसर, अधिकार, समानता।

प्रस्तावना

"शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो"– बी0 आर0 अम्बेडकर

भीमराव रामजी अम्बेडकर, जिन्हें बाबासाहेब के नाम से जाना जाता है, एक समाज सुधारक, राजनीतिज्ञ, विद्वान, विचारक और भारतीय संविधान के वास्तुकार थे। उनका जन्म 14 अप्रैल 1891 को महू, मध्य प्रदेश में एक दलित परिवार में हुआ था। उनके पिता सूबेदार पद पर कार्यरत सेना अधिकारी रामजी मालोजी समकपाल और माता भीमाबाई सकपाल थे। उनका परिवार गरीब था और उन्हें हिंदू जाति व्यवस्था के कारण सामाजिक भेदभाव और अपमान का सामना करना पड़ा। सामाजिक और आर्थिक कठिनाइयों के बावजूद, उन्होंने शिक्षित होने का दृढ़ संकल्प किया और अपनी डिग्री प्राप्त करने के लिए कड़ी मेहनत की। उनकी विदेश शिक्षा प्राप्ति में वितीय सहायता **बडौदा के महाराजा सयाजीराव गायकवाड.** ने की। उन्होंने संयुक्त राज्य अमेरिका के कोलंबिया विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में डॉक्टरेट की उपाधि और लंदन विश्वविद्यालय से कानून में डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की।

अम्बेडकर एक प्रतिभाशाली विद्वान थे और उन्होंने भारतीय समाज और राजनीति में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने हाशिए पर मौजूद और दलित समुदायों के अधिकारों के लिए लड़ाई लड़ी और उनके अधिकारों के मुखर समर्थक थे। वह जाति व्यवस्था के कट्टर विरोधी थे और उन्होंने भारत में **अस्पृश्यता के उन्मूलन** के लिए संघर्ष किया। उन्हें भारतीय संविधान की मसौदा समिति के अध्यक्ष के रूप में नियुक्त किया गया था और उन्हें इसकी कुछ प्रमुख विशेषताओं के डिजाइन का श्रेय दिया जाता है।

अम्बेडकर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रबल समर्थक थे और भारत का संविधान लिखने वाली संविधान सभा के सदस्य थे। उन्होंने स्वतंत्र भारत के पहले कानून मंत्री के रूप में भी कार्य किया। वह हिंदू धर्म और उसके धर्मग्रंथों के मुखर आलोचक थे और उन्होंने हिंदू धर्म के सुधार के लिए काम किया। उन्होंने 1955 में भारतीय बौद्ध महासभा की स्थापना की और भारत में बौद्ध पुनरुद्धार आंदोलन के एक प्रमुख नेता थे।

अम्बेडकर एक प्रेरक नेता थे जिन्होंने अपना जीवन सामाजिक न्याय के लिए समर्पित कर दिया और पीड़ितों के अधिकारों के लिए लड़ाई लड़ी। राष्ट्र के प्रति उनके अपार योगदान को देखते हुए उन्हें 1990 में भारत रत्न से सम्मानित किया गया। सामाजिक न्याय और सभी के लिए समानता की विरासत छोड़कर 6 दिसंबर 1956 को दिल्ली में उनका निधन हो गया।

बी0 आर0 अम्बेडकर जी के राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक विचार

"हमें जो स्वतंत्रता मिली हैं उसके लिए क्या कर रहे हैं? यह स्वतंत्रता हमें अपनी सामाजिक व्यवस्था को सुधारने के लिए मिली हैं। जो असमानता, भेदभाव और अन्य चीजों से भरी

हुई है, जो हमारे मौलिक अधिकारों के साथ संघर्ष करती है।"— बी.आर. अम्बेडकर

बी.आर. अम्बेडकर, जिन्हें बाबासाहेब के नाम से जाना जाता है, भारत के महानतम समाज सुधारकों में से एक थे। वह एक प्रखर विद्वान, एक अर्थशास्त्री, एक समाज सुधारक, एक राजनीतिज्ञ और एक महान नेता थे जिन्होंने भारतीय समाज के वंचित वर्गों के उत्थान के लिए काम किया। अम्बेडकर को राष्ट्र के प्रति उनके अपार योगदान और भारत के उत्पीड़ित वर्गों की पीड़ा को कम करने के उनके प्रयासों के लिए याद किया जाता है। अम्बेडकर महिलाओं, बच्चों और निम्न वर्गों के अधिकारों के प्रबल समर्थक थे और उन्होंने एक ऐसा समाज बनाने के लिए काम किया जिसमें हर कोई समान स्तर पर हो। वह लोकतंत्र और स्वतंत्रता के सिद्धांतों में दृढ़ विश्वास रखते थे और भारतीय सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था में बदलाव लाने के लिए प्रयासरत थे।

अम्बेडकर ने अछूतों और समाज के हाशिए पर रहने वाले वर्गों के उत्थान की दिशा में काम किया। उन्होंने दमनकारी जाति व्यवस्था के उन्मूलन के लिए काम किया और तथाकथित अछूतों के अधिकारों के लिए लड़ाई लड़ी। उन्होंने उत्पीड़ित वर्गों के अधिकारों के लिए लड़ने के लिए अखिल भारतीय अनुसूचित जाति महासंघ की स्थापना की।

अम्बेडकर ने शिक्षा क्षेत्र में सुधार लाने के लिए भी काम किया। उन्होंने **मूकनायक** नामक समाचार पत्र शुरू किया, जो जनता को शिक्षित करने और सामाजिक सुधार लाने पर केंद्रित था। वह महिलाओं के अधिकारों के भी प्रबल समर्थक थे और उन्होंने भारत में महिलाओं के उत्थान के लिए काम किया। उन्होंने भारत में महिलाओं की शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए महिला शिक्षा कार्य बल की स्थापना की। उन्होंने महिलाओं के अधिकारों को बढ़ावा देने के लिए अखिल भारतीय महिला सम्मेलन की भी स्थापना की।

अम्बेडकर ने भारत के वंचित वर्गों के उत्थान के लिए भी काम किया। उन्होंने **अखिल भारतीय दलित वर्ग लीग** की स्थापना की, जिसने भारत के वंचित वर्गों को सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक अवसर प्रदान करने के लिए काम किया। उन्होंने भारत में भूमि सुधार लाने के लिए भी काम किया, जिसका उद्देश्य भूमिहीन किसानों को भूमि प्रदान करना और दलितों के लिए समान अधिकार लाना था।

बी. आर. अम्बेडकर एक महान समाज सुधारक और नेता थे जिन्होंने भारत के वंचित वर्गों के कल्याण के लिए काम किया। सामाजिक सुधार लाने और भारतीय सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था में बदलाव लाने के उनके प्रयासों को हमेशा याद किया जाएगा और सराहा जाएगा। वह आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा हैं और राष्ट्र के प्रति उनके अपार योगदान के लिए उन्हें हमेशा याद किया जाएगा।

बी. आर. अम्बेडकर एक महान समाज सुधारक और नेता थे जिन्होंने भारत के वंचित वर्गों के कल्याण के लिए काम किया। सामाजिक सुधार लाने और भारतीय सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था में बदलाव लाने के उनके प्रयासों को हमेशा याद किया जाएगा और सराहा जाएगा। वह आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा हैं और राष्ट्र के प्रति उनके अपार योगदान के लिए उन्हें हमेशा याद किया जाएगा। उन्हें भारतीय संविधान के जनक के रूप में जाना जाता है और राष्ट्र के प्रति उनके अपार योगदान के लिए उनका बहुत सम्मान किया जाता है। वह सामाजिक न्याय और सभी के लिए समानता के प्रति गहराई से प्रतिबद्ध थे।

अम्बेडकर जी दलितों, आदिवासियो, पिछडे व महिलाओं के मताधिकार का पूर्ण समर्थन करते थे। उनका मत था कि यदि इन वर्गो को मताधिकार से वंचित रखा गया तो समाज का कभी–भी विकास नहीं हो सकता।अतः जब बाबा साहेब को प्रारूप समिति का अध्यक्ष बनाया गया तो उन्होनें संविधान में प्रावधान किया कि सभी नागरिकों को बिना किसी भेदभाव के मताधिकार का अधिकार प्रदान किया जाए।

बी.आर. अम्बेडकर दलित समुदाय के नेता थे और उनके खिलाफ भेदभाव और सामाजिक अन्याय को समाप्त करने का उनका आजीवन मिशन था। वह हाशिए पर मौजूद समुदायों के अधिकारों के कट्टर समर्थक थे और उन्होंने भारत में निचली जातियों और अछूतों के उत्थान के लिए लड़ाई लड़ी। वह लैंगिक समानता के भी कट्टर समर्थक थे। उन्होंने 1950 के दशक में **हिंदू कोड बिल** पारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिससे भारत में महिलाओं के अधिकारों में वृद्धि हुई। उनके विचारों से प्रेरित होकर होकर ही केंद्र सरकार ने **अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989** का निर्माण किया। यह अधिनियम हाशिए पर रहने वाले समुदायों के अधिकारों की सुरक्षा में एक बड़ा कदम था।

बी.आर. अम्बेडकर भी शिक्षा के एक महान समर्थक थे और भारत में मुफ्त और सार्वभौमिक शिक्षा का उनका दृष्टिकोण था। उन्होंने **भारत में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग** की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिसने भारत में उच्च शिक्षा के विकास की नींव रखी। वह अखिल भारतीय दलित वर्ग लीग के संस्थापक सदस्य भी थे, जिसने भारत में दलित वर्गों की भलाई के लिए काम किया। वह अखिल भारतीय अनुसूचित जाति

महासंघ के संस्थापक भी थे, जिसने देश में अनुसूचित जातियों के उत्थान के लिए काम किया।

बी.आर. अम्बेडकर को भारतीय समाज के वंचित और हाशिये पर पड़े वर्गों के उत्थान में उनके अपार योगदान के लिए याद किया जाता है। वह शिक्षा की शक्ति में दृढ़ विश्वास रखते थे और उन्होंने जनता के बीच शिक्षा और ज्ञान का प्रसार सुनिश्चित करने के लिए अथक प्रयास किया। वह सामाजिक न्याय और समानता के समर्थक थे और उन्होंने समाज के वंचित वर्गों के उत्थान के लिए काम किया। वह एक महान सुधारक थे और दलितों के उत्थान के लिए उनके प्रयासों को आज भी याद किया जाता है। उन्होनें दलितो व पिछडों के लिए सरकारी नौकरियों व स्कूल, कॉलेजों में आरक्षण की व्यवस्था का प्रावधान संविधान में करवाया।

महाड आंदोलन

बी.आर. अंबेडकर भारत के सबसे प्रभावशाली समाज सुधारकों में से एक थे। उन्हें विशेष रूप से 1927 में महाड आंदोलन का नेतृत्व करने के लिए याद किया जाता है। इस आंदोलन को भारत में जाति व्यवस्था के खिलाफ दलितों द्वारा पहले संगठित संघर्ष के रूप में देखा गया था। यह आंदोलन तत्कालीन बॉम्बे प्रेसीडेंसी के महाड शहर में सार्वजनिक पानी की टंकियों के उपयोग पर ऊंची जाति के हिंदुओं द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों के खिलाफ एक विरोध था। ऊंची जाति के हिंदुओं ने दलितों को सार्वजनिक टैंक से पानी भरने से रोक दिया था, जो उनके उपयोग के लिए बनाया गया था। इससे दलितों को साफ पीने का पानी नहीं मिल पा रहा था।

इस आंदोलन का नेतृत्व बीआर अंबेडकर ने किया था और इसमें क्षेत्र के हजारों दलितों ने भाग लिया था। प्रदर्शनकारियों ने पानी तक पहुंच के अपने अधिकार की मांग करते हुए सार्वजनिक पानी की टंकी तक मार्च किया। इस आंदोलन को स्थानीय उच्च जाति के हिंदुओं द्वारा प्रतिरोध का सामना करना पड़ा, जिन्होंने उन्हें टैंक तक पहुंचने से रोकने की कोशिश की। हालाँकि, प्रदर्शनकारी टैंक तक पहुँचने में कामयाब रहे और इसका उपयोग करने का अपना अधिकार घोषित किया। यह दलितों के लिए एक बड़ी जीत थी और उनके अधिकारों के लिए एक लंबे संघर्ष की शुरुआत थी। इस आंदोलन को **महात्मा गांधी** जी ने भी समर्थन दिया। गांधी जी का मानना था कि किसी व्यक्ति को अछूत समझना, यह मानवता पर कलंक के समान है। गांधी जी ने अछूतों को **हरिजन** की संज्ञा दी।

महाड़ आंदोलन भारत में दलित मुक्ति आंदोलन के इतिहास में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर था। इसने जाति व्यवस्था की बेड़ियों को तोड़ने में मदद की और अन्य सामाजिक सुधारों का मार्ग प्रशस्त किया। बीआर अंबेडकर दलित मुक्ति आंदोलन के नेता बने । उनकी विरासत भारत के लाखों दलितों के लिए आशा और प्रेरणा का प्रतीक बनी हुई है।

पार्वती मंदिर के लिए आंदोलन

समाज सुधारक और भारतीय संविधान के निर्माता बी. आर. अम्बेडकर के नेतृत्व में पुणे में पार्वती मंदिर के लिए आंदोलन, भारत में अपनी तरह के सबसे महत्वपूर्ण संघर्षों में से एक था। यह एक आंदोलन था जिसने दलितों, या हिंदू जाति व्यवस्था में सबसे निचली जातियों से संबंधित लोगों के मंदिर में पूजा करने के अधिकारों पर जोर देने की मांग की थी। यह सामाजिक न्याय और आबादी के हाशिए पर मौजूद वर्गों के अधिकारों की मान्यता के लिए संघर्ष का एक शक्तिशाली बयान भी था।यह मंदिर 19वीं सदी के अंत में बनाया गया था और पुणे में एक पहाड़ी की चोटी पर स्थित था। मंदिर का स्वामित्व ऊंची जाति के प्रभु समुदाय के पास था और यह केवल उनके लिए खुला था। दलितों के प्रवेश पर रोक लगा दी गई और उन्हें प्रार्थना करने या कोई अन्य धार्मिक गतिविधियाँ करने की अनुमति नहीं दी गई।

1927 में, अम्बेडकर ने इस भेदभाव को चुनौती देने का फैसला किया और पूरे देश से हजारों दलितों और समर्थकों का एक विशाल मार्च पार्वती मंदिर तक आयोजित किया। मार्च को प्रभुओं और पुलिस के कड़े प्रतिरोध का सामना करना पड़ा, जिन्होंने भीड़ को तितर–बितर करने के लिए हिंसा का सहारा लिया। अम्बेडकर को गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया।

हालाँकि, आंदोलन ने गति पकड़ ली और ब्रिटिश सरकार को 1930 में एक कानून पारित करने के लिए मजबूर होना पड़ा, जिससे दलितों को पार्वती मंदिर में प्रवेश करने और प्रार्थना करने की अनुमति मिल गई। यह अम्बेडकर और समग्र रूप से दलित समुदाय के लिए एक बड़ी जीत थी।

पुणे में पार्वती मंदिर के लिए अम्बेडकर का आंदोलन सामाजिक न्याय और समानता के लिए भारत के संघर्ष के इतिहास में एक मील का पत्थर था। यह आबादी के हाशिए पर मौजूद वर्गों के अधिकारों को पहचानने और उनके खिलाफ भेदभाव को समाप्त करने की आवश्यकता का एक शक्तिशाली बयान था।

डॉ0 अम्बेडकर जी के विचारों की वर्तमान समय में प्रासंगिकता

बाबा साहेब के विचारों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वर्तमान समय में भी उनके विचार समीचीन हैं। वर्तमान समय में देश की आजादी के 75 वर्शों बाद भी दलितों, पिछडों व महिलाओं

के साथ भेदभाव किया जाता है। आये दिन समाचार पत्रों में प्रकाशित होता रहता है कि किसी स्कूल में दलित बच्चो को पानी पीने से रोक दिया गया , कभी दलित परिवार के दुल्हों को घोडी पर बैठने से रोक दिया जाता है। कभी महिलाओं को दहेज के नाम पर परेशान किया जाता है, कभी–कभी तो उनकी दहेज के नाम पर हत्या तक कर दी जाती है। जब तक समाज में इस प्रकार के संकीर्ण मानसिकता के लोग रहेंगें तब तक बाबा साहेब के द्वारा दिये गये विचारों की निरन्तर प्रासंगिकता बनी रहेगी।

डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, जिन्हें प्यार से बाबा साहेब के नाम से जाना जाता है, भारत के इतिहास में एक उल्लेखनीय व्यक्ति थे। उनका जीवन सिर्फ एक चित्र नहीं बल्कि भारत के लाखों दलितों के लिए आशा, साहस और दृढ़ संकल्प का प्रतीक है। ऐसे लोग हैं जिन पर सदियों से अत्याचार किया गया है और उनके साथ भेदभाव किया गया है। डॉ. अम्बेडकर की सामाजिक न्याय के प्रति अटूट प्रतिबद्धता थी। उनकी बुद्धि और हाशिए पर मौजूद समुदायों को सशक्त बनाने के उनके अथक प्रयास आज भी प्रभावी हैं।

उन्होंने महाराष्ट्र के एक छोटे से गाँव में अछूत के रूप में जन्म लेने से लेकर स्वतंत्र भारत के सबसे प्रभावशाली नेताओं में से एक बनने और इसके संविधान का मसौदा तैयार करने तक की अविश्वसनीय यात्रा की। उनकी जीवन कहानी सभी बाधाओं के खिलाफ संघर्ष और दृढ़ता की कहानी है। उन्होंने अपने लेखन, भाषणों और राजनीतिक सक्रियता के माध्यम से इन अन्यायों को चुनौती देने के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया।

निष्कर्ष

बाबा साहेब का जीवन इस बात का उदाहरण है कि विपरीत परिस्थितियों में भी धैर्य और दृढ़ संकल्प के माध्यम से किसी की परिस्थितियों से ऊपर उठना संभव है। यह हम सभी को एक ऐसी दुनिया बनाने की दिशा में प्रयास करने के लिए प्रेरित करता है जहां प्रत्येक व्यक्ति के साथ उनकी जाति या पंथ की परवाह किए बिना सम्मान और सम्मान के साथ व्यवहार किया जाता है। उनका जीवन और कार्य ऐसी भावनाएँ उत्पन्न करते हैं जिन्हें शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। उनका जीवन उनकी विरासत के बारे में बहुत कुछ बताता है जो आज भी पीढ़ियों को प्रेरित करता है। समाज में जब तक किसी भी रूप में भेदभाव विद्यमान रहेगा, तब तक बाबा साहेब के विचारों की प्रासंगिकता बनी रहेगी।

अतः अंत में कहा जा सकता है कि कुछ जातियों ने बाबा साहेब को केवल अपने तक सीमित कर लिया है परन्तु महापुरूश किसी एक समाज की धरोहर नही होते बल्कि वे तो सम्पूर्ण समाज की धरोहर होते हैं। बाबा साहेब सूर्य के प्रकाश की भॉति हैं जैसे–जैसे सूर्योदय होगा उनका प्रकाश इस जगत में अविरल रूप से फैलता रहेगा।

1. बाबा साहेब अम्बेडकर सम्पूर्ण वाडमय खंड –4, तीसरा संसक्रण 2013,डॉ0 अम्बेडकर प्रतिश्ठान, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार , नई दिल्ली, पृ0 सं0–220–221.

2. के0 एस0 भारती,फाउन्डेशन्स आफ अम्बेडकर, थाट नई दिल्ली, दत्त सन्स प्रकाशन, पृ0 सं0– 78–79.

3. ए0 एस0 राशेखराचार्य, बी0 आर0 अम्बेडकर दि क्विस्ट फॉर सोशियल जस्टिस नई दिल्ली, उप्पल पबिलिशिंग हाउस 1989, पृ0 सं0–28.

4. मलाबार बम्बई की सभा में परिया महिलाओं को सम्बोधित करते हुए 27 दिसम्बर 1927.

5. डॉ0 विश्वप्रकाश गुप्त, भीमराव अम्बेडकर व्यक्तित्व और विचार, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2006, पृश्ठ सं0–36.

6. https://www.amarujala.com / columns / blog /hindu-code-bill-dr-babasaheb-ambedkar - significance-importance-nehru-and-the-hindu-code-bill.

7. https: // en. wikipedia. org/ wiki/ Scheduled_Caste_and_Scheduled_Tribe_(Prevention_of_Atrocities)_Act,_1989

8.https://indianexpress.com/article/explained / what -was-mahad-satyagraha-led-by-br-ambedkar-8556515/.

9. बी0 आर0 अम्बेडकर,वॉट कांग्रेस एंड गांधी हैव डन टू द अनटचैबल्स , थैकर कम्पनी ,बम्बई पृ0 सं0–114

10.https://school.careers360.com/essay-on-dr-bhim-rao-ambedkar-essy#:~: text= He %20 was% 20born %20into % 20a, rights %20of %20 the % 20 backward % 20 castes.

संदर्भ ग्रंथ सूची

- डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, भारत का राष्ट्रीय अंश, 1916
- डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, भारत में जातियां और उनका मशीनीकरण ,1916
- डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, भारत में लघु कृषि और उनके उपचार,1917
- डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, मूल नायक (साप्ताहिक),1920
- डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, ब्रिटिश भारत में साम्राज्यवादी

वित्त का विकेंद्रीकरण,1921

- डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, रुपये की समस्याः उद्भव और समाधान,1923
- डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ब्रिटिश भारत में प्रांतीय वित्त का अभ्युदय,1925
- डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, बहिष्कृत भारत (साप्ताहिक) ,1927
- डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, जनता (साप्ताहिक) ,1930
- डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, संघ बनाम स्वतंत्रता,1939
- डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, मि. गांधी एवं अछूतों की विमुक्ति,1942
- डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, रानाडे, गांधी और जिन्ना,1943
- डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, कांग्रेस और गांधी ने अछूतों के लिए क्या किया,1945
- डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, शूद्र कौन और कैसे ,1948
- डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, भगवान बुद्ध और उनका धर्म,1957
- डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, पाकिस्तान पर विचार,1940
- डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, पाकिस्तान या भारत का विभाजन,1945
- बाबा साहेब अम्बेडकर सम्पूर्ण वाडमय खंड –1–21, ,डॉ0 अम्बेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार , नई दिल्ली,

डॉ0 सुशील दत (Dr. Sushil Dutt),
सहायक प्राध्यापक,
राजनीति विज्ञान विभाग,
राजकीय महिला महाविद्यालय गुरावडा (रेवाडी)
Email : drsdvats@gmail.com
Mob. No. - 9467521742

4

मानसिक स्वास्थ्य का समाजशास्त्रः युवाओं के संदर्भ में एक अध्ययन

डॉ. आशुतोष

विषय–सूची

1. प्रस्तावना
2. मानसिक स्वास्थ्य की समाजशास्त्रीय अवधारणा
3. अध्ययन की आवश्यकता और महत्त्व
4. अध्ययन के उद्देश्य
5. शोध प्रश्न
6. शोध पद्धति
7. युवाओं के मानसिक स्वास्थ्य के प्रमुख सामाजिक निर्धारक
8. मानसिक स्वास्थ्य से जुड़ा सामाजिक कलंक
9. युवा मानसिक स्वास्थ्य और संस्थागत प्रतिक्रिया
10. परिणाम एवं समाजशास्त्रीय विश्लेषण
11. चर्चा
12. सुझाव
13. निष्कर्ष

आभार

हितों का टकराव

वित्तीय सहायता

नैतिक स्वीकृति

डेटा उपलब्धता

सन्दर्भ सूची

सारांश

जबकि मानसिक स्वास्थ्य अक्सर व्यक्तिगत मनोविज्ञान, जैविक संवेदनशीलता अथवा चिकित्सकीय निदान की सीमा में समझा जाता है, तो परिवार, शिक्षा, रोजगार, वर्ग, जाति, लैंगिकता, डिजिटल संस्कृति और संस्थागत अवसरों से युवाओं की मानसिक स्थिति प्रभावित होती है। यह अध्ययन प्रमुख सामाजिक निर्धारकों, सामाजिक कलंक, सहायता–प्राप्ति व्यवहार और संस्थागत प्रतिक्रियाओं का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करता है जो भारतीय युवाओं के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव डालते हैं। अध्ययन वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक शोध–अभिकल्प पर आधारित है, जो 2020–2025 के बीच प्रकाशित आधिकारिक रिपोर्टों, नीति–दस्तावेजों और सहकर्मी–समीक्षित अध्ययनों का विषयगत और तुलनात्मक अध्ययन करता है। विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि शैक्षणिक प्रतिस्पर्धा, रोजगार की अनिश्चितता, आर्थिक विषमता, पारिवारिक अपेक्षाएँ, लैंगिक मानदंड, सामाजिक बहिष्करण और खराब डिजिटल उपयोग युवा पीड़ाओं को बढ़ाते हैं। विद्यालयों, महाविद्यालयों, परिवारों, समुदायों, कार्यस्थलों और सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं को जोड़ने वाली नीति बहुविध, अधिकार–आधारित और सांस्कृतिक है।

मुख्य शब्दः मानसिक स्वास्थ्य, युवा, समाजशास्त्र, सामाजिक निर्धारक, बेरोजगारी, सोशल मीडिया, सामाजिक कलंक, भारत

1. प्रस्तावना

समकालीन भारत में मानसिक स्वास्थ्य केवल चिकित्सा नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय, मानव पूँजी और लोकतांत्रिक सहभागिता भी है। युवावस्था में व्यक्ति शिक्षा, रोजगार, निर्भरता से आंशिक स्वायत्तता और पारिवारिक पहचान से सार्वजनिक पहचान की ओर बढ़ते हैं। इस परिवर्तन में अवसर और उम्मीदें बढ़ती हैं, लेकिन असफलता, तुलना तथा अनिश्चितता भी बढ़ती हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार 10 से 19 वर्ष की आयु के लगभग हर सात में से एक किशोर मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं का सामना करता है, और व्यवहारगत विकार, अवसाद और चिंता इस आयु समूह में बीमारी और अक्षमता के प्रमुख कारण हैं (WHO, 2024)। UNICEF (2021) ने कहा कि जीवन–पर्यावरण, संबंध, गरीबी, हिंसा, शिक्षा, सामाजिक संरक्षण और गरीबी मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव डालते हैं। यही कारण है कि युवाओं की मानसिक पीड़ा को उनकी निजी कमजोरी मानना उनके असली कारणों को अदृश्य करता है।

भारत में शिक्षा और डिजिटल संपर्क का विस्तार हुआ है, लेकिन गुणवत्तापूर्ण रोजगार, सुरक्षित सामाजिक परिवेश और सुलभ मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार नहीं हुआ। युवाओं के दैनिक जीवन को प्रतियोगी परीक्षाएँ, डिग्री और काम के बीच असंगति, परिवार की आर्थिक अपेक्षाएँ, विवाह संबंधी दबाव और ऑनलाइन प्रतिष्ठा नियंत्रित करते हैं। प्दकपं म्उचसवलउमदज त्मचवतज 2024 ने शिक्षित युवाओं में बेरोजगारी और कौशल–अवसर असंतुलन को गंभीर बताया है (प्स्व और प्भ्क, २०२४) दूसरी ओर, छब्ठ के आंकड़े बताते हैं कि विद्यार्थियों की आत्महत्या की दर लगातार बढ़ी है। ये आंकड़े बताते हैं कि आत्महत्या किसी एक घटना से समझी नहीं जा सकती, लेकिन शिक्षा, परिवार और सामाजिक समर्थन की संस्थाओं में निवारक क्षमता को बढ़ाना महत्वपूर्ण है (NCB, 2020, 2021, 2022)

2. मानसिक स्वास्थ्य की समाजशास्त्रीय अवधारणा दुर्खीम का

सामाजिक एकीकरण और सामाजिक विनियमन का सिद्धान्त कहता है कि व्यक्ति की भावनात्मक स्थिरता उसकी समुदाय से जुड़ाव और स्वीकार्य सामाजिक अपेक्षाओं पर निर्भर करती है। ज्यादा नियंत्रण अकेलेपन, अर्थहीनता और अलगाव को बढ़ा सकता है, जबकि कम नियंत्रण स्वतंत्रता को सीमित कर सकता है। परिवार भारतीय युवाओं के लिए एकीकरण का स्रोत है, लेकिन करियर, विवाह और कठोर सम्मान की उम्मीदों के माध्यम से भी दबाव डाल सकता है। परिवार को सुरक्षा या नियंत्रण की जगह एक द्वंद्वात्मक संस्था के रूप में देखा जाना चाहिए। सामाजिक भागीदारी, दोस्ती और भरोसेमंद वयस्क संबंध मानसिक स्वास्थ्य की सामाजिक संपत्ति हैं।

मार्टन का स्ट्रेन सिद्धान्त मानता है कि तनाव सांस्कृतिक रूप से स्वीकृत लक्ष्यों और उन्हें प्राप्त करने के वैध उपायों के बीच अंतर से पैदा होता है। भारत के युवा सफलता, उपभोग, प्रतिष्ठित नौकरी और आर्थिक गतिशीलता के आदर्शों से घिरे हैं, लेकिन शिक्षा का स्तर, सामाजिक नेटवर्क, धन और रोजगार के अवसर समान रूप से कम हैं।

सामाजिक निर्माणवाद मानसिक स्वास्थ्य की समस्याओं से इनकार नहीं करता; इसके बजाय, यह पूछता है कि सामान्यता, सफलता, परिपक्वता और विचलन को किस सामाजिक परिप्रेक्ष्य में परिभाषित किया जाता है। युवा महिलाओं को नारीवादी दृष्टिकोण के अनुसार लैंगिक श्रम–विभाजन, सुरक्षा का भय, यौन उत्पीड़न, विवाह–दबाव और भावनात्मक देखभाल का असमान बोझ खतरा पैदा करता है। पुरुषसत्ता भी लड़कों और पुरुषों को दुःख व्यक्त करने या सहायता माँगने से रोक सकती है। सामाजिक निर्धारक दृष्टिकोण मानसिक स्वास्थ्य के मुख्य कारणों में आय, आवास, शिक्षा, भेदभाव, डिजिटल सुरक्षा और सेवाओं तक पहुँच को शामिल करता है (WHO, 2022)।

3. युवावस्था में शिक्षा, रोजगार, संबंध और नागरिक पहचान की दीर्घकालीन प्रवृत्ति के कारण अध्ययन की आवश्यकता और महत्व है। असहायता, निरंतर तनाव या अनुपचारित अवसाद केवल वर्तमान सुख–कल्याण को नहीं प्रभावित करते; वे उपस्थिति, शिक्षण, उत्पादकता और संबंधों को भी प्रभावित करते हैं। स्वास्थ्य, शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा और समुदाय के बीच समन्वित सेवाओं की जरूरत को WHO और UNICEF की 2024 की मार्गदर्शिका ने स्पष्ट किया है (WHO – UNICEF, 2024)। भारत में यह आवश्यकता ज्यादा महत्वपूर्ण है क्योंकि देश का ग्रामीण विस्तार, युवा आबादी, भाषाई–सांस्कृतिक विविधता और विशेषज्ञों की कमी सेवा–मॉडल को अपर्याप्त बनाती है।

परीक्षा–केंद्रित संस्कृति, रैंकिंग और दंडात्मक नियंत्रण मानसिक स्वास्थ्य की समस्याओं का कारण बन सकते हैं, हालांकि शिक्षण संस्थान मानसिक स्वास्थ्य के लिए बहुत कुछ प्रदान करते हैं। भारत में पूरे–विद्यालय दृष्टिकोण ने मानसिक स्वास्थ्य साक्षरता, सुरक्षित विद्यालय वातावरण, सकारात्मक शिक्षक–विद्यार्थी संबंध, अभिभावक सहभागिता और कलंक–न्यूनता को सबसे महत्वपूर्ण कारक मानते हैं (Hugh–Jones et al-, 2025)।

4। अध्ययन के उद्देश्य 1. परिवार, शिक्षा, रोजगार, वर्ग, जाति, लैंगिकता और डिजिटल संस्कृति संबंधी सामाजिक कारकों का विश्लेषण करना, जो भारतीय युवाओं के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं।

2. आर्थिक असुरक्षा, शिक्षित बेरोजगारी और भविष्य की अनिश्चितता के मनोवैज्ञानिक प्रभावों को समझना

3. जोखिम, साइबरबुलिंग, ऑनलाइन तुलना और समस्याग्रस्त डिजिटल उपयोग की समीक्षा करना।

4. शहरी, मध्य–शहरी और ग्रामीण युवाओं की सेवा–पहुँच और सामाजिक अनुभवों में अंतर को समझना

5. मानसिक स्वास्थ्य से जुड़े सार्वजनिक कलंक, स्वयं–कलंक और सहायता–प्राप्ति व्यवहार का समाजशास्त्रीय अध्ययन करना

6. परिवार, शिक्षण संस्था, समुदाय, कार्यस्थल और स्वास्थ्य सेवाओं की वर्तमान और भविष्य की भूमिकाओं का आकलन करना।

7. सामाजिक न्याय पर आधारित, बहुस्तरीय और युवा–केंद्रित नीतिगत सुझाव देना।

5. यह अध्ययन निम्नलिखित प्रश्नों पर केंद्रित हैरू भारतीय युवाओं के मानसिक स्वास्थ्य पर सबसे अधिक प्रभाव कौन–से सामाजिक निर्धारक डालते हैं? शिक्षा और रोजगार की संरचनाएँ कैसे आशा, तनाव और आत्म–मूल्य को जन्म देती हैं? संबंध, सामाजिक तुलना और उत्पीड़न के अनुभव को डिजिटल मंच कैसे बदलते हैं? शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में जोखिम और सेवा–पहुँच कैसे अलग हैं? सामाजिक कलंक कैसे सहायता माँगने, समस्या बताने और उपचार जारी रखने पर प्रभाव डालता है? तथा व्यक्तिगत परामर्श से अधिक संस्थागत हस्तक्षेप सामाजिक वातावरण को बदल सकते हैं?

6. शोध प्रक्रियाः यह अध्ययन द्वितीयक, विश्लेषणात्मक और वर्णनात्मक शोधों पर आधारित समाजशास्त्रीय अध्ययन है।

2020–2025 के बीच, WHO, UNICEF, NCRB, भारत सरकार, प्स् और सहकर्मी–समीक्षित शोधों को प्राथमिकता दी गई। चयन के मानदंड थेः पद्धति की पारदर्शिता, संस्थागत विश्वसनीयता, युवा या किशोर मानसिक स्वास्थ्य से प्रत्यक्ष संबंध, सामाजिक निर्धारकों या सेवा–पहुँच पर स्पष्ट निष्कर्ष। समकालीन निष्कर्षों के लिए नवीन स्रोतों का उपयोग किया गया, जबकि दुर्खीम, मर्टन और गॉफमैन जैसे शास्त्रीय सिद्धान्तों का उपयोग अवधारणात्मक आधार के रूप में किया गया।

7. 7.1 परिवार और पारिवारिक संबंधः युवा मानसिक स्वास्थ्य के प्रमुख सामाजिक निर्धारक परिवार संकट में देखभाल, आर्थिक सहायता और भावनात्मक सुरक्षा प्रदान करता है। फिर भी तुलना, हिंसा, घरेलू संघर्ष, अभिभावकीय अपेक्षाएँ और संवाद की कमी मानसिक दबाव बढ़ा सकती हैं। संयुक्त परिवार से एकल परिवार की ओर बदलने का प्रभाव अलग नहीं है; छोटे परिवारों में अधिक स्वतंत्रता हो सकती है, लेकिन कम साझा देखभाल हो सकती है। करियर और विवाह को परिवार की सामूहिक प्रतिष्ठा से जोड़ने पर युवा की असफलता एक व्यक्तिगत घटना नहीं होती, बल्कि पूरे परिवार की ष्हारष् होती है। सुनने की क्षमता, सहयोगी पालन–पोषण और भावनात्मक अभिव्यक्ति बिना दंड के महत्वपूर्ण सुरक्षात्मक कारक हैं (UNICEF, 2021)।

7.2 शिक्षा, परीक्षा और प्रतियोगिता शिक्षा सामाजिक गतिशीलता का प्रमुख माध्यम है, लेकिन उच्च शुल्क, सीमित सीटें, कोचिंग संस्कृति और निरंतर मूल्यांकन ने इसे खतरनाक प्रतिस्पर्धी क्षेत्र बना दिया है। असफलता अपने आत्म–सम्मान पर सीधे प्रहार करती है क्योंकि अंक नैतिक मूल्यों और योग्यता का प्रतीक हैं। छब्ल्ठ ने 2020 में 12,526, 2021 में 13,089 और 2022 में 13,044 विद्यार्थी आत्महत्या के मामले दर्ज किए (छब्ल्ठ, 2020, 2021, 2022)। इन संख्याओं को सिर्फ परीक्षा से जोड़ना अनुचित होगा; हालांकि, वे शिक्षा संस्थानों में प्रारंभिक पहचान, सलाह, संकट–प्रतिक्रिया और जिम्मेदार संचार की जरूरत को स्पष्ट करते हैं।

7.3 बेरोजगारी और धन की कमी काम केवल पैसे नहीं देता; वह वयस्क पहचान, परिवार में सम्मान, विवाह की संभावना और सामाजिक सहभागिता से जुड़ा है। शिक्षित बेरोजगारी में समय और उम्मीदों के अनुपात में अवसर न मिलने से लोगों को लगता है कि वे योग्य होते हुए भी असफलष् हैं। युवा लोग अस्थायी अनुबंध, कम वेतन, परीक्षा–चक्र और अनिश्चित भर्ती से बचते हैं। India Employment Report 2024 ने रोजगार की गुणवत्ता, शिक्षा–कौशल असंगति और युवा बेरोजगारी को प्रमुख चुनौती बताया (ILO और IHD, २०२४) निष्पक्ष भर्ती प्रणाली, सामाजिक सुरक्षा और कौशल मानसिक स्वास्थ्य नीति से जुड़े हैं।

7.4 सोशल मीडिया और इलेक्ट्रॉनिक जीवन डिजिटल मंच मित्रता, पहचान–अभिव्यक्ति, जानकारी और सहायता के समुदाय बनाते हैं, खासकर उन युवाओं को जिनकी स्थानीय संस्कृति में कम स्वीकार्यता है। निरंतर तुलना, संपादित जीवन–छवियाँ, साइबरबुलिंग, नींद में बाधा, ध्यान–विखंडन और ष्लाइकष् आधारित मान्यता के जोखिम हैं। उपलब्ध समीक्षाओं से पता चलता है कि संबंध कठिन नहीं है; समस्याग्रस्त, बाध्यकारी उपयोग, ऑनलाइन उत्पीड़न और संवेदनशीलता केवल स्क्रीन समय से अधिक महत्वपूर्ण हैं (Khalaf et al-, 2023(United States Surgeon General, 2023) पीड़ित–केंद्रित रिपोर्टिंग तंत्र, डिजिटल साक्षरता, प्लेटफॉर्म जवाबदेही और रात का उपयोग प्रबंधन निषेध की बजाय महत्वपूर्ण हैं।

7.5 जाति, सामाजिक वर्ग और असमानता आर्थिक संसाधन उपचार, यात्रा, निजी स्थान और अध्ययन के अवसरों पर निर्भर करते हैं। लघु आय वाले युवाओं को अधिक तनाव हो सकता है और वे कम पेशेवर सहायता पा सकते हैं। जातीय भेदभाव, शैक्षणिक संस्थानों में कम प्रतिनिधित्व और सामाजिक अपमान के कारण शामिल होने की भावना कमजोर होती है। समाजशास्त्र में यह एक ष्दोहरा खतराष् हैरू सहायता तक पहुँच कम होती है, जबकि संरचनात्मक प्रतिकूलता मानसिक पीड़ा बढ़ाती है।

7.6 यौन और मानसिक स्वास्थ्य युवा महिलाओं की मानसिक स्वायत्तता को उनकी गतिशीलता, वस्त्र, संबंध, विवाह और पारिवारिक देखभाल पर नियंत्रण से सीमित किया जा सकता है। ऑनलाइन हिंसा और यौन उत्पीड़न सुरक्षा–बोध को प्रभावित करते हैं। पुरुषत्व के मानदंड, दूसरी ओर, पुरुषों को दुख, भय या असफलता व्यक्त करने से रोकते हैं और उनसे सहायता माँगने को कमजोरी बताते हैं। यौन और लैंगिक अल्पसंख्यक युवाओं को परिवार में अस्वीकृति, भेदभाव और हिंसा का जोखिम भी अधिक हो सकता है।

7.7 शहरी और ग्रामीण दृष्टिकोण ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक निकटता और समुदाय सहायता मिल सकते हैं, लेकिन गोपनीयता की कमी, विशेषज्ञों से दूरी, परिवहन खर्च और मानसिक बीमारी को नैतिक या अलौकिक कारणों से जोड़ना उपचार में विलम्ब कर सकता है। शहरी युवाओं को अधिक संस्थान मिलते हैं, लेकिन किराया, लंबी यात्रा, प्रतिस्पर्धा,

अकेलापन और प्रवासन नए तनाव पैदा करते हैं। अर्द्ध–शहरी क्षेत्रों में दोनों दबाव मिलते हैं। दूरस्थ पहुँच के लिए Tele–MANAS का 24X7 बहुस्तरीय रेफरल मॉडल बहुत महत्वपूर्ण है, लेकिन डिजिटल विभाजन, स्थानीय भाषा, निरंतर फॉलो–अप और आपातकालीन प्रत्यक्ष सेवा को भी जोड़ना चाहिए (DGHS, 2022) द्वारा

सारणी 1: युवाओं के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले प्रमुख सामाजिक कारक

सामाजिक कारक	प्रमुख तंत्र	संभावित मानसिक स्वास्थ्य प्रभाव
परिवार	अपेक्षा, संघर्ष, समर्थन अथवा नियंत्रण	सुरक्षा, तनाव, आत्म-दोष, सहायता में विलम्ब
शिक्षा	परीक्षा, रैंक, कोचिंग, दंडात्मक वातावरण	चिंता, असफलता का भय, थकान
रोजगार	बेरोजगारी, अस्थायी काम, कौशल-अवसर अंतर	अनिश्चितता, पहचान संकट, निराशा
डिजिटल जीवन	तुलना, साइबरबुलिंग, बाध्यकारी उपयोग	नींद बाधा, अकेलापन, चिंता
असमानता	वर्ग, जाति, लिंग और क्षेत्रीय वंचना	अधिक जोखिम और कम सेवा-पहुँच
कलंक	कमजोरी का लेबल, प्रतिष्ठा और गोपनीयता का भय	लक्षण छिपाना, देर से सहायता

स्रोत: सत्यापित द्वितीयक स्रोतों के आधार पर लेखक द्वारा संकलित।

स्रोतः सत्यापित द्वितीयक स्रोतों के आधार पर लेखक द्वारा संकलित।

सारणी 2: ग्रामीण और शहरी युवाओं की मानसिक स्वास्थ्य चुनौतियों की तुलनात्मक स्थिति

आयाम	ग्रामीण/अर्द्ध-शहरी संदर्भ	शहरी संदर्भ
सेवा उपलब्धता	विशेषज्ञ और गोपनीय केंद्र सीमित	अधिक विकल्प, किंतु लागत असमान
सामाजिक नेटवर्क	निकट समुदाय; समर्थन और निगरानी दोनों	प्रवासन और अनामता; अकेलापन संभव
प्रमुख दबाव	परंपरागत अपेक्षाएँ, संसाधन और यात्रा	प्रतिस्पर्धा, किराया, कार्य-यात्रा और प्रदर्शन
डिजिटल पहुँच	नेटवर्क और निजी उपकरण में असमानता	उच्च पहुँच, समस्याग्रस्त उपयोग का जोखिम
सहायता बाधा	कलंक, पहचान उजागर होना, दूरी	लागत, समय, भीड़ और सेवा विखंडन

स्रोत: सत्यापित द्वितीयक स्रोतों के आधार पर लेखक द्वारा संकलित।

8. मानसिक स्वास्थ्य से जुड़ा सामाजिक कलंक

मानसिक रोग तीन स्तरों पर काम करता है। सार्वजनिक कलंक समाज में बुरी आदतों को जन्म देता है; स्वयं–कलंकित व्यक्ति को इन्हीं बुराईयों को अपने ऊपर लागू करने की इच्छा होती है; संरचनात्मक कलंक संस्थाओं के व्यवहार, नियम और संसाधन को भेदभावपूर्ण बनाता है। युवा सहायता लेने से पहले सोचता है कि उनके परिवार, दोस्तों, या भविष्य के विवाह और नौकरी पर क्या असर पड़ेगा। इस अनुमानित कलंक के परिणामस्वरूप लक्षणों को टाला जा सकता है, वैकल्पिक अप्रमाणित उपचार लिया जा सकता है या संकट तक पेशेवर सहायता नहीं माँगी जा सकती (ळंपीं मज ंस., 2020)।

कलंक–न्यूनता को समाप्त करने के लिए जागरूकता दिवस ही पर्याप्त नहीं हैं। संदेशों में सक्रिय कौशल के रूप में सहायता माँगने को स्थापित करना चाहिए, मानसिक समस्या को दुर्लभ ष्पागलपनष् से अलग करना चाहिए। संवेदनशील भाषा, सरल नियुक्ति प्रक्रिया और परामर्श कक्ष की गोपनीयता संस्थागत संदेश हैं।

9. युवा मानसिक स्वास्थ्य और संस्थागत प्रतिक्रिया परिवार को प्रारंभिक संकेत पहचानने, निर्णय सुनने और आवश्यकता पर पेशेवर सेवा प्राप्त करने के लिए प्रशिक्षित करना चाहिए। विद्यालयों और महाविद्यालयों में नियमित प्रशासन में मानसिक स्वास्थ्य साक्षरता, एंटी–बुलिंग नीति, परामर्श, शिक्षक प्रशिक्षण और संकट प्रोटोकॉल शामिल होना चाहिए। परीक्षा–पूर्व भाषण परामर्शदाता का काम नहीं होना चाहिए। पूरे स्कूल मॉडल में शिक्षक, विद्यार्थी, अभिभावक और संस्थागत वातावरण सब लक्षित हैं;ं ।ड। मॉडल, जो भारत में विकसित किया गया है, ने इसी बहुस्तरीय दृष्टिकोण की उपयोगिता और सांस्कृतिक अनुकूलन पर बल दिया है (भ्नही–श्रवदमे मज ंस., 2025)।

10. परिणाम और समाजशास्त्रीय विश्लेषणः विषयगत विश्लेषण का पहला महत्वपूर्ण निष्कर्ष है कि युवाओं की मानसिक पीड़ा बहु–कारक और संचयी है। ऑनलाइन तुलना, पारिवारिक तनाव, आर्थिक असुरक्षा और शैक्षणिक दबाव सब एक साथ नहीं चलते; वे एक–दूसरे की सहायता करते हैं। आर्थिक रूप से निर्भर युवा परिवारों की उम्मीदों को कम कर सकता है; परीक्षा में असफलता नौकरी में देरी करती है; डब्ल्यूएचओ (2022) का सामाजिक निर्धारक ढाँचा मानसिक स्वास्थ्य को जीवन–परिस्थितियों और शक्ति–वितरण से भी जोड़ता है।

यह दूसरा निष्कर्ष है कि संबंधात्मक समर्थन सुरक्षा में महत्वपूर्ण कारक है, लेकिन समर्थन की गुणवत्ता संख्या से अधिक महत्वपूर्ण है। यद्यपि परिवार उपस्थित हो सकता है, बातचीत दंडात्मक होती है; यद्यपि आपके पास कई ऑनलाइन मित्र हो सकते हैं, लेकिन आपके पास एक विश्वसनीय व्यक्ति नहीं होगा। तीसरा परिणाम सेवा–पहुँच में सामाजिक असमानता है। शहरों में रहने वाले युवा निजी विशेषज्ञ चुन सकते हैं, जबकि ग्रामीण या निम्न आय वाले युवा यात्रा, खर्च, भाषा और अपनी पहचान खो देने के भय से सेवा छोड़ सकते हैं। टेली–मानसिक स्वास्थ्य दूरी को कम कर सकता है, लेकिन नेटवर्क, डिजिटल साक्षरता, स्थानीय रेफरल और फोन की निजी उपलब्धता के बिना समानता स्वतः नहीं होती। नीति का मूल्यांकन सिर्फ फोन या पंजीकरण

संख्या से नहीं होना चाहिए; यह संतुष्टि, संकट समाधान, कमजोर समूहों की वास्तविक पहुँच और उपचार की निरंतरता से होना चाहिए।

चौथा परिणाम यह है कि सामाजिक कलंक उपचार–अंतर को व्यक्तिगत रूप से नहीं बल्कि संस्थागत रूप से बनाए रखता है। गोपनीयता की कमी, मजाक, नैतिक शिक्षा और अस्पष्ट रेफरल व्यक्ति को सेवा से दूर करते हैं। इसके विपरीत, स्थानीय भाषा, युवा–अनुकूल समय, स्पष्ट गोपनीयता और सहमति–आधारित परिवार सहभागिता सहायता को सामान्य स्वास्थ्य सेवाओं में शामिल किया जा सकता है।

सारणी 3रू सामाजिक स्तर पर प्रस्तावित हस्तक्षेप, उत्तरदायी संस्था और अपेक्षित परिणाम

हस्तक्षेप	उत्तरदायी संस्था	अपेक्षित परिणाम
पूरे-विद्यालय मानसिक स्वास्थ्य नीति	विद्यालय/महाविद्यालय, शिक्षा विभाग	सुरक्षित वातावरण, शीघ्र पहचान, कलंक में कमी
रोजगार और कौशल समर्थन	श्रम एवं कौशल विभाग, नियोक्ता	अनिश्चितता और कौशल-अवसर अंतर में कमी
Tele-MANAS तथा स्थानीय रेफरल	स्वास्थ्य विभाग, जिला मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम	दूरस्थ पहुँच और देखभाल निरंतरता
परिवार मानसिक स्वास्थ्य साक्षरता	महाविद्यालय, समुदाय, स्वास्थ्यकर्मी	संवाद, समर्थन और समय पर सहायता
डिजिटल सुरक्षा और प्लेटफॉर्म जवाबदेही	सरकार, स्कूल, प्रौद्योगिकी कंपनियाँ	साइबरबुलिंग और बाध्यकारी उपयोग में कमी
कलंक-विरोध और अधिकार संरक्षण	मीडिया, संस्थान, नागरिक समाज	गोपनीय और भेदभाव-मुक्त सहायता

स्रोत: सत्यापित द्वितीयक स्रोतों के आधार पर लेखक द्वारा संकलित।

चित्र 1: भारत में दर्ज छात्र आत्महत्याएँ, 2020–2022

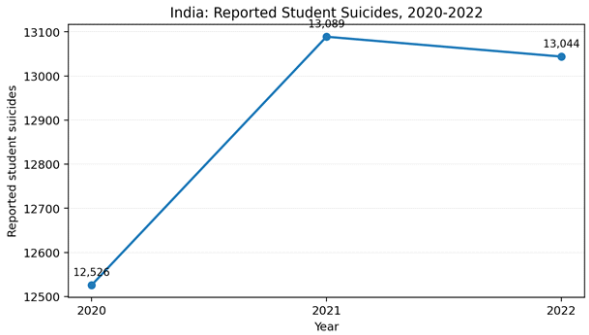

स्रोतः छंजपवदंस ब्तपउम त्मबवतके ठनतमंन, ।क्ै 2020, 2021 एवं 2022। आँकड़े प्रवृत्ति संकेतक हैं; वे व्यक्तिगत कारण सिद्ध नहीं करते।

11. चर्चा

प्राप्त निष्कर्षों ने मानसिक स्वास्थ्य को व्यक्तिगत असफलता मानने की धारणा को खारिज कर दिया है। जैविक और मनोवैज्ञानिक संवेदनशीलताएँ महत्वपूर्ण हैं, लेकिन सामाजिक परिस्थितियों में उनका प्रभाव दिखाई देता है। मर्टन का स्ट्रेन एक उदाहरण देता है कि युवा लोगों को सफलता का लक्ष्य तो मिलता है, लेकिन उचित साधन नहीं मिलता। दुर्खीम का ढाँचा कहता है कि अकेलापन सिर्फ लोगों की अनुपस्थिति नहीं है, बल्कि स्वीकार्यता और महत्वपूर्ण संबंधों की कमी है। गॉफमैन ने स्पष्ट किया कि सहायता प्राप्त करने का खर्च चिकित्सकीय खर्च से अधिक है, जो प्रतिष्ठा, पहचान और भविष्य की चिंताओं को भी शामिल करता है।

12. पहला सुझावः मानसिक स्वास्थ्य नीति को पूरे संस्थान में लागू करना है। इसमें प्रशिक्षित परामर्शदाता, शिक्षक मानसिक स्वास्थ्य साक्षरता, एंटी–बुलिंग तंत्र, परीक्षा के दौरान जोखिम की पहचान, स्पष्ट संकट–रेफरल और अभिभावक संवाद शामिल हैं। गोपनीय कक्ष और परामर्शदाता की स्वतंत्रता सुनिश्चित करें। संस्थानों का मूल्यांकन छात्र कल्याण, सुरक्षा और संबंधितता से भी होता है, न सिर्फ परिणामों और स्थान से।

दूसरा, मानसिक स्वास्थ्य को रोजगार नीति से जोड़ा जाए। निष्पक्ष और समयबद्ध भर्ती, करियर मार्गदर्शन, प्रशिक्षण, कौशल–अनुकूलन और बेरोजगार युवा लोगों के लिए सामाजिक सुरक्षा निराशा को कम कर सकती है। उचित कार्यभार, गोपनीय सहायता, उत्पीड़न–निवारण और पर्यवेक्षक प्रशिक्षण आवश्यक हैं। मानसिक स्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रमों में मंच–आधारित और अस्थायी कर्मचारियों को भी शामिल किया जाए।

तीसरा, ग्रामीण और अर्द्ध–शहरी क्षेत्रों में जिला मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम को पंचायत, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र और महाविद्यालय से सक्रिय रूप से जोड़ा जाए। ज्मसम–ड।छ), स्थानीय भाषा में परामर्श, ऑफलाइन रेफरल, आपातकालीन सहायता और फॉलो–अप सुनिश्चित करें। आशा कार्यकर्ताओं, सामुदायिक स्वास्थ्य अधिकारियों और चयनित शिक्षकों को पहचाना जाए और रेफरल का प्रशिक्षण दिया जाए, लेकिन उनसे विशेषज्ञ चिकित्सा की उम्मीद नहीं की जाए।

चौथा, डिजिटल मानसिक स्वास्थ्य साक्षरता में साइबरबुलिंग, गोपनीयता, शरीर–छवि, बाध्यकारी उपयोग और विश्वसनीय ऑनलाइन सामग्री की पहचान शामिल होनी चाहिए। परिवारों को सिर्फ समय–सीमा देने के बजाय सहयोगी मीडिया योजना बनाने के लिए प्रशिक्षण दें। प्लेटफॉर्म रिपोर्टिंग को आसान बनाएं, खतरनाक सामग्री पर तुरंत प्रतिक्रिया दें और शोधकर्ताओं को गोपनीय, स्वतंत्र डेटा मिलाएं।

पाँचवाँ, कलंक–न्यूनता अभियान के लिए प्रत्येक युवा, शिक्षक, अभिभावक और नियोक्ता अलग–अलग रूप में तैयार होना चाहिए। स्थानीय भाषाओं में सुधार की कहानियाँ, संपर्क–आधारित चर्चा और सहायता सामग्री साझा करें।

गोपनीयता उल्लंघन और भेदभाव के खिलाफ शिकायत करने के लिए एक प्रणाली होनी चाहिए। आत्महत्या–निवारण में जिम्मेदार मीडिया दिशानिर्देशों, संकट हेल्पलाइन, साधनों तक सुरक्षित पहुँच और प्रयास के बाद निरंतर देखभाल को एकीकृत करें।

13. निष्कर्षः चिंता, अवसाद, अकेलापन और निराशा को केवल व्यक्ति के भीतर खोजने से समस्या का पूरा चित्र नहीं मिलता है. युवा मानसिक स्वास्थ्य का समाजशास्त्र यह दिखाता है। युवाओं के अवसर, पहचान और सहायता की दिशा परिवार, विद्यालय, श्रम बाजार, जाति–वर्ग संबंध, लैंगिक मानदंड, डिजिटल प्लेटफॉर्म्स और स्वास्थ्य संस्थाओं से निर्धारित होती है। जब आकांक्षाएँ ऊँची हों, संबंध निर्णयात्मक हों, वैध अवसर कम हों और सहायता कलंकित हो तो मानसिक तनाव बढ़ता है। सम्मान, समानता, आर्थिक सुरक्षा, निष्पक्ष अवसर और गोपनीय सेवाएं सुरक्षा बनाते हैं।

भारत बहुस्तरीय रणनीति चाहता है। महाविद्यालयों और स्कूलों को सामाजिक रूप से सुरक्षित बनाना; स्वायत्तता और परिवार संवाद का सम्मान करें; रोजगार नीति ने कौशल–अवसर की दूरी कम की और अनिश्चितता कम की; सामाजिक घृणा को कम करना; तथा प्राथमिक स्तर से विशेषज्ञ सेवा तक, स्वास्थ्य व्यवस्था निरंतर और युवा–अनुकूल देखभाल प्रदान करे। Tele–MANAS और राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम महत्वपूर्ण आधार देते हैं, लेकिन स्थानीय मानव संसाधन, भाषा, ऑफलाइन रेफरल और जवाबदेह निगरानी उनकी सफलता की कुंजी हैं।

Directorate General of Health Services. (2022). National Mental Health Programme and National Tele Mental Health Programme (Tele-MANAS). Ministry of Health and Family Welfare, Government of India.

Government of India. (2020). National Education Policy 2020. Ministry of Education.

International Labour Organization & Institute for Human Development. (2024). India Employment Report 2024: Youth employment, education and skills. ILO.

Khalaf, A. M., Alubied, A. A., Khalaf, A. M., & Rifaey, A. A. (2023). The impact of social media on the mental health of adolescents and young adults: A systematic review. Cureus, 15(8), e42990. https://doi.org/10.7759/cureus.42990

National Crime Records Bureau. (2022). Accidental deaths and suicides in India 2022. Ministry of Home Affairs, Government of India.

Office of the U.S. Surgeon General. (2023). Social media and youth mental health: The U.S. Surgeon General's advisory. U.S. Department of Health and Human Services.

PATH. (2022). Youth mental health in India: Landscape analysis. PATH.

Sanghvi, P., Chandrashekhar, P., Mehrotra, S., & Sharma, M. K. (2025). Factors influencing help-seeking behavior for mental health among distressed young adults: A path analysis model. Indian Journal of Psychological Medicine. https:// doi.org/ 10.1177/02537176241312975

UNICEF India. (2021). UNICEF report spotlights the mental health impact of COVID-19 on children and young people. UNICEF.

World Health Organization. (2024). Adolescent and young adult health. WHO.

Agyapong-Opoku, N., et al. (2025). Effects of social media use on youth and adolescent mental health: A scoping review of reviews. Behavioral Sciences, 15(5), 574. https://doi.org/10.3390/bs15050574

Fassi, L., et al. (2025). Social media use in adolescents with and without mental health conditions. Nature Human Behaviour. https://doi.org/10.1038/s41562-025-02134-4

Ministry of Health and Family Welfare. (2022). National suicide prevention strategy. Government of India.

डॉ0 आशुतोष

सहायक आचार्य

ईश्वरी प्रसाद रामकली देवी महाविद्यालय

ग्राम–विरासिन, निगोही–शाहजहांपुर

5

मीराबाई के पदों का सांगीतिक विश्लेषण

डॉ0 रुचि गर्ग

सारांश

भारतीय संस्कृति में साहित्य एवं संगीत का संबंध अत्यंत प्राचीन एवं अविच्छिन्न रहा है। वैदिक काल से लेकर आधुनिक युग तक संगीत को केवल मनोरंजन का साधन न मानकर आध्यात्मिक अनुभूति एवं सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का प्रभावशाली माध्यम भी माना गया है। भक्तिकाल में यह संबंध चरमोत्कर्ष पर पहुंच गया जहॉ कविता और संगीत एक दूसरे के पूरक बन गए। कबीर, सुर, तुलसी, रैदास तथा मीरा आदि भक्त कवियों ने ईश्वर भक्ति को जन–जन तक पहुॅचाने के लिए गीत, पद एवं कीर्तन जैसी संगीत प्रधान विधाओं का व्यापक उपयोग किया । प्रत्येक मनुश्य में स्वानुभूति को स्वर देने की अदम्य इच्छा होती है। कवियों की रागात्मक प्रवत्ति लयात्मक होकर निकलती है, तभी वह गीत का रूप धारण करती हैं।

भक्तिकाल की कृष्णभक्ति शाखा में मीराबाई का नाम अत्यंत सम्मान व श्रद्धा के साथ लिया जाता है। उन्होंने अपनी संपूर्ण साधना श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम एवं पूर्ण आत्मसमर्पण को समर्पित कर दी। उनके पदों में सांसांरिक बंधनों से मुक्ति, आध्यात्मिक प्रेम, विरह–वेदना आत्म–निवेदन तथा आराध्य के प्रति अटूट आस्था का वर्णन अत्यंत मार्मिक रूप से मिलता है। उनकी कविता केवल भावों की शाब्दिक अभिव्यक्ति नहीं है बल्कि वह संगीत के माध्यम से अनुभूत होने वाली आध्यात्मिक साधना का स्वरूप ग्रहण कर लेती है। उनका स्थान केवल एक महान कृष्णभक्त कवयित्री के रूप में ही नहीं, अपितु भारतीय सांगीतिक चेतना की प्रतिनिधि, साधिका के रूप में भी स्थापित है। उनके पदों ने लगभग सात–आठ शताब्दियों से भारतीय समाज के धार्मिक, सांस्कृतिक एवं संगीतात्मक जीवन को निरंतर प्रभावित किया है। आज भी उनके पद मंदिरों, आश्रमों, संगीत सभाओं, लोक–उत्सवों, कथा–वाचन तथा शास्त्रीय संगीत के मंचों पर श्रद्धापूर्वक प्रस्तुत किए जाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि मीराबाई का साहित्य केवल हिंदी काव्य नहीं बल्कि भारतीय संगीत की जीवंत परंपरा का अभिन्न अंग है। मीरा का काव्य उनके जीवन से सृजित हुआ है। उन्होंने अपने गीतो में अपने आन्तरिक भावों और वेदना को उकेरा है – ''कहॉ से आते हैं इतने गीत''? जीवन के खेत में उगते हैं ये सब गीत, कल्पना भी अपना काम करती हैं, रसवृत्ति और भावना भी, नृत्य का हिलोरा भी–पर ये सब हैं खाद जीवन के सुख, जीवन के दुख, ये हैं लोकगीत के बीज। **1**

मीरा के साहित्य पर अब तक हुए अधिकांश शोध अध्ययनों में उनकी कृष्ण–भक्ति, विरह–वेदना, नारी चेतना, सामाजिक विद्रोह आदि पर विशेष बल दिया गया है किंतु उनके काव्य में निहित सांगीतिक तत्वों का व्यवस्थित विश्लेषण अपेक्षाकृत कम हुआ है। प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य मीरा के काव्य में निहित सांगीतिक तत्वों का साहित्यिक एवं संगीत शास्त्रीय दृष्टिकोण से समग्र अध्ययन प्रस्तुत करना है। इसमें राग, ताल, लय, स्वर, नाद, ध्वनि, लोकसंगीत, भजन परंपरा एवं कीर्तन शैली के आलोक में उनके पदों का समीक्षात्मक विश्लेषण किया गया है। उनके पदों में शब्द स्वयं स्वर का रूप धारण कर लेते हैं तथा संपूर्ण काव्य संगीतात्मक चेतना से अनुप्राणित दिखाई देता है।

मीराबाई का जन्म पन्द्रहवीं शताब्दी के अंत अथवा सोलहवीं शताब्दी के प्रारंभ में राजस्थान के मेड़ता (कुड़की) में राठौड़ राजवंश में हुआ माना जाता है। बाल्यकाल से ही उनका मन श्रीकृष्ण की भक्ति में रमा हुआ था। एक प्रसिद्ध लोक कथा के अनुसार बाल्यावस्था में ही उन्होंने श्रीकृष्ण की मूर्ति को अपना पति मान लिया था। यही भाव आगे चलकर उनकी संपूर्ण काव्य साधना का आधार बना। युवावस्था में उनका विवाह मेवाड़ के राजकुमार भोजराज से हुआ किंतु उनका वैवाहिक जीवन उनके आध्यात्मिक, व्यक्तित्व को सांसारिक बंधनों में बॉध नहीं सका। पति की असामयिक मृत्यु के बाद उन्होंने पूर्णतः कृष्ण भक्ति का मार्ग अपना लिया। राज परिवार की आपत्ति एवं सामाजिक विरोध के बावजूद उन्होंने दृढ़तापूर्वक अपने आराध्य के प्रति अपनी निष्ठा बनाए रखी। उन्होंने परिवार की दमनकारी नीतियों से जमकर संघर्ष किया। एक पद में मीराबाई कहती हैं–

''हेरी मंह सूं हरि बिन् रह्यो न जाय
सासु बड़े ननद खिजावे, राणा रहया रिसाय,
पहरो भी राख्यो चौकी बिठारयौ, ताला दियो जड़ाय
पूर्व जन्म की प्रति पुराणी, सो क्यूं छोड़ी जाय।'' 2

भक्तिकालीन कवियों में मीरा का व्यक्तित्व अत्यंत विशिष्ट है। कबीर आदि भक्त कवियों ने जहॉ नारी को माया, महा ठगिनी, नरक की खान तथा डाकिनी आदि बताया, वहॉ मीराबाई ने नारी अस्तित्व के लिए पुरुष प्रधान समाज में संघर्ष करने की हिम्मत जुटाई –

राणा जी मुझे यह बदनामी लगे मीठी
कोई निन्दो कोई बिंदो, मैं चलूंगी चाल अनूठी। 3

मीरा की काव्य साधना में भक्ति, संगीत, आध्यात्मिकता,

नारी–मुक्ति तथा आत्म–समर्पण का अद्‌भुत समन्वय दृष्टिगोचर होता है। मीरा स्वाभिमानी नारी का स्वप्न पूर्ण करने के लिए शोषण का विरोध करती हैं। मीरा ने सामाजिक रूढ़ियों, राजसी मर्यादाओं एवं पारिवारिक विरोध की अपेक्षा अपने आध्यात्मिक विश्वास को अधिक महत्व दिया। यही आत्मबल उनके काव्य को केवल धार्मिक साहित्य नहीं रहने देता बल्कि उसे मानवीय स्वतंत्रता एवं आत्मानुभूति का दस्तावेज भी बना देता है। उनके पद यह प्रमाणित करते हैं कि जब संगीत भक्ति से जुड़ता है तब वह केवल कला नहीं रहता। उनके पदों में विरह, मिलन, समर्पण, अनुराग, एवं आध्यात्मिक प्रेम का अत्यंत सजीव चित्रण मिलता है। इन भावों की अभिव्यक्ति संगीत के माध्यम से और भी प्रभावशाली हो जाती है। भाषा की दृष्टि से मीराबाई ने राजस्थानी एवं ब्रज भाषा का अत्यंत मधुर एवं सहज रूप अपनाया। यही कारण है कि उनके पद किसी विशेष वर्ग तक सीमित न रहकर भारतीय समाज में अत्यंत लोकप्रिय हुए। उनकी भाषा में कृत्रिम अलंकारों की अपेक्षा भावों की संगीतात्मक अभिव्यक्ति अधिक मिलती है। प्रस्तुत पद दृष्टव्य है –

''माई मैं तो लियो रमैयो मोल
कोई कहे कारो कोई कहे गोरौ, लियो है मैं आंखें खोल
कोई कहे हल्का कोई कहे भारी, लियो है तराजू तोल।'' 4

मीराबाई के पदों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह साधारण जन तथा संगीतज्ञों के लिए समान रूप से गेय हैं। वे केवल पदों की रचयिता नहीं थीं बल्कि स्वयं उन्हें गाकर अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियॉ व्यक्त करती थीं। उनके चित्र तथा जीवन के अनेक प्रसंग यह संकेत करते हैं कि वे एकतारा, मंजीरा तथा अन्य सरल वाद्यों के साथ नृत्य करते हुए भजन गायन करती थीं। इस प्रकार उनके पद गायन, वादन तथा नृत्य–संगीत के तीनों रूपों से जुड़े हुए थे।

मीरा का संपूर्ण काव्य साधना, उपासना, एवं आत्मानुभूति के समन्वय का प्रतिरूप है। भारतीय परंपरा में संगीत को नाद ब्रह्म की अभिव्यक्ति माना गया है, जहॉ स्वर केवल ध्वनि नहीं बल्कि आत्मा एवं परमात्मा के मध्य संवाद का माध्यम बन जाते हैं। **''नादाधीनं जगत्सर्वम्** अर्थात् संपूर्ण सृष्टि नाद पर आधारित है। भारतीय दर्शन में नाद दो प्रकार का माना गया है–

1 **आहत नाद** – जो किसी आघात अथवा कंपन से उत्पन्न होता है।

2 **अनाहत नाद** – जो आध्यात्मिक चेतना में अनुभूत होता है।

डॉ वासुदेवशरण अग्रवाल ने यथार्थ ही लिखा है ''जीवनरूपी संगीत ही नाथ ब्रह्म या वाग्देवी की वीणा है, जिसके सप्तक में विश्व के आनंद की सप्तधारायें मूर्तरूप ग्रहण करती हैं''। संगीत की साधना वही है जिसके फलस्वरुप मानव का मन उस उच्चतर सूक्ष्म नाद का अनुभव करने योग्य बन सके। मीराबाई के भजनों में इन दोनों प्रकार के नाद का अद्‌भुत समन्वय मिलता है। उनके शब्द बाह्य रूप से गाये जाते हैं किंतु उनका वास्तविक उद्देश्य साधक के अंतर्मन में अनाहत नाद का अनुभव कराना है। उनके पदों में शब्द, स्वर एवं भाव एक दूसरे से इस प्रकार जुड़े हुए हैं कि उन्हें अलग–अलग करके नहीं देखा जा सकता। उनके सभी पदों में स्वर, भावानुकूल बन जाते हैं। उदाहरण के लिए –''**मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई**'' – यह पद किसी जटिल कार्य रचना का उदाहरण नहीं है अपितु इसकी स्वरात्मक संभावनाएँ इतनी व्यापक हैं कि इसे अनेक रागों एवं गायन शैलियों में प्रस्तुत किया जाता है। यह इसकी संगीतात्मक संरचना का प्रमाण है। उनके उक्त पद के साथ–साथ ''**पग घुंघः बांध मीरा नाची रे**'' जैसे अनेक पद आज भी भैरवी, खमाज, काफी, यमन, पीलू, देश आदि रगों में प्रस्तुत किये जाते हैं। मीरा का संपूर्ण काव्य इसी भावप्रधान रागात्मकता पर आधारित है।

भारतीय संगीत में लय को जीवन का आधार माना जाता है। मीरा का संपूर्ण काव्य पढ़ते समय भी संगीत का अनुभव होता है। उनके पदों में कृत्रिम लय नहीं है अपितु भावों से उत्पन्न स्वाभाविक लय है। उनके अनेक पदों में कीर्तन शैली की तालात्मक पुनरावृत्ति दिखाई देती है जो सामूहिक गायन को अत्यंत सहज बना देती है। भारतीय संगीत में ताल समय का नियमन करती है। मीराबाई के भजनों की रचना ऐसी है कि वे अनेक तालों में सहजता से प्रस्तुत किये जा सकते हैं। विशेषतः कहरवा, दादरा, रूपक, एकताल, तीनताल में उनके पदों की प्रस्तुति आज भी प्रचलित है।

मीराबाई के शब्दों का चयन गीत की परंपरा के अनुकूल अत्यंत मधुर है। उनकी भाषा में कठोर ध्वनियों की अपेक्षा कोमल ध्वनियों का उपयोग अधिक मिलता है। उदाहरणतः ''**बसों मेरे नैनन में नंदलाल।**'' इस पद में 'न', 'म', 'त' तथा 'र' जैसे कोमल वर्णों की पुनरावृत्ति संपूर्ण पद को मधुर स्वरात्मकता प्रदान करती है। उनके पदों का ध्वनि सौंदर्य उनके गीतों की आत्मा है। उन्होंने अनुप्रास, पुनरुक्ति तथा वर्ण सामंजस्य का अत्यंत प्रभावशाली प्रयोग किया है। मीरा का एक पद देखिए –

पायो जी, मैने राम रतन धन पायो
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरू कृपा कर अपनायो। 5

मीराबाई ने शास्त्रीय छन्दों का कठोर अनु□ासन नहीं अपनाया तथापि उनके पदों में स्वाभाविक छन्द सौंदर्य मिलता है। उनकी रचनाओं में पद–शैली, लोकछन्द तथा गीतात्मक संरचना का अत्यंत प्रभावशाली उपयोग हुआ है। इसी कारण उनके पदों का सामूहिक गायन अत्यंत सरल हो जाता है। उनके भजनों की सबसे बड़ी विशेषता उनकी गेयता है। ''मीरा के प्रभु गिरधर नागर'' जैसे अनेक भजन शताब्दियों से मौखिक परंपरा द्वारा सुरक्षित रहे हैं। किसी भी कवि तथा संगीतकार की यह बहुत बड़ी उपलब्धि मानी जाती है। मीराबाई के लिए संगीत का उद्देश्य केवल सौंदर्य उत्पन्न करना नहीं है। अपितु उनका संगीत प्रेम, विरह, समर्पण, साधना एवं मोक्ष की आकांक्षा है। उनका संगीत भावों का अनुसरण करता है। उनके प्रसिद्ध पद ''मैं तो सॉवरे के रंग रांची'' आध्यात्मिक तादात्मय का सर्वोच्च उदाहरण है। यहॉ साधिका और साध्य के मध्य की दूरी समाप्त हो जाती है। मीराबाई राजस्थान की भूमि से संबंध रखती थी। इसलिए स्वाभाविक रूप से राजस्थानी लोक धुने, लोक–भाषा, लोक लय तथा सामूहिक गायन का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। मीरा का काव्य शताब्दियों से लोकमानस द्वारा गाया जाता रहा है। वे सच्चे अर्थों में लोकगायिका हैं। डॉ. कृश्णचन्द्र शर्मा के शब्दों में ''लोकगायक किसी वर्ग विशेश का प्रतिनिधि नहीं होता। उसकी वाणी में समूचे राश्ट् की भारती बोलती हैं। वह दूसरों से प्राणों में अपना घर बनाता हैं। उसकी जिह्वा पर बैठकर अपना प्रचार करता है। फिर भला इतने चलते फिरतें पुस्तकालयों में उसकी कृतियॉ सुरक्षित रहते, उनके खोने–विस्मृत होने का उसे क्या भय है ? **6**

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि मीराबाई के काव्य में राग, लय, स्वर, ताल, गेयता, ध्वनि सौंदर्य तथा भावाभिव्यक्ति का अत्यंत संतुलित एवं स्वाभाविक समन्वय मिलता है। उनका काव्य न केवल साहित्यिक दृष्टि से उत्कृष्ट है अपितु संगीत शास्त्रीय दृष्टि से भी अत्यंत समृद्ध है। उन्होंने ईश्वर भक्ति को केवल मंदिरों अथवा विद्वानों तक सीमित न रखकर सामान्य जन–जीवन से जोड़ दिया। भजन कीर्तन और लोक–धुनों के माध्यम से भक्ति का संदेश दिया।उनकी रचनायें केवल साहित्यिक कृतियॉ नहीं है अपितु जीवंत संगीत परंपरा की आधारशिला हैं। उनकी रचनाएं पीढ़ी दर पीढ़ी बिना लिखित ग्रन्थो के भी लोक–स्मृति में सुरक्षित रही। उनके जीवन और काव्य में संगीत के साथ–साथ नृत्य का भी महत्वपूर्ण स्थान था। उनके प्रसिद्ध पद ''**पग घुँघरू बांध मीरा नाची रे**'' केवल नृत्य का वर्णन नहीं करता, अपितु यह आध्यात्मिक उनमुक्त्ता, ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण तथा सामाजिक बंधनों से मुक्ति का प्रतीक है। यहॉ नृत्य संगीत तथा भक्ति तीनों एक हो जाते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मीराबाई ने भारतीय भक्ति संगीत को एक नई दिशा प्रदान की।

सन्दर्भ –

1. धरती गाती है – देवेन्द्र सत्यार्थी पृश्ठ 178 ।2. मीराबाई की शब्दावली, बेलवीड़ियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद पृष्ठ 56।
3. राकेश कुमार, नारीवाद विमर्श, आधार प्रकाशन, पंचकूला, पृष्ठ 51।
4. मीराबाई की शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, संस्करण – 2004
5. वही
6. लोक जीवन के स्वर, डॉ. कृश्ण चन्द्र शर्मा, संस्करण 1977।

पत्रिका भेजने का आवासीय पता –

डॉ. रूचि गर्ग,
प्लॉट नं. 16, शक्ति खण्ड 2,
इन्दिरापुरम, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश, 201014
मोबाईल – 9871182345, 8909958828
ई मेल – ruchigarg64@gmail.com

6

सूरदास के काव्य में ब्रज प्रकृति के विभिन्न परिदृश्य

डॉ. पुष्पा रानी (डी.लिट.)

सारांश

महाकवि सूरदास हिन्दी साहित्य के उन महान कवियों में से हैं, जिन्होंने केवल भारतीय जनमानस को ही नहीं मानव मात्र के हृदय को भी प्रभावित किया है। सूर–साहित्य का विश्व साहित्य में बहुत ऊँचा स्थान है। हिन्दी में सूर–साहित्य की समीक्षा सर्वप्रथम वार्तासाहित्य में की गई। दिव्यदृष्टि सम्पन्न सूर का काव्य उनके समय में ही इतना लोकप्रिय हो गया कि ये अष्टछाप के सिरमौर बन गए। आगे चलकर भकावर नाभादास ने भक्तमालश में सूर के काव्य की रसात्मकता एवं कलात्मकता की मार्मिक व्यंजना एक पद में प्रस्तुत की गई है। इस प्रकार हम देखते है कि सूर–काव्य के मूल्यांकन का प्रयाल भक्तिकाल से ही चला आ रहा है।

सूर ताहित्य में ब्रज प्रकृति का महत्वपूर्ण स्थान है। ब्रज की प्रकृति सूर के इष्टदेव का लीला निकेतन है। अतः कृष्ण की लीलाओं के साथ ही उनकी रगस्थल का सूरसाहित्य में अनेक स्थलों पर वर्णन हुआ है। सूरदास का स्पष्ट कहना है कि वृन्दावन की रेतु के समक्ष नन्दन–कानन का कल्पवृक्ष और कामधेनु भी कुछ नहीं है, क्योंकि उन्होंने यहाँ मनमोहक लीलाएं की हैं और अब भी ब्रजभूमि में मन लगता है–

"धनि यह वृन्दावन की रेनु
नन्दकिशोर चरावत गैयाँ, मुखहि बजावत बेनु।
मनमोहन को ध्यान धरै जिय,अति सुख पावत चौनु।
चलत कहां मन और पुरीतन, जहां कुछ लैन न दैनु।
इहाँ रहहु जहां जूठनि पावहु, ब्रजवासिन के एनु।
सूरदास हयों की सरवरि नहि, कल्प वृच्छ सुरधनु ।।ष

ब्रज की प्रकृति के खुले प्रागण में कृष्ण लीलाएँ करते हैं। वे ब्रज माधुरी पर मुग्ध है। यह ब्रजलोक आध्यात्मिक दृष्टि से नित्य व्यापी गोलांक का लौकिक रूप है। कृष्ण को इस गोलोक से बहुत प्रेम है अतः उनके भका कवियों द्वारा बज प्रकृति की रम्यता का अनुभव और अभिव्यंजन सर्वचा स्वाभाविक है। सूर ने अपनी दिव्य–दृष्टि से इस माधुर्यमयी ब्रज–संस्कृति का साक्षात्कार कर अपने पदों में उसे अभिव्यक्ति दी है। सूरकाव्य में हमें प्रकृति के विविध रूपों का बित्रण मिलता है–

–प्रकृति का विध्यात्मक स्वाभाविक वित्रण
–प्रकृति का अलंकृत रूप
–प्रकृति का कोमल एवं भयंकर रूप
–प्रकृति का मानवीकरण रूप में चित्रण
–प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण
–प्रकृति का अप्रस्तुत रूप में चित्रण
– ऋतु वर्णन

प्रकृति का विषयात्मक स्वाभाविक चित्रण महाकवि सूरदास ने अपने काव्य में प्रकृति को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। श्रीकृष्ण की लीलाएँ प्रकृति के प्रांगण में होती है। कृष्ण की लीला भूमि ब्रज प्रकृति की अनन्त विभूतियों से मरिक्षत है। सूरकाव्य में प्रकृति का सहज विशद एप मार्मिक चित्रण किया गया है। श्रीकृष्ण की लीलाओं का बीन्द्र भज का प्राकृतिक रम्य स्थल है, जिसका चित्रण सूर साहित्य में स्पष्ट परिलक्षित होता है। सूरदास ने बज की प्रकृति को अप्रस्तुत विधान में प्रस्तुत नहीं किया है. वह उनके केन्द्र में स्थित है। सूजूर को प्रजभूमि एवं अपने आराध्य की सीलाभूमि से विशेष प्रेम है। ब्रज की रेती धन्ना है जहाँ नन्दकिशोर गाय पराते है। वहीं का बंसीबट वन, राधा आदि गोपियों का विहार कहाँ का रास तथा लता तरू में झूलने का आनन्दकुजकुज वनधाम कहाँ मिलेंगे

"कहाँ सुखद बज को सौ संसार।
कहाँ सुखद वशीवट, यमुना, यह मनसदा विधार।
कहाँ वनधाम, कहाँ पतंग कहाँ संग बज बाग।

कहाँ रस रात बीच अन्तर सुख कहाँ नारि तनु ताम।
कहाँ लता तरु–तरु प्रति झूलनि कुंज–कुज बन माग
कहाँ विरह मुख बिनु गोपिनसंग सूर स्याम मन काम।"

अलंकृत रूप में प्रकृति सूर ने प्रकति को संजीवता प्रदान करने लिए उसको मानवीकृत रूप में प्रस्तुत किया है। बसन्त ऋतु में प्रकृति युक्ति रूप में दिखाई देती है

"राधे जू आज वरणों बसन्त।

मानहुँ मदन विनोद बिहरत नागरी नव कन्त।
केतकी कुच कलम कंमन गेर कंचुकि करी।
गालती नंद चलित लोचन निरखि मृदु मुख हंसी।

सूर ने मानवीय क्रियाकलाप के रूप में प्रकृति का वर्णन किया है। यहाँ प्रकृति के कृत्यों के अनुकरण में

मानवीय कृत्यों का वर्णन होता है।

प्रकृति का कोमल एवं भयंकर रूप में वित्रण सूरदास ने प्रकृति के कोमल स्वरुप के मार्मिक चित्र बीसको है. जो जाज भी मानव–मन को प्रभावित करते है। यशोदा द्वारा प्रभात बेला में कृष्ण को जगाने में आज भी आकाशवाणी की प्रात संगीत का अंग बना हुआ है। प्रभात कातीन दृश्य का वर्णन आयना प्रभावोत्पादक एवं कोगल भावनाओं से युक्त है

जागरि बजराज कुंवर कमल कुसुम फूले।
कुमुद वृन्द संकुबिल भए, भंग लता भूले।
तमबुर खग रोर सुनहु बोलत बनराई।
रॉमति गो खरिकनि में बछरा हित धाई।
विधु गलीन, रवि प्रकार, गाक्त नर–नारी।
सूर स्याम प्रात उठौं, अंबुज कर धारी।"

राधा के द्वारा ही गूरदास ने प्रभातकाल का वर्णन किया है। तमधुर बोल रहे हैं, पवन शीतल, मन्दगति से प्रभावित हो रहा है, अंधकार की कालिमा दूर हो रही है, प्राची दिशा ने लालिसा छा रही है, सूर्य की किरणों से आकाश में धीरे–धीरे प्रकाश फैल रहा है, उयुगन और चन्द्रगों तो एकदम फीके पड़ गए हैं। कमल मुकुलित हो रहे हैं, ग्वालों ने बछड़ों के बन्धन खोल दिए हैं। इस प्रकार प्रातःकाल का सूरदास ने स्वाभाविक एवं कोमल भावों से वर्णन किया है, प्रकृति के भयंकर रूप का चित्रण सूरदास ने यत्रतत्र किया है। श्रीकृष्ण ने दावानल पान लीला में श्दावानल का वर्णन किया है–

"घेरि चहुँ ओर, करि सोर, अदोर पन, घरनि आकास बँहु पास छायाँ।
बरत बन बॉस, थरहरत कुसकॉस, जरि उडत है, भाँस अति प्रबल धायौ।
झपटि झपटत लपट, फूल फलचाट चटकि फटत, लटलटकि दुमन्दुम नवायों।
अति अगिनि झार अंगार धुंधार करि, उघटि अगार झंझार छायौ।
बरत बनपात, महरात, झहरात, अरराव तरु महा घरनी गिरायौ।"

यहाँ कवि ने ध्वन्यार्थक के प्रयोग से दावानल की भवकरता का चित्रण किया है। इससे स्पष्ट है कि सूरदास प्रकृति के भयंकर रूप का चित्रण करने में भी सिद्धहस्त है। इसी प्रकार का पर्णन श्रीकृष्ण के गिरिधारण लीला में भी मिलता है, जिसमें प्रलयकारी घटाओं के उमहने घुमड़ने तड़ित आघात आदि में प्रकृति के भयंकर रूप का वर्णन है जिसमें ब्रज के नर–नारियों को भयभीत दिखाया है

बरसत मेघवत घरनी पर।
मूसलपारं ललित बरसत हैं, नंद न आवत भू पर।
चपला चमकि चमकि चकचौपंति करत शब्द आघात।
अन्धाधुंध पवन वर्तक घर करत फिरत उत्पाद।
घटा घनघोर घहरात, अररात दररात, धररात ब्रज लोग डरखें।

तडति आघात तररात उत्तपात सुनि, नारि–नर संकुचितन प्रान अरपे ।।

प्रकृति का मानवीकरण रूप में वित्रण सूरदास ने सुरकाव्य में प्रकृक्ति को मानव की भीति क्रियाकलाप करते दिखाया गया है। डॉ हरवंशलाल शर्मा के अनुसार ष्वतुरसखी की भीति प्रकृति राधा और कृष्ण के मिलन के लिए उनके प्रेमभाव को उद्दीषा करने के लिए अनुकूल बातावरण उपस्थित करती है। वहाँ प्रकृक्ति अपने कामोद्दीपन कर्तव्य को पूरी तरह पूरा करती है।श प्रकृति कृष्ण की लीला में राहायक है। रास के प्रसंग में प्रकृति रास के आनन्दोल्लास की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करती हुई दिखाई देती है। रासलीला की शरद पूर्णिमा की रात्रि की अद्भुत शोभा है, चारों ओर पुष्प खिले हैं. वृक्षों पर सच फल लगे है, रात्रि चाँदनी से उज्ज्वल हो रही है और वैसा ही रमणीक यमुना का पुलिन है। प्रकृति की पृष्ठभूमि में मानपीय भावों की अभिव्यक्ति हुई है–

षानौ माई धन–धन अन्तर दामिनि ।
धन दामिनि दामिनि पन अन्तर सोभित हरि बज भामिनि।
जमुन पुलिन मल्लिका मनोहर सरद सुहाई जामिनि ।
सुन्दर ससि गुन रूप–राग निधि, अंग –अंग अभिरामिनि ।
रच्यो रस मिलि रसिक राइ सौ,मुदित भई गुन ग्रामिनि।
रूप–निधान श्याम सुन्दर उन, आनन्द– मन विद्यामिनि।
खंजन–मीन मयूर–हंस–पिक, भाइ–भेद गज गामिनि।
को गति भने सूर–मोहन संग, काम विमोड्यौ कामिनि।।2

सूदारस ने अन्यत्र प्रकृति को सक्रिय पृष्ठभूमि के रूप में चित्रित किया है–

प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण सूरदास ने विप्रलम्भ श्रृंगार के वर्णन में प्रकृति के उद्दीपन रूप का मार्मिक पर्णन किया है। सूर ने प्रकृति वर्णन में अलंकार योजना का वर्णन किया है, किन्तु चमत्कारिता के साथ ही रसात्मकता पर भी पूर्ण दृष्टि डाली है। डॉ मुंशीराम शर्मा सोम ने लिखा है– संयोगावस्था में जो वस्तुएँ सुखदायिनी होता है, वियोग में वे ही दुखदायिनी बन जाती है। वर्षा की जो फुहारें कभी प्रमोदेक करती थी, वहीं आज गोपियों के लिए गोपियों ही क्या समसा ब्रजवासियों के लिए भाले और वाणों का कार्य करती हैं। बादल उमड़ उमड़कर आते मयावने, रूप से गोपियों को भयभीत कर रहे हैं। पायस ने विकराल आक्रान्ता का रूप धारण कर लिया है। काले बादलो के दल के दल उन मतवाले हाथियों के समान हैं, जिन्होंने बंधन तोड़ डाले हैं। अपने पैरों तले न जाने कितनों को रौंद बाला है। सूरदास लिखते हैं–

ष्देखियत चहुं दिसि ते घन घोरे
मानो मत मदन के हथियन बल करि बन्धन तोरे।
स्याम सुभग उनु, चुअत गण्ड मद, बरसत धोरे–थोरे।
रूकत न पौन महावत हू मैं मुरत न अंकुस मोरे।
बिनु बेला जल निकसि नयन तै कुब कंचुकि बंद बोरे।
मनो निकसि बग पाँति दाँत उर अवधि सरोवर फोरे।
तब तेहि समय आनि ऐरापति ब्रजपति सो कर जोरे।
अब सुनि सूर कान्ह केहरि बिनु मरत गात जैसे ओरे।"3

इस पद में सांगरूपक है। घोर गर्जना करते हुए बादल मद–गत हाथी है। पानी का बरसना हाथियों के गंडस्थल से मदजल का टपकना है। पवन महावत बना हुआ है, परन्तु आज के बाल रूपी कारण करके उसके अंकुश रूपी निवारण तक नहीं मानते। बादलों में उड़ते हुए श्वेत बगुले मानो हाथियों के श्वेत दत हैं, जो हृदय रूपी सरोवर की अवधि रुपी सीगा को फोड़कर बाहर निकले हैं। तालाब का बाँध ही टूट गया तो पानी कैसे रूक सकता है? तभी तो बाहर यह जलधार और गोपियों के हृदय को फोड़कर निकली हुई कुच कंधुकि बंधन सबको दुबोति हुई यह अश्रुधारा किनाने उद्दाम वेग से प्रवाहित हो रही है। बेला अर्थात तटभूमि रूप अवधि की वेला के टूट जाने से जल रूपी आँसू बह चले हैं। कितने सुन्दर रूपक का निर्वाह हुआ है।

संयोग में सुख देने वाले प्रकृति के उपकरण वियोग में अत्यन्त कष्टपद हो जाते हैं।

शरद, ऋतु का वर्णन–

षोविन्द बिनु कौन हरै, नैननि की जरनि।
सरद निसा अनल भई, चन्दन भयौ तरनि ।।

चन्द्रमों की शीतल किरण गोपियों को विरह–विदग्ध गोपियों को जलाए जा रही हैं–

ष्कोउ, गाई। बरजैया चन्दहि।

करत कोप बहुत हम्ह ऊपर कुमुदनि करत अनंदहि।"4

सूरदास ने संयोगावस्था में प्रकृति का सुखदायी रूप भी बड़ा मार्मिकता से अंकित किया है।

"वर्षा राधा कृष्ण के विलासिता में सहायक है–
श्नयाँ नेह, नयाँ गेह, नयाँ रस, नवल कुंवरि वृषभानु–किशोरी।
नगी पीताम्बर, नई चुनरी, नई नई बूँदनि भीजति गोरी।
नये कुंज. अति पुज नये दूम, सुमग जमुन–जल पवन हिलोरी।
सूरदास प्रभु नवरस विलसत, नवल राधिका जीवन भोरी ।।

उद्दीपन रूप में प्रकृति का चित्रण करते हुए सूरदास ने कहा है, प्रकृक्ति स्वयं संजीय चेतन की भाँति कृष्ण भक्ति में अनुरका होकर कृष्ण के विरह से प्रभावित हो जाती है। गोपियों कृष्ण को इस बात की सूचना भेजना चाहती हैं कि उनके विरह में प्रकृति की क्या दशा हो रही है। एक सांगरूपक के माध्यम से सूरदास ने यमुना को कृष्ण के विरह में व्याकुल दिखाया है–

"देखियत कालिन्दी अति कारी।

अहो पधिक कहियों उस हरि सी गई बिरह जुरि जारी।
मनु मर्दक ते परी घरनि पसि तरंग तलफ तन भारी।
विगलि कच कुस कॉस कूल पर, पकजु कज्जल सारी।

तटवारू उपचार चूर जल पूर प्रस्वेद पनारी।
भौर घुमत अति फिरति भ्रमति मति, दिसि–दिसि दीन दुलारी।
निसि दिन चकई काज बकति है. भई मनो अनुहारी।

सूरदास प्रभु जोइ जमुन गरि सो गति भई हमारी।ष्4

प्रकृति का अप्रस्तुत रूप में चित्रण

सूरदास ने प्रकृति का अप्रस्तुत (उपमान) रूप में सरस वित्रण किया है। उनका सर्वाधिक प्रिय अलंकार उत्प्रेक्षा है। हरिजु की बाल छवि का वर्णन करते हुए कवि भावविभोर हो उठता है। कवि ने व्यतिरेक अर्लेकार का चमत्कार प्रस्तुत किया है–

श्हरिजु की बाल छवि कहाँ बरनि।

सकल सुख की सींव, कोटि मनोज शोमा हरनि।
भुज मुर्जंग सरोज नैननि, बदन विधु जित्यौ तरनि।

रहे विवरिन, सलिल नम, उपमा अपर दुरि डरनि।
मंजु मेचक मृदुल तनु, अनुहरत भूषन भरनि ।

मनहु सुमग सिंगार–सिसु–तरु फर्यो अद्भुत फरनि।

बलत पद–प्रतिबिम्ब मन आँगन पुटरूवनि करनि।

जलज संपुट–सुमग छवि भरि लेत उरजतु धरनि।

प्रन्य फल अनुभवति सुतहिं बिलोकि के नंद–धरनि।

सूर प्रभु की उर बत्ती किलकनि ललित लरखरनि ।।[ष]

सूरदास ने कृष्ण के नेत्रों की उपगा प्रोदोक्ति सिद्ध उपमासों की हीनता प्रदर्शित की है–

"उपमा एक न नैन गही री।
कवि जन कहत–कहत चलि आये सुधि करि–करि काहु न कही।5

सूरदास का सौदर्य रूपकारियोक्ति अलंकार के रूप में भी प्रसिद्ध है–

अद्भुत एक अनुपम बाग।
युगल कमल पर गजबर क्रीड़त वापर सिंह करत अनुराग।
हरि पर सरवर सर पर गिरिवर गिरि पर फूले कंज पराग।ष6

सूरदास की श्अद्भूत बागश की कल्पना मौलिक है। उन्होंने पल्लय, गज सिंह मेरू और कमल का अत्यना सुन्दर उपयोग रूप–सौंदर्य में किया है।

प्राकृतिक उपकरणों को अप्रस्तुत विधान में प्रयुक्त करके भाव का उत्कर्ष दिखाने, वस्तुओं के रूप–गुण तथा क्रियाओं का अधिक तीन अनुभव कराने के लिए किया है। अप्रस्तुत प्रशंसा के विधान से वियोगिनी गोपिकाओं की हरि संदेश सुनने के अनन्तर हुई दशा का प्रकृति के उपकरणों पर प्रभाव दिखाते हुए सुरदास ने इस प्रकार व्यजित किया है–

ष्तबते इन सबहिन सनु पायो।

जबतें हरि संदेस तिहारो, सुनते चांवरो आयो।
फूल ब्याल दुरे ते प्रगटे, पवन पेट भरिखायो।

ऊँचे बैठि बिहंग–समा बिब कोकिल मंगल गायो।।7

सूरदास ने जहाँ कहीं नख शिख वर्णन में प्रकृति के उपकरणों को अप्रस्तुत विधान के रूप में प्रस्तुत किया है, यहाँ उनकी तल्लीनता अनुपम है। समस्त वर्णन में प्रकृति कवि के समीप रूप वर्णन में सहायक उपकरण के रूप में विद्यमान रहती है। उत्प्रेक्षा के रूप में प्रकृति का सरस चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

ऋतु वर्णन सूर साहित्य में ऋतु वर्णन का भी महत्वपूर्ण स्थान है। सूर ने प्राय सभी ऋतुओं का वर्णन किया है।किन्तु उनका बसन्त, वर्षा और शरद ऋतु विशेष महत्व रखता है। बसन्त ऋतु प्रकृति के यौवन की अभिव्यक्ति करने वाली है। चारों ओर पलास के लाल–लाल फूल खिले हैं। आम्र वृक्ष पर बौर छा जाते हैं। सरिताएँ शीतल जल लेकर मंद गति से प्रवाहित होती है। कोकिल प्रेम की उमंग में कुकने लगती है। बसन्त का उल्लास चारों ओर छा रहा है। इस रंगीली बसन्त ऋतु में राधा–कृष्ण विहार कर रहे हैं–

सुन्दर वर संग ललना बिहरी, सरस बसन्त ऋतु आई।
लै ले छरी कुंवरि राधिका कमल नयन पर धाई।
द्वादश वन रतनारे देखिया चहु दिशि टेसू फूले।
भौरे अम्बुआ अरु दुम बैली, मधुकर परिमल भूले।
सरिता शीतल बहुत मंद गति रवि उत्तर दिशि आयो।
प्रेम उमंग कोकिला बोली, बिरहनि बिरह जगायो।

ताल मृदंग बीन बाँसुरी, डफ गाबत मधुरी बानी।
देत परस्पर गरि मुदित है, तरुनी बाला सयानी।।8

सूरदास ने वर्षा ऋतु का वर्णन भी अत्यंत मार्मिक किया है। वर्षा ऋतु संयोग में सुखद और वियोग में दुःखदायिनी है। वर्षा के आगमन से पवन झकझोर चल रही है। चपला बारों और चमक रही है। मार्ग में ही यह वर्षा का समीं बंध गया तो नन्द बाबा मन में डर गए। उन्होंने वात्सल्य भाव से राधा से कहा कि कृष्ण को तू घर ते जा दोनों साथ–साथ घरा जाओ। किन्तु नन्द किशोर राधा के साथ कुंज वन की ओर चल दिये। प्रकृति तो इस संयोग में सहायक बन गई है। कवि ने मानव के प्रति प्रकृति की सहानुभूति दिखाई है। वर्षा ऋतु का वर्णन अत्यन्त सुन्दर है–

षागन गरजि घहराह जुरी घटा कारी।
पवन झकझोर चपला चमक चहुँ ओर।
सुक्न तन चितै नंद डरत भारी। कहयों कान्ह घर लिए जारी।
दोऊ घर जाहु संग नभ भयो। गये बन धन और नवल नन्द किशोर।
स्याम रंग कुँवर कर गहयो वृषभानु बारी।
नवल राधा नये कुंज मारी।
अंग पुलकित भये मदन तिन तन।
जये सूर प्रभु स्याम स्यामा बिहारी।"

शरद् ऋतु का वर्णन रू सूरदास ने रास की पृष्ठभूमि में शरद् ऋतु का मार्मिक वर्णन किया है। शरद् में वृन्दावन की शोभा अत्यन्त विचित्र हो जाती है–

षरद–निसि देखि हरि हरष पायौ।
विपिन वृन्दा रमन, सुभग फूले, रास रूचि स्याम के मनहि आयौ।
परम उज्ज्वल रैनि छिटकि रही भूमि पर, सय फल तरुनि प्रति लटकि लागे।
तैसोई परम रमनीक जमुन पुलिन, त्रिविध बहै पवन आनन्द जागे ।।

बाबू गुलाबराय ने लिखा है कि सूर ने विरह वर्णन की परम्परा के अनुकूल ऋतुओं का उद्दीपन रूप में वर्णन किया है किन्तु कहीं–कहीं उन्होंने नवीनता भी उत्पन्न कर दी है, वर्षा को विरहिणी के रूप में दिखलाते हैं–

देखो माई! नयन सौ घन हारे।
बिन ही ऋतु बरसत निसि बासर सदा सजल दोउ बारे ।।श

वर्षा जब शरीर में ही हो तब वे उससे पीछा छुडाकर कही जाएं? इसने यह भी व्यंजना है कि कृष्ण ने ब्रज को वर्षा के कोप से बचाया था।

बूढत ब्रज को राखै बिन गिरवरधर प्यारे?

कभी वे बादलों में अपने प्रियतम की अनुहारि देखकर अपनी स्मृति को और भी संजीव और शायद सजल बना देती है–

"आज घनस्याम की अनुहारि।
उनै आए साँवरे ते सजनी! देखि रूप की आरि।।9

ऐसे वर्णनों में कृष्ण के घनश्याम नाम की सार्थकता है।
इस प्रकार हम देखते हैं कि सुर साहित्य के प्रकृतिक प्रकृति का निकुंज – मग आदि का बढ़ा ही रमणीय वर्णन मिलता है। ऋतु–वर्णन में सूरदास ने कवि परम्परा को अपनाया है। सूरदास के साहित्य में प्रकृति का महत्वपूर्ण स्थान है।

सन्दर्भ सूचीः

1. सम्पादक धीरेन्द्र वर्मा, दूरतारगर सार पद् 14, पृष्ठ 85
2. सम्पादक धीरेन्द्र यमों सूरसारगर तार पर 83, पृष्ठ 113
3. नागरी प्रचारिणी सभा, 3921
4. सम्पादक भीरेन्द्र यर्मा, सूरतारगर सार, पृष्ठ 254
5. सम्पादक धीरेन्द्र वर्मा यूरसारगर सार,पृ 238
6. सम्पादक धीरेन्द्र वर्मा, सूरसारगर सार, ृ. 200
7. सम्पादक धीरेन्द्र वर्मा सूरसारगर सार,पृ. 186
8. सम्पादक धीरेन्द्र वर्मा, सूरसारगर सार, ृ334
9. सम्पादक धीरेन्द्र वर्मा, सूरसारगर सार, पृष्ठ 251

डॉ. पुष्पा रानी (डी.लिट.)
प्रोफेसर, हिन्दी –विभाग,
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र
मो 9896206889,
E–mail–pushparani2636@gmail.com

7

नरेश मेहता के काव्य की समकालीन प्रासंगिकता

डॉ. सुनीता रानी

भूमिका

आधुनिक हिंदी कविता में कविवर नरेश मेहता का विशिष्ट स्थान है। वे अपने समकालीन अनेक जाने–माने कवियों से अलग मार्ग पर बढ़ते दिखाई देते हैं । श्री नरेश मेहता भारतीय चिंतनधारा को आत्मसात करने वाले कवि है । उन्होंने पौराणिक महाभारत तथा रामायण आदि ग्रंथो से संबंध चरित्रों, घटनाओं तथा मान्यताओं को पुनः आधुनिक संदर्भो में प्रस्तुत किया है । ऐसा करते हुए इन कथाओं को दोहराना मात्र ही इनका लक्ष्य नहीं है । उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से स्वस्थ सामाजिकता की भूमि पर उदात्त मानवीय विचारों की अभिव्यक्ति की है ।

प्रस्तावना

नरेश मेहता नई कविता के प्रतिष्ठित नागरिक होते हुए अपने भावबोध में उसे अतिक्रान्त कर जाने वाले कवि हैं। वे अपने समकालीन अनेक जाने–माने कवियों से अलग मार्ग पर बढ़ते दिखाई देते हैं, कभी –कभी ऐसा भी लगता है कि उनकी जीवन दृष्टि और काव्यगत धारणाएँ मध्यकालीन वैष्णव भक्त कवियों के जितने निकट हैं उतने अपने समकालीन कवियों के नहीं हैं। नरेश मेहता ने अपने समकालीन जाने–माने कवियों से अलग एक उर्ध्वगामी पगडंडी बनाई है। डॉ० विमला सिंह के अनुसार, 'एक वेगवती काव्यधारा से अपने को काटकर स्वेच्छा से भिन्न काव्य मार्ग अपनाना कवि का दुस्साहस ही लगता है। लेकिन इस दुस्साहसिकता की उपलब्धियों भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। अन्य समकालीन कवियों से नरेश मेहता का काव्य व्यक्तित्व अलग ही दिखाई देता है। उनकी कविता वर्तमान में परम्परा का पुनराविष्कार तथा पुनर्साक्षात है।''[1]

रचना की जमीन जितनी ठोस होगी वह उतनी ही प्रामाणिक और प्रासंगिक वन सकेगी। नरेश मेहता के काव्य की जमीन समसामयिक स्थितियों को गहरा स्पर्श देती है। उनकी रचनाओं में युग संदर्भों के अनुकूल जीवन सत्य की पकड, उर्ध्वगामी चेतना और अमानवीय हालातों से टकराने की ताकत है। उन्होंने जातीय मूल्यवत्ता और जातीय अस्मिता को प्रस्तुत करने के लिए पौराणिक मिथकों को माध्यम बनाया है।

हिन्दी कविता में प्रारम्भ से ही मिथकों का प्रयोग होता रहा है । मिथकों के स्त्रोत मुख्यतः दो ही रहे हैं – रामकथा और महाभारत । आधुनिक काल से पहले मिथकों को आध्यात्मिक प्रतीकार्थ के रूप में लिया गया । परन्तु आधुनिक काल के कवियों ने इन मिथकों के माध्यम से सामयिक समस्याओं को उजागर किया है। नरेश मेहता ने अपनी प्रबंधात्मक कृतियों का आधार इन पौराणिक कथाओं को बनाया तो है, परन्तु इनकी रचनाएँ अपना मौलिक स्वरूप रखती है। इन्होंने अपनी कृतियों के माध्यम से ऐसी चिरन्तन समस्याओं को उठाया है जिनका महत्त्व आज भी अक्षुण्ण है। इनकी रचनाओं में जीवन मूल्यों को अभिव्यक्ति मिलती है, जिनके कारण ये आज भी उतनी ही प्रासंगिक बन पड़ी है। हम इनकी रचनाओं की समकालीन प्रासंगिकता और उनके काव्य में अभिव्यक्त मूल्य सूत्रों का स्वरूप विवेचन कर रहे हैं –

नरेश मेहता के काव्य की समकालीन प्रासंगिकता

➢ **संशय की एक रात के संदर्भ में:**

श्री नरेश मेहता ने ने 'संशय की एक रात' में राम के आतंरिक संघर्ष और द्वन्द्व को चित्रित करते हुए उसे आधुनिक व्यक्ति की सोच और संवेदनात्मक स्तर पर प्रतीकात्मक रूप में व्यक्त किया है। कवि का कथन है– "जिस प्रकार कुछ प्रश्न सनातन होते है उसी प्रकार कुछ प्रज्ञा पुरुष भी सनातन प्रतीक होते हैं।। आधुनिक विसंगतियों का राम में आरोपण तथा उनके माध्यम से अपने युग की समस्याओं के समाधान के रूप में विपरीत बोध और मान्यताओं के बीच एक सही दृष्टि अपनाने की प्रेरणा ही मूल अभीष्ट है। इस प्रकार की स्थितियाँ मानव समाज तथा इतिहास में बराबर उठती रही हैं लेकिन प्रत्येक युग का संशय अपने ऐतिहासिक क्षय और मजबूरी से अद्वित्तीय हो जाता है।'[2]

संशय की एक रात में राम को संशयग्रस्त द्वंद्व में जी रहे आधुनिक व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है ।

'संशय की एक रात' व्यष्टि और समष्टि में घटित होने वाली घटना है। व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि मानस अन्याय और अत्याचार के प्रति अधिक दृढ़ता और तीव्रता से प्रतिक्रिया करता है। इस प्रबन्ध काव्य की रचना चीन आक्रमण के समय हुई थी। उस समय व्यष्टि मन थे जवाहरलाल नेहरू, तत्कालीन प्रधानमंत्री, जो अपने आदर्शों के लिए आदेश देने या न देने के द्वन्द्व में पड़े हुए थे। उस समय का जनमानस अन्याय के विरुद्ध लडने के लिए प्रस्तुत था और सेनाओं के संचालक निर्णय की इस देरी पर क्षुब्ध थे। ठीक उसी तरह राम युद्ध के विरुद्ध है। राम सीता की स्वतंत्रता को अपनी व्यक्तिगत समस्या मानते हैं। उन्हें मानव रक्त पर पग धरती सीता नहीं चाहिए। राम के मन का द्वंद्व यही है 'व्यक्तिगत मेरी समस्याएँ! क्यों 'ऐतिहासिक कारणों को जन्म दे। कवि ने राम की मनःस्थिति के जरिए आज के मानव की दुविधा, उद्विग्नता, अनिश्चय, घुटन, छटपटाहट, असहायता आदि को कलात्मक ढंग से पेश किया है।

यही रचना की प्रासंगिकता है।

लघु मानव संशय में नहीं, सत्य में विश्वास करता है। सेतुबंध इन्ही के माध्यम से अस्तित्व में आया। सेतुबंध समन्वित समग्र चेतना का प्रतीक है।

"यह सेतूबंध का बनना
रहता मात्र कल्पना
रामेश्वर तट
एकत्र न होते ये नग्न देह के
कोटि–कोटि
साधारण जन"।[3]

आधुनिक युग में विराट के स्थान पर लघु को अधिक महत्व मिला है। राम के खण्डित व्यक्तित्व को हनुमान जैसे लघु की सहजता की आवश्यकता पड़ती है। लघु नियति की अनिवार्यता को साथ लेकर नहीं चलते। वे मनुष्य की संशयी स्थिति को स्वीकार नहीं करते।

राम और छायात्मालाप भी प्रयोग रूप में चिरन्तन प्रश्नों को ही सामने रखता है और इसके समाधान आज भी अपनी प्रासंगिकता रखते हैं ।

यह सारे प्रश्न इस प्रबंध काव्य के पात्रों के है जो पौराणिक व्यक्तित्व न लेकर आधुनिक जटिल संवेदना को लिए हुए है तथा आज की चेतना उनमें प्रवाहित है। युग का साक्षात्कार इनके माध्यम से किया जा सकता है।

शबरी के संदर्भ में

'शबरी नामक प्रबन्ध काव्य की कथा त्रेता युग की एक दीन –हीन नारी के आत्मिक एवं आध्यात्मिक संघर्ष की कथा है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने अछूत होते हुए भी शबरी को उसकी भक्ति भावना तथा चारित्रिक उदात्तता के कारण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान दिया था। समकालीन परिवेश और उसकी प्रासंगिकता की दृष्टि से यह काव्य पर्याप्त महत्त्वपूर्ण बन पड़ा है। सामाजिक व्यवस्था में असन्तुलन सदा से चला आ रहा है और वह असन्तुलन आज भी विद्यमान है। कवि ने जिस युग की कथा को साकार रूप प्रदान किया है, उस युग में भी वर्ण व्यवस्था का विधान था, किन्तु व्यक्ति उस युग में कर्म के द्वारा वर्णमुक्त होने की चेष्टा कर सकता था। कवि ने शबरी के माध्यम से यही वर्गमुक्त होने की परम्परा प्रतिपादित की है। 'शबरी काव्य में शबरी अपनी अन्त्यज समस्या को अपनी भक्ति की उदात्त भूमि पर पहुँच समाप्त कर देती है और देवियों में शिरोमणि घोषित करवाती है। – कवि शबरी के माध्यम से यह प्रस्थापित करता है कि व्यक्ति चाहे अन्त्यज जाति का हो लेकिन अपने कर्मों से तथा निष्ठा से उर्ध्वता को प्राप्त कर सकता है। शबरी अपने भक्ति भाव से इस स्थान को प्राप्त करती है। जाति–पाति, ऊँच–नीच यह सब इन्सान के स्वयं के बनाए हुए हैं। कवि आज के जीवन में इन विषमताओं का विरोध कर कर्म और निष्ठा को महत्त्व देता है।

मतंग और शबरी को लेकर हुए विवाद के माध्यम से कविवर नरेश मेहता संकेत देते है कि जो भी सड़ी–गली परम्पराओं एवं रूढ़ियों को तोड़ने का शलाध्य प्रयत्न करता है तो समाज उनका विरोध अवश्य करता है ।

शबरी अपनी जन्मगत निम्नवर्गीयता को कर्म दृष्टि के द्वारा वैचारिक उर्धवता में परिणत करती है। यह आत्मिक या आध्यात्मिक संघर्ष व्यक्ति के संदर्भ में मुझे आज भी प्रासंगिक लगता है।[4]

अन्त में हम कह सकते हैं कि नरेश मेहता ने इस रचना के माध्यम से यह प्रतिपादित किया है कि वैचारिक उर्ध्वता द्वारा जाति, धर्म, वर्ण आदि से ऊपर उठकर पूज्य बनाया जा सकता है। व्यक्ति की आध्यात्मिक चेतना उसे बहुत ऊपर ले जाती है और सांसारिकता से परे होकर मानव मूल्यों की समझ आती है। इसमें वर्ण व्यवस्था के सामयिक प्रसंग को उभारा गया है लेकिन कृति ने समस्या का जो हल प्रस्तुत किया है वह बहुत व्यावहारिक नहीं है । दरअसल 'शबरी' रचना बहुत भावात्मक है । इसमें बौद्धिक जीवन दृष्टि और चिंतन का अभाव है ।

महाप्रस्थान के संदर्भ में

कवि ने 'महाप्रस्थान' के युधिष्ठिर के मिथक के माध्यम से राजनीतिक व्यवस्था की चिरन्तन समस्या को उभारा है। कवि ने सम्पूर्ण असंगतियों का मूल कारण राजनीति को माना है। कवि ने राज्य व्यवस्था की चर्चा करते हुए राजा तथा सामान्य जनता को वास्तविक स्थिति का बोध करवाना चाहा हैं। नरेश मेहता ने 'महाप्रस्थान में व्यक्ति, समाज और राज्य की चर्चा करते हुए वैयक्तिक एवं व्यवस्था के विविध पक्षों का उदघाटन किया है। आज के व्यक्ति का सबसे बड़ा संकट है–उसका व्यक्तित्व उसकी अस्मिता व्यवस्था को व्यक्ति से बड़ा नहीं माना जा सकता। अगर ऐसा हो जाता है तो व्यक्ति अस्मिता खो बैठता है। युधिष्ठिर सारे मानवीय दुःखों का आधार के राज्य, राज्य व्यवस्था तथा उसके दर्शन को मानते हैं। वे उस राज्य व्यवस्था के विरुद्ध हैं, जिसमें मानव का सब कुछ छीन लिया जाता है।

युधिष्ठिर व्यक्ति के लिए समर्पित होते हुए एक नए मूल्य स्तर की स्थापना करते हैं । युधिष्ठिर आज के मानव की सुख–सुविधाओं का त्याग करके नए जीवन मूल्यों की खोज में कंटकाकीर्ण मार्ग पर चलने के लिए साहस और प्रेरणा प्रदान करते प्रतीत हो रहे हैं

'महाप्रस्थान' में युद्धजन्य अमानवीकरण की अभिव्यक्ति के मूल में आज के मनुष्य की घोर व्यक्तिवादिता ही कार्य कर रही है। विदुर, भीष्म व द्रोण अर्थ दासता से ग्रस्त मनीषावान, न्याय प्रेमी और गुणग्राही है, लेकिन तीनों ही अर्थदासता के कारण कलंकित जीवन जीने को विवश है। नमक का धर्म निभाते हुए वे आज के विसंगति ग्रस्त व्यक्ति के प्रतीक है। दुर्योधन क्रूर हिंसक, साम्राज्यवादी और पूंजीवादी शक्तियों के प्रतीक हैं

महाप्रस्थान के माध्यम से कवि ने जिन संदर्भो को उठाया है, उसने चाहे अन्धे धृत्तराष्ट्र की कुटिलता हो या भीष्म और द्रोणाचार्य जैसे आचार्यो का असत्य का पक्षधर होना होना हो या दुर्योधन का कुटिल दंभ, अठारह दिन का महायुद्ध जिसमें विजयी और विजित सभी अकिंचन से हो गए। आज के सन्दर्भ में भी उतना ही प्रासंगिक है, द्वितीय महायुद्ध, भारत–चीन युद्ध तथा भारत – पाकिस्तान युद्धों की परिणति इसी ओर संकेत करती है। कवि का कथन है कि –

''युद्धों, प्रतिहिंसाओं के
दावानल में
कोई सुरक्षित नहीं रह पाता।''[5]

नरेश मेहता ने महाप्रस्थान के माध्यम से मौजूदा जनजीवन में फैली विसंगति, उपेक्षा, वैफल्य, विवशता और निरर्थकता का भरपूर चित्रण और विश्लेषण किया है। घोर व्यक्तिवादिता द्वारा शासन सत्ता के कारण हुए अमानवीयकरण को अभिव्यक्ति प्रदान करने के साथ–साथ सामाजिक मानव मूल्यों, परिवार तथा अपने आप से अलगाव की मनःस्थितियों का विश्लेषण भी किया है। वर्तमान जीवन में व्याप्त संशय, द्वन्द्व और अनास्था आदि का कारण कवि से जातीय अस्मिता का हरण माना है। मर्यादाएँ खण्डित होने के कारण समाज में भ्रष्टाचार, घूस और अन्याय ने जन्म लिया। फलतः सत्य, न्याय, अहिंसा, विश्वास और प्रेम जैसे मानवीय मूल्यों का लोप हो गया और व्यक्ति के मन में अविश्वास, आशंका तथा भय घर करता गया। इसी वर्तमान स्थिति को नरेश मेहता ने महाप्रस्थान में रूपायित किया है। वैयक्तिक दृष्टिकोण के कारण मानव में अकेलापन तथा अजनबीपन का बोध उजागर होता है।

मानवता की रक्षा तभी संभव है, जब सब भाई–भाई बनकर रहें। इसके लिए विवेक की आवश्यकता है।

इस प्रकार के नरेश मेहता ने 'महाप्रस्थान' की रचना राज्य और जनता के पारस्परिक रिश्तों को मूल्यों में रखकर की है। इसमें कवि ने महाभारत के मिथक के माध्यम से वर्तमान की भौतिकोन्मुखी और उपभोगवादी प्रवृत्तियों के प्रति अपनी घबराहट व्यक्त की है।

प्रवाद पर्व के संदर्भ में

श्री नरेश मेहता ने अपने समकालीन परिवेश में जूझते हुए प्रवाद पर्व' की रचना की है। प्रवाद पर्व की रचना की मूल प्रेरणा सन् 1975 में घोषित आपातकाल है। कवि ने इसमें निरकुश सत्ता के विरोध में लोकतंत्र का औचित्य सिद्ध किया है तथा देश के सत्ताधीशों को चेतावनी दी है।

नरेश मेहता ने 'प्रवाद पर्व' में समकालीन परिस्थितियों का वर्णन ही नहीं किया बल्कि अतिकमण किया है। उन्होंने मूक मानव को वाणी प्रदान की है। जिस काल में 'प्रवाद पर्व' लिखा गया, उस कालखण्ड की परिस्थितियों में साधारण जन का कोई महत्त्व नहीं रह गया था। रक्षक ही भक्षक हो गए थे । सामाजिक–आर्थिक स्तर पर भ्रष्टाचार बढ़ रहे थे।

महान वह होता है जो व्यष्टि के समक्ष समष्टि को महत्व देता है। 'प्रवाद पर्व' में राम के व्यक्ति के कुशल राजा के रूप में तथा राम को व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है। राम का व्यक्ति प्रजातान्त्रिक मूल्यों की रक्षा करता है।

वे मानते हैं कि अधिकार केवल राज्य, राजपुरुषों या इतिहास पुरुषों के नहीं होते, अनाम साधारण जन के भी होते हैं।

राज्य को सामूहिक आकांक्षा का
प्रतीक बनने दो भरत
प्रजा के भी अधिकार होते हैं।[6]

इतना हीं नहीं राज्य, राजपुरुषों को आदेश देना भी प्रजा का ही कर्त्तव्य मानते हैं–

प्रजा का ही
यह कर्त्तव्य भी है कि
अधिकार में डूबे राज्य
और राजपुरुषों से कहे
न ही आग्रह करे कि
क्या शुभ है और
क्या अशुभ।[7]

राम अच्छी तरह जानते हैं कि राज्य शक्ति के सारे आधार स्तम्भ यदि साधारणता को इतिहासहीन कर लेने का संकल्प कर लेंगे तो राम और रावण में कोई अंतर नहीं रह जाएगा। इसीलिए वह चाहते हैं कि प्रतिइतिहास को इतिहास से नहीं, विनय से स्वीकारा जाए । राम के माध्यम से कवि ने एक आदर्श राजा की कल्पना की है जो साधारण जन की रक्षा करना चाहता है।

प्रभाकर शर्मा के शब्दों में – प्रवाद पर्व रामायणीय सन्दर्भ को लेकर लिखा गया एक ऐसा काव्य है जिसमें समकालीन जीवन के ज्वलन्त प्रश्नों को 1975–76 के वर्षों में उठे प्रश्नों को मानवीय परिप्रेक्ष्य में समाधानित किया गया है। व्यक्ति का सत्ताधीश बनकर साधारणता की उपेक्षा करना अनुचित ही नहीं, अमानवीय भी है। आज यही हो रहा है। एक व्यक्ति की शक्तिमता और प्रजातान्त्रिक शक्तियों के सम्बन्धों को निरूपित करने वाला यह काव्य अपनी समस्त पौराणिकत्ता के बावजूद, आधुनिक बोध से युक्त है। नरेश मेहता लोकतन्त्र बनाम राजतन्त्र की समस्या को आमने सामने रखने और प्रजातान्त्रिक मूल्यों की प्रतिष्ठापना में सफल, हुए हैं।[8]

निष्कर्ष

नरेश मेहता ने मिथकीय पात्रों तथा घटनाओं के मध्यम से मौजूदा जन जीवन में फैली विसंगति, उपेक्षा, वैफल्य, विवशता और निरर्थकता का भरपूर चित्रण और विश्लेषण किया है। घोर व्यक्तिवादिता द्वारा शासन सत्ता के कारण हुए अमानवीकरण को अभिव्यक्ति प्रदान करने के साथ–साथ सामाजिक मान मूल्यों, परिवार तथा अपने आप से अलगाव की मनःस्थितियों का विश्लेषण भी इन प्रबन्धात्मक कृतियों का मुख्य विषय है।

श्री नरेश मेहता ने अपनी कृतियों के माध्यम से व्यक्ति की मुक्ति का आहवान किया है। व्यक्ति और समाज को परस्पर अलग और विरोधी इकाईयों न मानकर इन्होंने व्यक्ति को अपने तथा समाज के अतीत, वर्तमान और भविष्य के प्रति जागरूक होकर जुडने तथा समाज के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए अपने जीवन को सार्थक करने की प्रेरणा भी दी है।

नरेश मेहता के मिथकीय रचनाओं के पात्र, घटनाएं और संवाद विशेष प्रतीकात्मक अर्थ रखते हैं। उनकी यह प्रतीकात्मकता स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय जीवन की व्याख्या के लिए सहायक सिद्ध हुई है। अतः कहा जा सकता है कि नरेश मेहता की मिथकीय रचनाओं के पात्र नई संवेदना और नई चेतना को ही व्याख्यायित करते हैं।

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि भारतीय जन जीवन की व्याख्या और विश्लेषण के लिए नरेश मेहता की मिथकीय रचनाओं ने अपनी अभूतपूर्व भूमिका निभाई है। अपनी अद्‌भुत सम्प्रेषणीय शक्ति के कारण मिथकों ने न केवल बुद्धिजीवियों बल्कि जन साधारण को भी आन्दोलित किया है। इनके माध्यम से कविवर नरेश मेहता ने सामूहिक जीवन को आंदोलित करने के साथ–साथ निजी जीवन वृष्टि को भी विकसित किया है ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः

1. डॉ. विमला सिंह, नई नयी कविता और नरेश मेहता, प्रकाक्थन
2. लक्ष्मीकांत वर्मा, आधुनिक कविता की उपलब्धि (संशय की एक रात), पृष्ठ 5
3. नरेश मेहता, संशय की एक रात, पृ. 60
4. नरेश मेहता, शबरी, रचना की प्रासंगिकता, पृ. 9
5. नरेश मेहता, महाप्रस्थान पृ. 67
6. नरेश मेहता, प्रवाद पर्व, पृ. 42
7. नरेश मेहता, प्रवाद पर्व, पृ. 42
8. प्रभाकर शर्मा, नरेश मेहता का काव्यः विमर्श और मूल्यांकन, पृ. 132

डॉ. सुनीता रानी

सहायक प्राध्यापिका, हिन्दी

आई. बी. पी.जी. महाविद्यालय, पानीपत

Correspondence Address

I.B. (PG) College,

G.T. Road,

Panipat -132103

Mob. No. – 9996000086

8

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में अनुसूचित जाति/जनजाति के क्रान्तिवीरों का विद्रोह एवं उसका प्रभाव

मिथिलेश कुमार, डॉ0 मीरा पाल

सारांश–

यह शोध–पत्र इतिहास लेखन की विविध विधाओं और प्रणालियों के बावजूद भी इस तथ्य को रेखांकित करता है कि भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में अनुसूचित जाति (SC) और अनुसूचित जनजाति (ST) के क्रान्तिवीरों का योगदान अत्यन्त गौरवशाली व्यापक एवं युगान्तरकारी रहा। ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता एवं स्थानीय सामंतशाही के दोहरे शोषण के विरुद्ध इन वंचित एवं शोषित समुदाय ने जो सशस्त्र विद्रोह और वैचारिक क्रान्तियां कीं उन्होंने स्वतन्त्रता आन्दोलन की नींव को सुदृढ़ किया।

इतिहास लेखन के उभार ने यह सिद्ध किया है कि भारत की स्वतन्त्रता की वास्तविक नींव उन सुदूर जंगलों, पहाड़ों एवं सामाजिक हाशिए पर जीने वाले समुदाय ने रखी थी जिन्हें आज हम अनुसूचित जाति–जनजाति के रूप में जानते हैं। इन समुदायों का संघर्ष एक औपनिवेशिक सत्ता को हटाकर दूसरी स्वदेशी सत्ता स्थापित करने तक सीमित नहीं था। इनका संघर्ष बहुआयामी था जहाँ जनजातीय समाज (ST) अपनी सांस्कृतिक स्वायत्तता, आर्थिक सम्प्रभुता और जल, जंगल, जमीन, पारम्परिक अधिकारों को बचाने के लिए लड़ रहा था वहीं अनुसूचित जाति समाज का संघर्ष ब्रिटिश शासकों के साथ–साथ आन्तरिक सामन्तवादी, छुआ–छूत, बेगारी (बंधुआ मजदूरी) और अमानवीय सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध था।

यह शोधपत्र भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में अनुसूचित जाति/जनजाति के वीर नायकों की भूमिका, उनके द्वारा संचालित आन्दोलनों के प्रभाव एवं भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में उनके अमूल्य योगदान की एक विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द : अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, राष्ट्रीय आन्दोलन, क्रान्ति, स्वतन्त्रता, आजादी, आन्दोलन, सामाजिक व्यवस्था इत्यादि।

भूमिका–ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के भारत आगमन और धीरे–धीरे सत्ता विस्तार ने देश के पारम्परिक आर्थिक और सामाजिक ढांचे को पूरी तरह से नष्ट कर दिया। इस विनाश का सबसे क्रूर प्रभाव अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों पर पड़ा।

ब्रिटिश प्रशासन ने राजस्व वसूली के लिए स्थानीय जमींदारों, साहूकारों, व्यापारियों और बिचौलियों को खुली छूट दे दी जब सीधे साधे आदिवासी कर चुकाने में असमर्थ होते तो उनकी जमीनें छीन ली जातीं और उनकी अपनी जमीन (धरती) पर बंधुआ मजदूर बना दिया जाता।

मैदानी क्षेत्रों में अनुसूचित जातियाँ सदियों पुरानी जाति व्यवस्था और अस्पृश्यता के जाल में फँसी थी। ब्रिटिश काल के भूराजस्व सुधारों (जैसे स्थायी बंदोबस्त) ने उच्च जातियों की सामंती पकड़ को और मजबूत किया। इसके कारण दलितों को भूमिहीन कृषि मजदूर और बेगार करने पर विवश होना पड़ा।

जब राष्ट्रीय आन्दोलन आरम्भ हुआ तो इन जातियों के सामने दोहरा संकट था। उन्हें विदेशी शासकों से लड़ना था एवं दैनिक जीवन में सामाजिक न्याय के लिए अपनी ही जमीन के ऊँचे तबके से भी लोहा लेना था। 1857 के लगभग सात दशक पहले ही भारत के जनजातीय क्षेत्रों में सशस्त्र क्रान्तियों का सिलसिला प्रारम्भ हो चुका था। इन आन्दोलनों की प्रकृति अत्यन्त उग्र व हिंसक थी क्योंकि उनके लिए यह अस्तित्व की लड़ाई थी। कुछ प्रमुख आन्दोलन निम्नलिखित हैं जिनका बाद में भारतीय आजादी 1857 के बाद के आन्दोलनों पर गहरा प्रभाव पड़ा।

प्रमुख विद्रोह (आन्दोलन)–1857 के पहले

(1) बाबा तिलका मांझी पहाड़िया विद्रोह (1780–85)–भारतीय स्वतन्त्रता के इतिहास में पहले संगठित सशस्त्र विद्रोह का नेतृत्व करने का श्रेय बाबा तिलका माझी (जाति संथाल) को है। उन्होंने भागलपुर और संथाल परगना के जंगलों में पहाड़िया और संथाल जनजातियों को एकजुट किया। तिलक मांझी ने यह महसूस किया कि अंग्रेज उनकी संस्कृति व संसाधन को निगल रहे हैं। उन्होंने 'गुरिल्ला युद्ध छापेमारी नीति' का उपयोग किया। 1784 में मातृभूमि की रक्षा करते हुए ताड़ के पेड़ पर चढ़कर ब्रिटिश सुप्रिटेंडेंट आगस्टस क्लीवलैंड पर अपने विषैले तीर से प्रहार किया जिससे क्लीवलैंड की मृत्यु हो गयी। यह ब्रिटिश समाज के मुँह पर पहला तमाचा था। 1785 में बाबा तिलका को धोखे से गिरफ्तार कर फाँसी दे दी गयी।

(2) कोल विद्रोह (1789–1832)–झारखण्ड में छोटा नागपुर पठार क्षेत्र में मुण्डा और कोल जनजातियों ने लगातार विद्रोह किये। बुधु भगत के नेतृत्व में 1831–1832 में कोल विद्रोह अत्यन्त भीषण था। बुधु भगत ने ब्रिटिश सेना एवं जमींदारों के खिलाफ हजारों कोलों को संगठित किया। वे अपने बेटों एवं सैकड़ों साथियों के साथ ब्रिटिश सेना से लड़ते–लड़ते शहीद हो गये। इस विद्रोह ने यह सिद्ध किया कि जनजातीय समाज आत्मसमर्पण के बजाय मृत्यु को प्राथमिकता देता है।

(3) सिंधु, कान्ह, चांद और भैरव : संथाल (1855–56)–30 जून 1855 झारखण्ड के भोगनाडीह में एक

ऐतिहासिक सभा हुई जिसमें अनेक संथाल आदिवासी एकत्र हुए। सिंधु, कान्हू, चाँद, भैरव चार भाइयों ने ब्रिटिश सत्ता, महाजनों एवं जमींदारों के खिलाफ हुल महाविद्रोह की घोषणा की।

सिन्धु कान्हू ने नारा दिया–**करो या मरो, अंग्रेजों हमारी माटी छोड़ो।** उन्होंने यह घोषणा की कि ईश्वर ने उन्हें आदेश दिया कि अब पाप कर्मियों का राज समाप्त किया जाए।

(4) भगवान विरसा मुण्डा एवं उलगुलान (1895–1900) : जनजातीय इतिहास के सबसे देदीप्यमान नक्षत्र बिरसा मुण्डा हैं जिन्हें उनके अनुयायी श्रद्धा से धरती आपा (जगत पिता) अथवा भगवान कहते थे। रांची के उलिहातु गाँव में जन्मे बिरसामुण्डा ने अनुभव किया कि ईसाई मिशनरियाँ उनकी संस्कृति को नष्ट कर रही थीं और ब्रिटिश सरकार उनकी जमीन छीन रही थी।

बिरसा ने समाज को अंधविश्वास, मदिरापान, पशुबलि से मुक्त करने के लिए बिरसइत पंथ चलाया। उन्होंने एकेश्वरवाद का संदेश दिया। उनका नारा था **"अबुआ दिसुम अबुआराज, टुंडू सवा राज"**

हमारा देश हमारा राज महारानी का राज खत्म।

मार्च 1900 में चक्रधरपुर के जंगलों में बिरसा मुण्डा सोते हुए गिरफ्तार किए गये। 9 जून 1900 को राँची जेल में मात्र 25 वर्ष की उम्र में रहस्यमयी परिस्थितियों में उनकी मृत्यु हो गई।

(5) खासी विद्रोह/नागा आन्दोलन : मेघालय के खासी पहाड़ियों के राजा (सिसम) यू तिरोट सिंह तब अंग्रेजों के विरुद्ध हथियार उठाये। जब ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने ब्रह्मपुत्र घाटी का सूरजा घाटी को जोड़ने के लिए खासी के क्षेत्र विशेष रणनीतिक सड़क बनाने का प्रयास किया। तिरोट ने भांप लिया कि यह सड़क उनके समाज की स्वतन्त्रता को समाप्त कर देगी और उन्होंने असमिया, गारो, समुदाय को मिलाकर एक मोर्चा बनाया तथा अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिए। 1833 में यू तिरोट को ढाका जेल भेज दिया गया जहाँ उनका देहान्त हो गया।

मणिपुर और नागालैण्ड के क्षेत्रों में जन्मी रानी गाइदिन्ल्यु (हेराका आन्दोलन की नेता) ने मात्र 13 वर्ष में ब्रिटिश औपनिवेशिक नीतियों और ईसाई धर्म परिवर्तन के खिलाफ अपने चचेरे भाई हाओपो जादांनग ने मिलकर विद्रोह प्रारम्भ किया। 1931 में जादोनग को अंग्रेजों ने फांसी दे दी। 1932 में रानी गाइदिन्ल्यु को गिरफ्तार कर आजीवन कारावास की सजा दी गयी तथा 1937 में नेहरू ने शिलांग जेल में मिलने के बाद पहाड़ों की बेटी (रानी) की उपाधि दी। वे आजादी के समय (1947) जेल से रिहा हो सकीं।

प्रभाव : अनुसूचित जाति/जनजाति के विद्रोहों ने एक तरह से अंग्रेजों के सामने आत्मसर्मपण के बजाय मृत्यु चुनी, जिससे क्रान्ति की एक मशाल जला दी। अंग्रेज ब्रिटिश सत्ता को सोचने पर विवश कर दिया गया तथा विद्रोह से औपनिवेशिक डाक व्यवस्था, रेलवे निर्माण और थानों को बुरी तरह ठप कर दिया। स्थानीय ब्रिटिश सेनापतियों को पीछे हटना पड़ा। मार्शल लॉ लागू करना पड़ा। आदिवासियों के विद्रोह से अन्य भूमि सुधार एवं कानून (Acts) बनाने पड़े जैसे 'छोटा नागपुर काश्तकारी नियम' पारित हुआ, जिसमें कानूनी रूप से आदिवासियों की जमीन गैर आदिवासी को देने पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया गया। अनुसूचित जाति/जनजाति के इन आन्दोलनों एवं क्रान्तिवीरों का प्रभाव केवल तत्कालीन ब्रिटिश शासन अस्थिर करने तक नहीं था बल्कि इसके दूरगामी परिणाम हुए। इन आन्दोलनों ने केवल विदेशी शासकों (अंग्रेज) पर नहीं बल्कि देश के अन्दर छिपे शोषकों की जमींदारी की जड़ों पर कड़ा प्रहार किया जिससे आजादी के जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार कानून का मार्ग प्रशस्त हुआ। इसका परिणाम 1857 की क्रान्ति एवं भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में दिखाई पड़ता है।

1857 प्रथम स्वतंत्रता संग्राम SC/ST के प्रमुख कुछ नायक एवं वीरांगनाएं

1857 की क्रान्ति का इतिहास तब तक अधूरा है जब तक इसमें दलित समुदाय के योद्धाओं के रक्त एवं शौर्य को न शामिल किया जाए। मुख्य धारा के इतिहास ने अक्सर राजाओं महाराजाओं एवं सेनापतियों पर ध्यान केन्द्रित किया परन्तु जमीनी स्तर पर लड़ाई का रूख मोड़ने वाले नायक दलित थे।

वीरांगना झलकारी बाई : झांसी की रक्षक

झांसी की रानी लक्ष्मीबाई की शौर्यगाथा अधूरी है यदि उसमें झलकारी बाई (जाति दलित कोरी) का उल्लेख न हो। रानी लक्ष्मीबाई ने इनके शौर्य कौशल को देखते हुए अपनी महिला सेना दुर्गादल का सेनापति बनाया था।

वीरांगना उदादेवी पासी : 16 नवम्बर 1857 को लखनऊ के सिकन्दरबाग में ब्रिटिश सेना एवं भारतीय क्रान्तिवीरों के बीच भीषण युद्ध हुआ। इस युद्ध की महानायिका उदा देवी पासी थीं। पुरुष पोशाक पहनकर पिस्टल के अचूक निशाने से 36 अंग्रेज सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया।

चेतराम जाटव और मेहतर बल्लू–उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ व कासगंज क्षेत्र में चेतराम जाटव एवं मेहतर बल्लू ने 1857 की क्रान्ति के दौरान स्थानीय जनता को संगठित किया। ब्रिटिश रसद खजाने को लुटा अंग्रेजों ने विद्रोह दबाने के बाद इन वीरों को पकड़कर समाज में भय उत्पन्न करने के लिए चौराहे पर

पेड़ से बांधकर तोप से उड़ा दिया।

"कहने का तात्पर्य यह है कि अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के निरन्तर उग्र संघर्षों ने ब्रिटिश सरकार एवं राष्ट्रीय कांग्रेस दोनों को पुनः विचार करने पर विवश किया। क्योंकि जैसे–जैसे स्वतंत्रता आन्दोलन 20वीं सदी में प्रवेश कर रहा था वैसे–वैसे अनुसूचित जाति के संघर्ष में प्रकृति में एक बदलाव आता गया। अब केवल यह संघर्ष भौतिक स्तर तक सीमित नहीं था बल्कि यह वैचारिक, राजनैतिक और संवैधानिक धरातल पर दिखने लगा। इसके प्रमुख कारण बने थे डॉ0 भीमराव अम्बेडकर (20वीं सदी) ने भारतीय स्वतन्त्रता की पूरी दिशा व दशा बदल दी। उन्होंने तर्क दिया कि वास्तविक स्वराज का अर्थ केवल ब्रिटेन से सत्ता का दिल्ली स्थानान्तरण नहीं है। यदि स्वतन्त्र भारत में भी अछूतों की स्थिति वैसी बनी रहे जैसे पहले थी तो ऐसी स्वतन्त्रता निरर्थक होगी।

इसी कड़ी में डॉ0 भीमराव अम्बेडकर जी ने दलित अछूतों, महिलाओं, मानवीय अधिकारों के आत्मसम्मान की पुनःस्थापना के लिए अनेक सत्याग्रह एवं आन्दोलन किया। महाड सत्याग्रह (1927) गोलमेज सम्मेलन में पक्ष रखना, पूना पैक्ट (1932) तथा संविधान में अनुच्छेद 15, 16 व 17 शामिल करना, ये सभी उपलब्धि अम्बेडकर की बदौलत मिली। इन्होंने यह सुनिश्चित किया कि भारत की नींव समता स्वतन्त्रता समता बन्धुता पर आधारित रहे। इसके लिए वे जीवन के अन्तिम क्षण तक प्रयत्नशील रहे। इन्होंने 330 व 332 के तहत लोकसभा विधानसभा में SC/ST के राजनैतिक प्रतिनिधित्व दिया। महिला अधिकार के पक्षधर रहे। इनके योगदान के राष्ट्र हमेशा कृतज्ञ रहेगा।

निष्कर्ष : भारतीय स्वतंत्रता संग्राम विद्रोह लड़ाई केवल लड़ाई नहीं थी बल्कि यह भारत की पूर्वजन्म की गाथा थी। इस गाथा के सबसे साहसी लेखक अनुसूचित जाति/जनजाति के वे क्रान्तिवीर थे जिन्होंने अपने अधिकारों व स्वाभिमान के लिए हँसते हँसते अपने प्राण न्योछावर कर दिए।

जनजाति विद्रोह से अंग्रेजों को समझ में आ गया कि आदिवासियों पर अनुसूचित जाति के लोगों पर सामान्य कानून लागू नहीं किए जा सकते इसलिए गैर विनियमित क्षेत्र बनाये जो बाद में भारतीय संविधान की 5वीं व 6वीं अनुसूची का आधार बनी। भूमि संरक्षण कानून और भूमि सुधार कानून के रूप में देखा जा सकता है। इन सब आंदोलनों व क्रान्ति ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को अपने कार्यक्रमों, अस्पृश्यता निवारण और हरिजन उत्थान जैसे प्राथमिक मुद्दों को जोड़ना पड़ा। इसके बिना स्वतन्त्रता आन्दोलन जनआन्दोलन नहीं बन सकता था। वर्तमान में 21वीं सदी के भारत में जब हम स्वतन्त्रता के अमृत काल और लोकतान्त्रिक विकास की चर्चा करते हैं तो इन वंचित वर्गों के क्रान्तिवीरों के योगदान को रेखांकित करना नहीं भूलते हैं। मुख्यधारा इतिहास में वास्तविक गौरवमयी स्थान देना ही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। इन वीरों का जीवन और दर्शन आज भी भारत को समतावादी और सशक्त राष्ट्र बनाने का मार्ग प्रशस्त करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- सिंह, कुमार सुरेश (1983) बिरसा मुण्डा और उनका आन्दोलन ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस दिल्ली
- चन्द्र विपिन (2016) भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, पेंगुइन बुक्स, नई दिल्ली
- चन्द्र विपिन मुखजी, मृदुला (2016) भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, पेंगुइन बुक्स, नई दिल्ली
- नरायण, बद्री (2006) विमेन हिरोज खण्ड दलित असर्शन इन अपर इण्डिया, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली
- राय, एस सी (1912) द मुण्डाज एण्ड देयर कन्ट्री, सिटी बुक सोसायटी कलकत्ता।
- अम्बेडकर, बी आर (1945) व्हाट कांग्रेस एंड गांधी हैव इन टु द अनटचेबल्स, ठाकुर एण्ड कम्पनी बॉम्बे
- डी0सी0, दिनकर (2007) स्वतन्त्रता संग्राम में अछूतों का योगदान, गौतम बुक सेन्टर नई दिल्ली
- नैमिशराय, दास मोहन (2009) दलित फ्रीडम फाइटर्स, ज्ञान पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली
- एच0सी0, सडागी (2008) दलितों की मुक्ति और स्वतंत्रता संघर्ष, ईशा बुक नई दिल्ली
- चन्द्र, विपिन (2020) आधुनिक भारत का इतिहास

मिथिलेश कुमार
शोध छात्र,
प्रो0 राजेन्द्र सिंह (रज्जू भैया)
विश्वविद्यालय प्रयागराज
डॉ0 मीरा पाल
वी0आर0 राजकीय स्नातकोत्तर
महाविद्यालय फतेहपुर उ0प्र0
(मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग)

Mithilesh Kumar
S/O RAM SNEHI
Village-Paraspura
Post-Dumraon
District-Mau
Pin Code-275101
Mob No.-8299667670
Gmail ID-mk786suman@gmail.com

9

बनारस घराना परंपरा में पंडित किशोर कुमार मिश्रा जी का एक गुरु के रूप में योगदान

डॉ0 गोविन्द सिंह बोरा, मेघा पन्त

सारांश –

भारतीय शास्त्रीय संगीत में गुरु शिष्य परंपरा सबसे महत्वपूर्ण मानी जाती है। इसी परंपरा के माध्यम से संगीत का ज्ञान पीढ़ी दर पीढ़ी तक पहुंचता आया है, बनारस घराना इस परंपरा का प्रमुख केंद्र माना जाता है। इसी क्रम में पंडित किशोर कुमार मिश्रा जो बनारस घराने की प्रतिनिधि कलाकार हैं, ने अपने गुरूजनों से प्राप्त ज्ञान को पूरी निष्ठा से आगे बढ़ाने में अपना योगदान दिया है। उन्होंने अपने वादन से बनारस घराने की शैली को सुरक्षित रखते हुए विद्यार्थियों में लय, अनुशासन व भाव विकसित किया। विशेष रूप से काशी हिंदू विश्वविद्यालय में भी संगतकार के रूप में उनकी भूमिका ने कई विद्यार्थियों को संगीत सीखने में अपनी अहम भूमिका निभाई।

बनारस घराने की परंपरा व विशेषताएं – तबला वादन की परंपरा बनारस में काफी पहले समय से प्रचलित है किंतु, 19वीं शताब्दी तक कहीं भी इसे स्वतंत्र घराने के रूप में नहीं जाना जाता था। तबला वादन के स्वतंत्र घराने के रूप में बनारस घराने की स्थापना पंडित राम सहाय जी के द्वारा की गई। वह तबला वादन के प्रकांड विद्वान माने जाते थे। इन्होंने अपनी अद्वितीय प्रतिभा के बल पर इस घराने का निर्माण किया और एक अलग पहचान दिलाई और आज यह घराना सर्वश्रेष्ठ माना गया, साथ ही साथ गायन वादन और नृत्य तीनों शैलियों की संगीत के क्षेत्र में प्रतिष्ठित ख्याति अर्जित की।

पंडित राम सहाय जी केवल एक श्रेष्ठ वादक की नहीं, अपितु आदर्श गुरु थे। उनसे संगीत की शिक्षा ग्रहण करना बनारस का हर संगीत विद्यार्थी चाहता था, लेकिन उन्होंने अत्यंत सोच समझकर केवल पांच शिष्यों का चयन किया जिन्हें इतिहास में "पंच प्यारे" के रूप में जाना जाता है। अपने अनुज पंडित जानकी सहाय तथा भतीजे पंडित भैरव सहायक को शिक्षा देकर उन्होंने घराने की परंपरा को पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ाया और बनारस घराने की परंपरा को और अधिक व्यापक रूप प्रदान किया।

बनारस घराने की विशेषता – बनारस घराना भारतीय संगीत में अत्यंत प्राचीन व लोकप्रिय घराना माना जाता है। भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्रत्येक घराना अपनी वादन शैली के कारण एक दूसरे से अलग–अलग पहचाना जाता है। इस क्रम में बनारस घराने की विशेषताओं के बारे में पंडित कृष्ण महाराज जी कहते हैं। "तबला सम्राट के पंडित रामसहाय जी ने जिस घराने और बाज को अविष्कृत किया वह ध्रुपद धमार के साथ मृदंग की जगह पर नृत्य के साथ खुले रूप में सितार – सरोज आदि के मधुर रूप में एवं सुगम तथा लोक संगीत के साथ नक्कारा खोल और ढोलक आदि की जगह पर बजने लगा। इसके अलावा स्वतंत्र वादन की नई शैली भी पंडित राम सहाय जी ने अविष्कृत विकसित की इन सब का परिणाम यह हुआ कि बनारस बाज ने एक अलग स्थान प्राप्त कर लिया।"[1]

बनारस घराने की विशेषताओं का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार किया गया है –

1. तबला बजाते समय अनामिका उंगली पूरे हाथ को संतुलन देती है, क्योंकि यदि अनामिका सुद्वढ़ और स्थिर होगी तो हाथ अपने आप संयम और लय में चलने लगता है। प्रोफेसर नीलू शर्मा जी के अनुसार "प्रत्येक बाज में इस अँगुली के रखरखाव में कुछ भिन्नता होती है। जैसे – दिल्ली, अजराड़ा, लखनऊ व फर्रुखाबाद बाज में स्याही पर अनामिका अथवा तीसरी अँगुली लगभग 20^0 डिग्री का न्यून कोण बनाती हुई रखी जाती है। बनारस बाज में अँगुली को अपेक्षाकृत अधिक मोड कर अर्थात 70^0 डिग्री का न्यूनकोण बनाती हुई रखते हैं।[2]

2. पं0 राम सहाय जी ने स्याही पर धा और ता जैसे वर्णों को बजाने की एक नई परंपरा प्रारंभ की।

3. बनारस घराना शैली में अनामिका अँगुली की विशेष भूमिका होती है। अँगुली को मोड़कर लव पर प्रहार किया जाता है। जिससे तबले की ध्वनि खुली और तेज बनती है। लव का सबसे अधिक प्रयोग इसी घराने में देखने को मिलता है।

4. तबला बजाते समय केवल दो–तीन अँगुलियों का प्रयोग नहीं बल्कि पूरे पंजे का प्रयोग किया जाता है। जिसकी मदद से "धिरधिर" बोल तबले पर स्पश्ट रूप से बजाया जाता है।

5. बनारस घराने में तबला मिलाने के पश्चात "थाप" देने की खास परंपरा है जैसे पखावज में होती है। पखावज में हथेली और अँगुलियाँ दोनों लगती हैं। जब कि तबले की थाप में हथेली का प्रयोग नहीं किया जाता है।

6. बनारस में बायें तबले का प्रयोग बहुत सुंदर तरीके से किया जाता है। "बायें को घसीटकर लंबी मीण्ड निकालने की प्रथा बनारस घराने में अधिक देखने को मिलती हैं।[3] बायें को घसीटकर लंबी मींड निकालना, दाएं के साथ बराबरी, दाब गांज का प्रयोग आदि डग्गे की विशेशता है।

7. बनारस घराने की वादन अत्यंत ही विस्तृत व विविधतापूर्ण है। यहां कायदों से ज्यादा उठान, पडार, बांट, रेला, गत, फर्द, परन, टुकड़े, लग्गी, लड़, गत – कायदा, अंगुस्थाना आदि पर जोर दिया जाता है। "फर्द" यहाँ की अनोखी देन है। यह घराना कत्थक नृत्य से

जुड़े होने के कारण इसकी रचनाओं में लयकारी और सौंदर्य विशेश रूप से दिखाई देता है।

8. "बनारस घराने की पद्वति के अनुसार यहाँ वादन का आरंभ उठान से किया जाता है। जब कि अन्य घरानों के वादक प्रायः पेशकार से शुरूआत करते हैं।"[4]

9. बनारस में "जनानी" तथा "मर्दानी" दो प्रकार की गतें बजाई जाती है। जनानी गतों में कोमलता और नजाकता दिखाई देती है, बल्कि मर्दानी गतों में जोरदार बोल पूरे पंजे से बजाएं जाते हैं।

घराने की इन विशेशताओं को देखकर यह कहा जा सकता है कि बनारस घराने अपने आप में पूर्ण समृद्व है। स्वतंत्र वादन हो या संगति दोनों ही क्षेत्रों में बनारस बाज अपनी श्रेश्ठता सिद्व करता है। बनारस की सांस्कृतिक परंपरा तथा यहां के श्रेश्ठ कलाकारों ने इस शैली को निरंतर समृद्व किया और तबला वादन को एक नई उंचाई के शिखर तक पहुंचाया।

पंडित किशोर कुमार मिश्रा जी की गुरु के रूप में भूमिका –

पंडित किशोर कुमार मिश्रा जी का जन्म बनारस के एक सांगीतिक परिवार में हुआ। उनका परिवार कला और संस्कृति से पीढ़ी दर पीढ़ी जुड़ा हुआ है, इसलिए बचपन से ही उनकी रुचि तबला सीखने में रही, कुछ विद्वानों के अनुसार उनकी स्मरण शक्ति बहुत तेज थी। जो बोल वह एक बार सुन लेते थे उसे तो वह तुरंत समझ लेते थे।" यही गुण आगे चलकर उन्हें कुशल कलाकार बनने में सहायक बना। बनारस घराने की शुद्ध शैली खुले बोल, लय की स्पष्टता बचपन से ही उनके संस्कारों में उतरती चली गई।

पंडित किशोर कुमार मिश्रा जी बनारस घराने के उन प्रमुख कलाकारों में से है जिन्होंने गुरु के रूप में तबला परंपरा को एक नई पीढ़ी तक जीवित और सशक्त रूप में पहुंचाया। उन्होंने सिर्फ संगीत की शिक्षा ही नहीं दी बल्कि अपने शिष्यों में संस्कारों का भी सृजन किया। पंडित किशोर कुमार मिश्रा जी का व्यक्तित्व बहुआयामी विशेषताओं का अद्वितीय व अनुपम संयोजन है। पंडित जी की संगीतज्ञ या व्यक्तिगत रूप में एक अनूठी छवि देखने को मिलती है। यदि गुरु के रूप में देखें तो पंडित जी निस्वार्थ रूप से वंश व शिश्य परंपरा वह बाहरी देशों से आने वाले विद्यार्थियों को शिक्षा देते हुए देखा गया है।

"पंडित जी बताते हैं कि संगीत में रियाज आवश्यक है। अगर आप रियाज नहीं करोगे तो सीखोगे कैसे, तबला एक लय वाद्य है। जिसके पास लय की समझ नहीं होगी तो वह तबला नहीं सीख पाएगा।"[5] पंडित जी तबले में पहले वर्ण निकालना सिखाते हैं, फिर वर्ण का समूह बनाकर सिखाते हैं। संगीत में लय का होना अति आवश्यक है तो अभ्यास एकमात्र साधन है। उनका उद्देश्य संगीत की शिक्षा प्रदान कर अपने शिष्यों के अंदर ज्ञान का प्रकाश जागृत करना व उनके भविष्य को एक उचित मार्गदर्शन देना है। पंडित जी विद्यार्थियों के हाथों के रखरखाव बोलों के निकास स्पष्ट और सार्थक किए बिना तबले में आगे की शिक्षा प्रारंभ नहीं करते हैं।

बनारस घराने की जटिल से जटिल रचनाओं को पंडित जी द्वारा विद्यार्थियों को बड़ी ही सरलता व सहजता से निकास का तरीका बताकर उनके द्वारा बोलों को आसानी से बजवाने की काबिलियत रखते हैं। यह विद्यार्थी पर भी निर्भर करता है कि वह ऐसे श्रेष्ठ वह महान गुरु के द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन वह कठिन अभ्यास कर गुरु के प्रति वह अपने रियाज की प्रति संघर्ष के साथ अध्ययन पर अग्रसर रहे, जिससे गुरू को उसके किये गये कार्य नाज हो सके।

विद्यार्थियों के द्वारा जब भी पंडित जी से किसी बोल के निकास व लय के बारे में पूछा जाता है, तो पंडित जी अपने जरूरी काम छोड़कर उस विद्यार्थी की लगन को देखकर बोल स्पष्ट व लय में लाने के लिए कड़ी मेहनत व सहजता के साथ उसका उचित मार्गदर्शन देकर उसको बोलों का सही निकास बात कर उसकी जीवन शैली को एक नया आयाम देते हैं। "यदि आर्थिक रूप से कोई विद्यार्थी गुरु दक्षिणा देने में सक्षम नहीं हो, तो भी गुरुजी निस्वार्थ भाव से उसकी शिक्षा हमेशा जारी रखने हेतु तत्पर रहते हैं।"[6]

यद्यपि पंडित किशोर कुमार मिश्रा जी के बाहर के जितने भी शिष्य है, वो जब भी भारत देश विद्या ग्रहण करने पहुंचते हैं , तो पंडित जी द्वारा उन लोगों के लिए भाषा के अनुसार जो व्यक्ति जिस देश से आया है उनके लिए अलग–अलग कक्षाओं का आयोजन किया जाता है, जिसमें पंडित जी द्वारा भारतीय शास्त्रीय संगीत के बोलों को उन्हीं की भाषा के अनुरूप ढालकर उनको शिक्षा प्रदान करते हैं। पंडित किशोर कुमार मिश्रा जी के व्यवहार में एक आदत सी बनी हुई है कि सभी शिष्यों को भोजन व चाय नाश्ता के बिना घर से विदा नहीं किया जाता है।

पंडित किशोर कुमार मिश्रा जी काशी हिंदू विश्वविद्यालय में तबला संगतकार में शिक्षक के रूप में कार्यरत थे, तो वहां भी उन्होंने विद्यार्थियों को शास्त्रीय संगीत की ओर आकर्षित किया। पंडित जी ने पाठ्यक्रम के साथ–साथ घराने की शैली भी सिखाई, उनका प्रयास रहा कि विश्वविद्यालय की शिक्षा केवल सैद्वांतिक ना रहे बल्कि उसमें बनारस बाज की मिठास और व्यवहारिक ज्ञान भी शामिल हो। "बीएचयू में उनकी सांगतिक यात्रा बड़ी सहज रही, वह समय से पहले पहुंचने थे और समय

खत्म होने के बाद तक रहते थे। कोई अगर क्लास नहीं ले रहा हो तो बच्चों को खुद गवाते थे और बताते भी थे कि ऐसे नहीं ऐसे करो, वे एक अच्छे मार्गदर्शक की पहचान है। आज भी वर्तमान समय में बी0एच0यू0 के शिक्षक उन्हें याद करते हैं। हर चर्चा में उनका नाम आता है। यह कलाकार की सबसे बड़ी पूंजी होती है।"[7]

आज अनेक युवा तबला वादक उनके शिश्य के रूप में देश – विदेश में सक्रिय हैं। उनकी वादन शैली में जो स्पश्टता तैयारी और बनारस बाज की मिठास दिखाई देती है। वह पंडित किशोर कुमार मिश्रा जी की गुरू दृश्टि का ही परिणाम है। आपके विद्यार्थियों के द्वारा प्राप्त जानकारी के अनुसार आपके गुरु के रूप में योगदान को यहां उल्लेख किया जा रहा है।

पंडित किशोर कुमार मिश्रा जी के शिष्य नितिन कुमार पंत जी के अनुसार "सन् 2007 में जब तबले की शिक्षा ग्रहण करने के लिए बनारस जाना हुआ, बनारस जाने के पश्चात् काशी हिंदू विश्वविद्यालय के संगीत एवं मंच कला संकाय में डिप्लोमा में एडमिशन लिया। संकाय में अपने वरिष्ठ विद्यार्थियों के साथ साप्ताहिक प्रत्येक गुरुवार को होने वाली संगीत कार्यक्रम में पंडित किशोर कुमार मिश्रा जी के वादन को देखकर उनके वादन वह बनारस घराने की वादन शैली से प्रभावित होकर पंडित जी से गुरु शिष्य परंपरा के अंतर्गत सीखने की इच्छा जागृत हुई। गुरुजी से बात करने के पश्चात परंपरागत तरीके से गण्डा बंधन करवाने के बाद संगीत की शिक्षा आरंभ करी। गुरुजी के बताएं बनारस घराने की जोरदार व परंपरागत बोलों से अपनी शिक्षा को निरन्तर जारी रखा वह उनके निःस्वार्थ शिक्षा को उनके अंतर्गत जारी रखा, उस वक्त गुरुजी एक मात्र रविवार की बैठकी करते थे, जो मेरे लिए पर्याप्त नहीं हो पा रहा था। अतः गुरुजी से निवेदन कर उनके परिवार के साथ उनके छोटे भाई स्व0 पंडित संतोष कुमार मिश्रा जी जो एक सुप्रसिद्ध सारंगी वादक थे व उनके पुत्र पंडित अंकित मिश्रा जी जो वर्तमान में विश्व विख्यात सारंगी वादक है। उनके साथ प्रतिदिन निरन्तर अभ्यास करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पंडित जी के द्वारा उठान, कायदा रेला टुकड़ा फर्द, टुकड़े आदि बनारस घराने की कई चीज सीखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ उनके द्वारा दिया गया स्नेहे और प्रेम का मैं सदा आभारी रहूंगा।

विशाल गुप्ता जी के अनुसार – मैंने गुरुजी से वर्ष 2008 में गुरु शिष्य परंपरा के अंतर्गत शिक्षा ग्रहण करना प्रारंभ किया। गुरुजी एक सुप्रसिद्ध और प्रतिश्ठित कलाकार है , उनकी ख्याति बनारस में नहीं बल्कि देश विदेश में प्राप्त हैं। बचपन से ही मैंने उन्हें विभिन्न मंचों पर वादन करते हुए देखा है, उनके वादन में जो ठहराव, गरिमा और गहराई है। उसने मेरे मन में यह भावना उत्पन्न की कि यदि वास्तव में सभी ढंग से तबला सीखना है तो उन्हीं से सीखना चाहिए।

गुरुजी ने जब प्रथम बार मेरा वादन सुना तो उन्होंने कहा, "तुम बहुत अच्छा कर रहे हो और आगे और भी अच्छा कर सकते हो।" गुरुजी के ये शब्द मेरे लिए केवल प्रशंसा मात्र नहीं बल्कि प्रेरणास्रोत थे, ऐसे गुरुजी मिलना वास्तव में संभव नहीं है, वे कभी डांटते नहीं थे। जब हम लोग रियाज कर रहे होते और गुरुजी दूर से सुन रहे होते तब यदि कोई गलती हो जाती तो वह मुस्कुरा कर कहते थे "अरे यह क्या बजा रहे हो अभी जाकर बताते हैं" उनके इन शब्दों में न डांट होती थी और न कोई भय, वे बहुत प्रेम से समझाते थे। उन्होंने हमें बनारस घराने की कई चीजें सिखाई। धा धा ते टे धा धा तू ना के अलावा अनेक अंगुस्ताना और हाथों की बारीकियां सिखाई जिससे वादन में स्पश्टता और संतुलन व गरिमा दिखाई दे।

फ्रांस विद्यार्थी स्टीफन के अनुसार – मैंने गुरुजी से लगभग 20 वर्ष से पहले तबला सीखना प्रारंभ किया, गुरु जी के बारे में उन्हीं के शिष्य रोहिल और वासिलिस के द्वारा पता चला गुरुजी के साथ अपनापन महसूस करने में मुझे ज्यादा समय नहीं लगा उन्होंने मुझे अपना पूरा समय, धैर्य और स्नेह दिया। गुरुजी के साथ रहकर मैंने न केवल संगीत के बारे में बहुत कुछ सीखा, बल्कि जीवन को देखने का व्यापक दृष्टिकोण भी पाया। नियमित अभ्यास और समर्पण के दिनचर्या में प्रवेश करना मनुष्य की खुशी को विकसित करता है, क्योंकि इस प्रकार का ध्यान प्रतिदिन बहुत ऊर्जा और सकारात्मक तरंगे देता है। यह सकारात्मक भाव पूरे दिन के लिए जीवन में उत्साह और संतुलन भर देते हैं।

ग्रीक विद्यार्थी रोहिल व वासीलिस के अनुसार – गुरुजी पंडित किशोर कुमार मिश्रा जी का व्यवहार अत्यंत ही सरल, सौम्य और स्नेहपूर्ण रहा। हमने 2005 से गुरुजी से तबले की विधिवत शिक्षा लेनी प्रारंभ करी। वे मेरी शिक्षा के प्रति बहुत रुचि लेते हैं। हमारे लिए वह एक आदर्श है और पिता के समान है। गुरुजी से हमने अनेक बंदिशें सीखी साथ ही हमने इस समस्त सामाग्री के साथ तरत्कालिक, रचनात्मकता का तरीका भी जाना। हमने यह भी सीखा कि सही ढंग से रियाज कैसे किया जाए और अपने हाथों तथा मन के लिए सर्वोत्त्म तकनीक कैसे विकसित की जाए।

निष्कर्ष – किशोर पंडित किशोर कुमार मिश्रा जी का गुरु के रूप में योगदान केवल शिष्य तैयार करना बल्कि बनारस घराने करने

की परंपरा को जीवित रखना है। उनकी शिक्षा से निकले शिश्य आज देश–विदेश में परंपरा का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। वे एक ऐसे गुरु है जिन्होंने कला, संस्कार और मनुष्यता तीनों की शिक्षा एक साथ दी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मिश्र विजय शंकर अन्तर्नाद : सुर और साज पृ0 – 50
2. शर्मा सुनीता तबला वादन की कला की तकनीक एवं सौंदर्य पक्ष, पृ0 – 232
3. ई0 मिस्त्री आबान पखावज और तबला के घराने एवं परंपराएं, पृ0 167
4. पंडित किशोर कुमार मिश्रा जी के से साक्षात्कार
5. पंडित किशोर कुमार मिश्रा जी के से साक्षात्कार
6. पंडित सुखदेव प्रसाद मिश्रा जी से साक्षात्कार
7. प्रोफेसर चंदन विश्वकर्मा जी से साक्षात्कार

डॉ0 गोविन्द सिंह बोरा

विभागाध्यक्ष

एम0बी0पी0जी0 कॉलेज, हल्द्वानी

मेघा पन्त

शोधार्थी

एम0बी0पी0जी0 कॉलेज, हल्द्वानी

10

विदुशी शांति शर्मा का इंदौर घराने के संरक्षण एवं संवर्धन में योगदान : एक सूक्ष्म परिचय

डॉ0 मोनी जोशी

सार–संक्षेप

भारतीय शास्त्रीय संगीत की परंपरा में घराना व्यवस्था का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक घराने ने अपनी विशिष्ट गायन शैली, सौंदर्यबोध तथ सांगीतिक दृष्टिकोण के माध्यम से संगीत को समृद्ध बनाया है। इंदौर घराना अपनी स्वर प्रधानता राग की गंभीर एवं भावपूर्ण प्रस्तुति विलंबित आलाप, मीड़ तथा सूक्ष्म स्वर–विन्यास के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध है। इस परंपरा को सुरक्षित रखने और नई पीढ़ी तक पहुँचाने में विदुशी शांति शर्मा का नाम उल्लेखनीय है। आपने अपने गुरु पंडित अमरनाथ से प्राप्त सांगीतिक विरासत को आत्मसात करते हुए शिक्षण। मंचीय प्रस्तुतियों, गुरु–शिष्य परंपरा तथा सांगीतिक सृजन के माध्यम से इंदौर घराने के संरक्षण एवं संवर्धन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। प्रस्तुत शोध–पत्र में उनके इन्ही बहुआयामी योगदानों का सूक्ष्म अध्ययन किया गया हैं।

भारतीय शास्त्रीय संगीत में किसी भी घराने की निरंतरता केवल श्रेष्ठ कलाकारों से नहीं, बल्कि समर्पित गुरू, योग्य शिष्यों और जीवंत सांगीतिक परंपरा से बनी रहती है। इसी संदर्भ में विदुशी शांति शर्मा का नाम अत्यंत सम्मान के साथ लिया जाता है। उन्होंने अपने गुरू पंडित अमरनाथ के संरक्षण में इंदौर घराने की विशिष्ट गायन जीवनपर्यंत उसी परंपरा के मूल सिद्वांतों के संरक्षण के लिए समर्पित रही। उनके गायन में स्वर की शुद्धता, राग की गहराई, भावाभिव्यक्ति, लय–संतुलन तथा सौंदर्यपूर्ण आलाप की स्पष्ट झलक दिखाई देती है, जो इंदौर घराने की प्रमुख विशेषताओं को सजीव रूप में प्रस्तुत करती हैं।

सन् 1980 में श्रीराम भारतीय कला केंद्र, नई दिल्ली में संगीत शिक्षण प्रारम्भ करने के साथ आपने गुरू–शिष्य परंपरा को नई ऊर्जा प्रदान की। आपने केवल संगीत की तकनीक शिक्षा ही नहीं दी, बल्कि शिष्यों में अनुशासन नियमित रियाज, सांगीतिक संवेदनशीलता तथा परंपरा के प्रति सम्मान का संस्कार भी विकसित किया। आपके अनेक शिष्य आज देश–विदेश में भारतीय शास्त्रीय संगीत का सफलतापूर्वक प्रचार–प्रसार कर रहे हैं, जो आपकी शिक्षण की गुणवत्ता और दूरदर्शिता का प्रमाण है। विदुशी शांति शर्मा ने दिल्ली, चंडीगढ़, हैदराबाद, कोलकाता, अहमदाबाद, ग्वालियर तथा बांग्लादेश सहित अनेक प्रतिश्ठित राश्ट्रीय एवं अंतर्राश्ट्रीय संगीत सम्मेलनों, संगीत महोत्सवों तथा सांस्कृतिक आयोजनों में अपनी प्रभावशाली प्रस्तुतियाँ दी। इन प्रस्तुतियों के माध्यम से आपने न केवल इंदौर घराने की विशिष्ट गायकी को व्यापक पहचान दिलाई, बल्कि शास्त्रीय संगीत के प्रति जनमानस में रूचि और जागरूकता भी विकसित की, आपकी मंचीय प्रस्तुतियाँ परंपरा और सौंदर्यबोध का उत्कृष्ट उदाहरण मानी जाती हैं।

आपके उत्कृष्ट सांगीतिक योगदान के लिए आपके सिंगार सम्मान, बेगम अरन्तर मेमोरियल अवॉर्ड, नेशनल फैलोशिप, इंदिरा गांधी प्रियदर्शनी अवॉर्ड तथा अन्य अनेक प्रतिश्ठित सम्मानों से सम्मानित किया गया। ये सम्मान केवल उनकी व्यक्तिगत उपलब्धियाँ नहीं हैं, बल्कि इंदौर घराने की सांगीतिक परंपरा को राष्ट्रीय स्तर पर प्राप्त प्रतिष्ठा के भी प्रतीक हैं।

यह स्पष्ट है कि विदुशी शांति शर्मा का योगदान केवल एक कुशल गायिका तक सीमित नही है उन्होंने शिक्षिका, गुरू, मंचीय कलाकार तथा सांस्कृतिक प्रतिनिधि के रूप में कार्य करते हुए इंदौर घराने की परंपरा को जीवंत बनाए रखा। इसके अतिरिक्त, विदुशी शांति शर्मा का योगदान इंदौर घराने की गायन परंपरा को केवल मंचीय प्रस्तुतियों तक सीमित न रखकर उसके सांगीतिक मूल्यों को व्यापक स्तर पर स्थापित करने में भी दिखाई देता है। आपने अपनी साधना और प्रस्तुतियों के माध्यम से घराने की विशिश्ट गायन शैली, रागदारी की गंभीरता, स्वर की शुद्धता तथा भावपूर्ण अभिव्यक्ति को निरंतर बनाए रखा। आपके गायन में राग के स्वरूप एवं उसके भाव–पक्ष के साथ–साथ आलाप, मींड, स्वर–विन्यास तथा लय के संतुलित प्रयोग की स्पश्टता दिखाई देती है, जो इंदौर घराने की विशिश्ट सांगीतिक पहचान को प्रभावशाली रूप से प्रस्तुत करती है। उनके शिक्षण कार्य में परंपरा और अनुशासन के साथ–साथ विद्यार्थियों की व्यक्तिगत सांगीतिक क्षमता के विकास पर भी विशेश ध्यान दिया गया, आपने अपने शिश्यों को केवल रागों और बंदिशों का ज्ञान प्रदान नहीं किया, बल्कि नियमित रियाज, स्वर–साधना, संगीत के प्रति संवेदनशीलता तथा मंचीय प्रस्तुति के आवश्यक गुणों को विकसित किया। इस प्रकार आपने गुरू से प्राप्त ज्ञान को केवल स्वयं तक सीमित न रखकर उसे शिष्यों के माध्यम से आगे बढ़ाया। उनकी यह कार्यपद्धति इंदौर घराने की मौखिक एवं जीवंत परंपरा को निरंतरता प्रदान करने में सहायक रही। साथ ही विभिन्न संगीत सम्मेलनों एवं सांस्कृतिक मंचों पर उनकी सक्रिय उपस्थिति ने इस घराने की विशिश्टताओं को को संगीत–रसिकों और नई पीढ़ीं तक पहुँचाने का कार्य किया।

आपके माध्यम से इंदौर घराने की गायन परंपरा को व्यापक मंच प्राप्त हुआ, तथा शास्त्रीय संगीत के प्रति श्रोताओं की रूचि और जागरूकता को भी बल मिला। इस दृश्टि से उनका योगदान केवल एक कलाकार अथवा शिक्षिका के रूप में नहीं, बल्कि

एक ऐसी सांगीतिक साधिका के रूप में महत्वपूर्ण है, जिन्होंने परंपरा को आत्मासात कर उसे अपने गायन, शिक्षण ओर सांस्कृतिक गतिविधियों के माध्यम से आगे बढ़ाया। इस प्रकार विदुशी शांति शर्मा का कार्य इंदौर घराने की परंपरा के संरक्षण के साथ–साथ उसके समकालीन संदर्भो में संवर्धन का भी। महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करता है। आपके प्रयासों ने इंदौर घराने की सांगीतिक विरासत को नई पीढ़ी तक पहुँचाने के साथ–साथ भारतीय शास्त्रीय संगीत के संरक्षण एवं संवर्धन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि विदुशी शांति शर्मा इंदौर घराने की उने विशिष्ट संगीत साधिकाओं में है जिन्होने अपनी साधना, उत्कृष्ट गायन, आदर्श शिक्षण, गुरू शिष्य परंपरा तथा राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर प्रभावशाली प्रस्तुतियों के माध्यम से इस घराने की परंपरा को सुरक्षित, समृद्ध एवं व्यापक बनाया, उनका योगदान केवल व्यक्तिगत उपलब्धियों तक सीमित नहीं है, बल्कि भारतीय शास्त्रीय संगीत की सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण और संवर्धन का सशक्त उदाहरण है। भविष्य में इंदौर घराने के अध्ययन में विदुशी शांति शर्मा का योगदान सदैव महत्वपूर्ण एवं स्मरणीय रहेगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1. द ट्रिब्यून इंडिया न्यूज से प्राप्त जानकारी, स्थानः चंडीगढ़, दिनांकः 30.10.1992
2. द इंडियन एक्सप्रेस, चैन्नई द्वारा प्राप्त जानकारी, दिनांकः 25. 02.2003
3. द हिन्दू न्यूज से प्राप्त जानकारी, दिनांकः 12.03.1999
4. सिंह तेजपाल (सिंह बंधु) अरोरा, प्रेरणा, संगीत के दैदीप्यमान सूर्य उ0 उमीर खाँ, कनिश्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली (2004)
5. अली इब्राहिम, भारतीय संगीतकार उ0 अमीर खाँ, क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली (2000)

डॉ0 मोनी जोशी
सहायक प्राध्यापिका (अतिथि)
एम0बी पी0जी कॉलेज
हल्द्वानी

11

''भीष्म साहनी के उपन्यासों में धार्मिक और सांस्कृतिक चेतना''

शिमला रानी, डॉ॰ जसबीर सिंह

शोध सारांश

भीष्म साहनी का साहित्य सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना का प्रतिबिंब है, जिसमें धार्मिक विचारधाराओं और परंपराओं का गहरा प्रभाव देखने को मिलता है। साहनी का मानना है कि धर्म मानव जीवन का आधार है, जो उसकी मानवीयता, नैतिकता और संस्कृति का निर्माण करता है। उन्होंने धार्मिक रूढ़ियों, अंधविश्वासों और कट्टरपंथी प्रवृत्तियों का भी आलोचनात्मक चित्रण किया है। उनका उपन्यास साहित्य इन रूढ़ियों के विरुद्ध आवाज उठाता है और नये विचारों का स्वागत करता है। उनके उपन्यास 'तमस' और 'झरोखे' जैसे ग्रंथों में हिन्दू–मुस्लिम, सिख, ईसाई धर्मों के बीच द्वेष और मेल का चित्रण है, जो धार्मिक चेतना के साथ–साथ समाज में व्याप्त संघर्ष को भी दर्शाता है। सामाजिक परिवर्तन और धार्मिक सहिष्णुता उनकी रचनाओं का केंद्रीय विषय है। उन्होंने धर्म को समाज को जोड़ने वाला तत्व माना है, लेकिन साथ ही उसकी विकृतियों का भी पर्दाफाश किया है। उनके साहित्य का उद्देश्य धार्मिक कट्टरपंथ को चुनौती देना और मानवता का संदेश देना है। इस प्रकार, भीष्म साहनी के उपन्यासों में धार्मिक और सांस्कृतिक चेतना का मिश्रित रूप देखने को मिलता है, जो समाज में समरसता और मानवता का मूल्य संप्रेषित करता है।

कुंजी शब्द :– सामाजिक बदलाव ,परम्पराएँ ,धर्म और राजनीति ,समाजिक समरसता ,साम्प्रदायिकता , धार्मिक संघर्ष, जातिगत रूढ़िया,संस्कृति ,सांस्कृतिक चेतना

प्रस्तावना

'धर्म' का अर्थ धारण करने से होता है। किसी भी देश की संस्कृति का सम्बन्ध मुख्यतः उसके धर्म से होता है। धर्म विद्वानों के द्वारा बनाया हुआ एक ऐसा मार्ग है, जो मनुष्य को परम् शान्ति प्रदान करती है। मानव को पशुत्व से अलग करके उसे मानव की श्रेणी में खड़ा कर देती है। संस्कृति का मानव जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रत्येक देश की संस्कृति भिन्न–भिन्न मानी जाती है।

''भारतीय संस्कृति ही विश्व की अन्यतम संस्कृति है, जिसने अनेक सांस्कृतिक संक्रान्तियों के पश्चात् भी अपनी विशेषताओं को अक्षुण्ण रखा है।''[1] भारतीय जीवन में धर्म को मूलाधार माना जाता है। धार्मिक मान्यताओं के अनुसार इस सम्पूर्ण ब्रह्मांड का एक ही सृष्टिकर्ता ईश्वर माना जाता है। पर्व, त्यौहार, उत्सव सभी हमारे सामाजिक जीवन के महत्वपूर्ण अंग माने जाते हैं। इन सभी मूल्यों पर हमें धर्म का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है।

भीष्म साहनी के उपन्यास साहित्य में हमें धार्मिक तथा सांस्कृति चेतना का स्वरूप देखने को मिलता है। अच्छाई के साथ बुराई भी चलती रहती है। ''धर्म और धार्मिक भावना को सामन्ती व्यवस्था में खूब फलने का अवसर मिला। फलस्वरूप अनेक धार्मिक मान्यताओं के साथ, धार्मिक अन्धत्व और कट्टरपन खूब विकसित हुए जो आज समाज को किसी हद तक जकड़े हुए है। धर्म की अपेक्षा आदमी का स्थान दिनों–दिन नीचा होता गया है।''[2]

धर्म भारतीय संस्कृति का प्राण माना जाता है। धर्म के बिना मनुष्य का अस्तित्व नहीं है। मानव जीवन को पावन बनाने की क्षमता धर्म में ही होती है। प्रत्येक साहित्यकार का धर्म से भी विशेष लगाव होता है, अपने साहित्य में वह धर्म को व्यापक रूप से महत्व प्रदान करता है। ''साहित्यकार की धार्मिक प्रवृत्ति साहित्य को विश्व–कल्याणकारी बनाती है। प्रत्येक साहित्य में कुछ धार्मिक आस्थाएँ और विश्वास होते हैं। उन्हीं के माध्यम से वह साहित्य सृजन् करता है, जिससे उसकी कृति- प्रौढ़ और महान् बनती है। साहित्य जब धर्म से पोषित होता है, तब उसमें मानय–आग्रह और आदर्श सुरक्षित रहते हैं।''[3]

भीष्म साहनी के उपन्यास साहित्य में हमें धर्म का विशेष स्वरूप देखने को मिलता है। अपने साहित्य में उन्होंने धर्म को विशेष स्थान दिया है। विभिन्न धर्मों का सामंजस्य तथा सभी धर्मों के प्रति आस्था भीष्म साहनी के साहित्य का प्रमुख विषय रहा है।

ऐतिहासिक दृष्टि से''हिन्दुस्तान जब खंडित नहीं हुआ था और अंग्रेजों की गुलामी से बाहर निकलने के लिए आन्तरिक और ब्राह्य दोनों प्रकार की लड़ाइयाँ लड़ रहा था, उस वक्त भी हिन्दुस्तान हिन्दुस्तान नहीं था। उसकी अपनी पहचान थी, परम्पराएँ थीं, रीति और रिवाज के साथ–साथ एक तरफ धर्म की रूढ़िगत मान्यताएँ जहाँ चरमोत्कर्ष पर थीं. वहीं उन रूढ़ियों के खिलाफ पूरे देश भर में अपने–अपने ढंग से विरोध भी प्रकट हो रहे थे।''[4]

भारत देश में अनेक प्रकार के धर्म हिन्दू–मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई सभी धर्मो का निवास है। भीष्म साहनी ने अपने साहित्य के माध्यम से धर्म निरपेक्ष या पन्थ–निरपेक्ष की अवधारणा को समान महत्व दिया है। उन्होंने अपने साहित्य में हिन्दू–मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई सभी धर्मों को व्यापक महत्व दिया है।

'तमस' उपन्यास में हिन्दू और मुसलमान धर्म की आड़ में दोनों सम्प्रदायों के बीच साम्प्रदायिक दंगे–फसाद शुरू हो जाते हैं। तमस उपन्यास का शाहनवाज मुसलमान होते हुए भी अपने हिन्दू दोस्त रघुनाथ की सहायता करता है। दंगों के चलते शाहनवाज उनकी पत्नी के दूसरे घर से गहना लाता है।''दोनों दोस्त बैठ गए।

रघुनाथ ने गम्भीर आवाज में कहा, ष्बहुत गड़बड़ है, दिल को बड़ा दुःख होता है, भाई–भाई का गला काट रहा है।''[5]

'नीलू नीलिमा नीलोफर' उपन्यास का परिवेश भी धार्मिक विश्वासों, संस्कारों तथा धर्म के द्वारा हिन्दू–मुस्लिम परिवारों की कुंठाओं को रंखांकित करता है। आज के समाज में हिन्दू और मुस्लिम के बीच विवाह के सम्बन्ध में अनेक समस्याएँ खड़ी हो जाती हैं। उपन्यास में मुस्लिम लड़की नीलू नीलोफर हिन्दू लडके सुधीर से प्रेम विवाह करना चाहती है, पर दोनों परिवारों के बीच तनाव आ जाता है। दोनों परिवारों की असहमति होने पर भी वह शादी कर लेते हैं। नीलू का भाई हमीद इंस्पेक्टर के पास जाकर दोनों की शादी को गलत बताता है। इंस्पेक्टर कहता है– 'ऐसी शादी पहली बार नहीं हो रही है। मेरी हमदर्दी लड़के के साथ होती, क्योंकि मैं हिन्दू हूँ, तो आप लोगों को बुलवाता ही नहीं। मेरे लिए यह काफी था कि लड़का–लड़की दोनों बालिग हैं, एक–दूसरे से शादी करना चाहते हैं, मैं उनकी दरखास्त लेकर फाइल में लगा देता। मैंने तो आपको इसलिए बुलाया है कि घरवालों के सामने लड़का–लड़की अपनी रजामंदी जाहिर करें। बस इतना ही।''[6] कानून की नजर में भी सभी धर्मों का समान महत्य है, यह किसी भी एक धर्म का समर्थन नहीं करता है। ''लोक जीवन में आध्यात्मिक तथा धार्मिक रूढ़ियों की जड़ें बहुत गहरी होती हैं। वर्गहीन समाजवादी व्यवस्था में सामाजिक रूपान्तरण के बाद भी काफी समय तक धार्मिक मान्यताएँ एवं परम्पराएँ बनी रहती हैं। पूँजीवादी व्यवस्था में तो इसका बाकायदा पोषण होता है, इसलिए उसकी समाप्ति का प्रश्न ही नहीं उठता।''[7]

भीष्म साहनी ने सभी धर्मों को विशेष महत्व दिया है। सभी को अपने–अपने धर्मों के पालन, रीति–रिवाज, खान–पान तथा रहन–सहन का समान रूप से अधिकार है। उनकी दृष्टि में 'धर्म तो मनुष्य को बेहतर इंसान बनने, उसके मानवीय गुणों का विकास करने, उसे सभ्य और सुसंस्कृत बनाने की प्रेरणा देता है, दृष्टि की विशालता देता है, इंसानों को जोड़ने की, उसे दूसरों के खून का प्यासा बनाने की प्रेरणा कहाँ देता है?''[8] साहनी जी का समग्र लेखन इसी दृष्टिकोण का प्रतिफलन है। आज भी हमारे देश में पुरानी परम्पराओं, रीति–रिवाजों, सामाजिक ब्राह्याडम्बरों का वर्चस्व है। हमारे ग्रामीण समाज में धर्म सम्बन्धी प्राचीन रूढ़ियों और धार्मिक अन्धविश्वास देखने को मिलता है। वर्तमान युग में विज्ञान चरम उन्नति के शिखर पर पहुँच चुका है, पर दूसरी ओर समाज प्राचीन मान्यताओं एवं परम्पराओं में फँसा हुआ हुआ दिखाई पडता है। भीष्म साहनी के साहित्य में हमें प्राचीन परम्पराएँ, मान्यताएँ, धार्मिक अन्धविश्वास प्रमुख रूप से दृष्टिगोचर होती हैं, जिनका उन्होंने वर्णन तो किया है, पर उसका खण्डन भी किया है।

'तमस' उपन्यास में नत्थू की पत्नी प्राचीन मान्यताओं तथा परम्पराओं को मानने वाली नारी के रूप में सामने आती है। वह सभी के सुख–दुःख में साथ देने वाली स्त्री है। 'अपने थोड़े में ही सन्तुष्ट रहने वाली और भगवान् से डरने वाली स्त्री है।'[9]

'बसंती' उपन्यास में बसंती की माँ अपने पति चौधरी की तरह रूढ़िवादी विचारों वाली महिला है। 'औरत होकर उसे लड़कियों से कोई खास प्रेम–भाव नहीं है। जितना प्रेम वह अपने बेटे रामू से करती है, उतनी ही नफरत वह बसंती से करती है। बात–बात पर वह बसंती को मारती–पीटती है।'[10] बसंती की माँ लड़की की तुलना में बेटे रामू को अधिक स्नेह देती है।

'बसंती' उपन्यास में दीनू की पत्नी 'रुक्मी' भी पुरातन संस्कारों से ग्रसित ग्रामीण भारतीय पतिव्रता नारी है। मय्यादास की माड़ी उपन्यास का पुरोहित माड़ी का पण्डित ढोंगी ज्योतिषियों का प्रतिनिधित्व करता है। धनपत को तो लगता है कि पुरोहित सचमुच ज्योतिषी है, जब मनीराम की मरने की सूचना सुनता है, जिसे पुरोहित रामदास ने कह दिया था कि महाराज यह मरने वाला है 'यदि भविष्यवाणी सुखद होती, तो कहता, 'राम भली करेंगे। और यदि कोई अशुभ घटना घटने वाली होती तो बुदबुदाकर कहता, साहा नारी है। और आँखें मींचकर सिर हिला देता था।''[11]

'कुतो' उपन्यास की कुंतो भी हमेशा मनौतियाँ मानने वाली तथा प्राचीन मान्यताओं को मानने वाली स्त्री है। आदर्श भारतीय नारी की तरह वह अपने पति का दोष होते हुए भी हमेशा पति जयदेव का साथ देती है–''बली ने तो कोई गलती नहीं की। बली ने मुझसे कुछ नहीं छिपाया। उसका दिल शीशे की तरह साफ है।''[12] संस्कारगत रूप में हमें धार्मिक रूढ़ियों, परम्पराएँ एवं मान्यताएँ हमारे लोक जीवन में प्रचलित हैं। 'झरोखे' उपन्यास में नायक बालक के पिता कहते हैं– 'बच्ची की जीन पर 'ओम्' लिखो। शहद से ओम् लिखो। पिताजी कहते हैं। जाओ बलदेव, माँ से कहो, बच्ची की जीन पर ओम् लिखो। भीष्म साहनी के साहित्य में प्राचीन परम्पराएँ, जातिगत और समाजगत रूढ़ियाँ सभी धर्म सम्बन्धी मान्यताएँ प्रमुख रूप से दृष्टिगोचर होती हैं।

सांस्कृतिक चेतना

संस्कृति शब्द अंग्रेजी के 'कल्चर' का पर्याय माना जाता है। जिस समाज में हम अपना जीवन यापन करते हैं, यही हमारी संस्कृति है। समाज और संस्कृति का घनिष्ठ सम्बन्ध माना जाता है। प्रत्येक देश की संस्कृति अलग–अलग होती है। संस्कृति का

क्षेत्र मनुष्य के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, दार्शनिक, साहित्यिक आदि जीवन के विभिन्न पहलुओं से रहा है।

'साहित्य संचित ज्ञान राशि का मूर्त रूप है। इसीलिए वह किसी देश या काल की संस्कृति के ज्ञान का सर्वाधिक विश्वस्त और प्राभाविक आधार होता है। साहित्य में संस्कृति के जातीय मनोभाव सुरक्षित रहते हैं। दर्शन का सत्य जब सौन्दर्य के संयोग से सज्जित होकर अपने शिवत्व की अभिव्यक्ति के लिए मचल पड़ता है, तभी उच्चकोटि के साहित्य की सर्जना होती है।''[13]

संस्कृति और साहित्य का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध माना जाता है। संस्कृति मनुष्य के धर्म सम्बन्धी संस्कारों से प्रेरित होती है। साहित्य भी समाज, धर्म एवं देश–काल से प्रभावित होता है। साहित्यकार भी अपने देश के भूत और भविष्य की संस्कृति को अपने साहित्य में परिलक्षित करता है।संस्कृति का स्वरूप दिन–प्रतिदिन साहित्य के साथ बदलता रहता है। संस्कृति ही साहित्य को प्रकाश में लाने का कार्य करता है। प्रत्येक साहित्यकार अपनी संस्कृति से प्रभावित रहता है। भीष्म साहनी ने अपने उपन्यास साहित्य में भारतीय संस्कृति का व्यापक रूप से विवेचन किया है। उनकी मान्यता रही है–''भारतीय संस्कृति का प्राणतत्त्व समन्यय भावना है। हमारे देश की संस्कृति, मेल–मिलाप की ही संस्कृति रही है। गाँवों, कस्बों में तो विशेष रूप से। दुःख–सुख के समय पहुँचना अनिवार्य माना जाता है। हमारे सभी त्योहारों का आधार ही मेल–मिलाप है। शायद हम जरूरत से ज्यादा परम्परावादी हैं, शादी–गमी पर उपस्थित होने की अनिवार्यता पर जरूरत से ज्यादा बल दिया जाता है। फिर भी, इसके सम्बन्धों से जो अपनेपन की गर्माहट, स्निग्धता मिलती है, उसका कोई मूल्य नहीं।''[14] भीष्म साहनी का समग्र साहित्य इस चेतना से ओत–प्रोत है।

संस्कृति और विभिन्न संस्कार

भीष्म साहनी ने भी अपने उपन्यास साहित्य के माध्यम से विभिन्न प्रकार की संस्कृति तथा संस्कारों का निरूपण किया है। **झरोखे** उपन्यास में भीष्म साहनी ने एक आर्यसमाजी परिवार के रहन–सहन, खान–पान तथा संस्कृति को उल्लिखित किया है। कथानायक बालक के परिवार में आर्य समाजी संस्कार विद्यमान् है। जब दोनों भाई बलराज तथा बालक का यज्ञोपवीत संस्कार होने वाला है– 'आज हमारा यज्ञोपवीत संस्कार है और मैंने पीली धोती बाँध रखी है। घर का आँगन लोगों से खचाखच भरा है। नहाने से पहले नाई के सामने इतनी देर तक गर्दन झुकाए बैठना पड़ा था कि पीठ में दर्द होने लगा था। दो एक जगह उस्तरे से खोपड़ी छिल गई है। यहाँ हल्की–हल्की जलन हो रही है, पर मैं खुश हूँ। छिप छिपकर बार–बार घुटे हुए सिर पर हाथ फेर लाता है। अब की चुटिया मोटी है। भाई का भी सिर घुटा हुआ है और उसकी चुटिया मोटी है। आँगन में बैठे लोगों के बीचोंबीच हम पीली धोतियाँ बाँधे, हाथ में सफेद कपड़े के तिकोने से रूमाल उठाए जिनमें गाँठें डालकर उन्हें पात्र का–सा रूप दिया है, हम धीरे–धीरे आगे बढ़ रहे हैं। एक–एक व्यक्ति के सामने खड़े होकर मैं कहता हूँ।''भिक्षां देहि।''[15]

'कड़ियों' उपन्यास की प्रमिला अपने पति महेन्द्र का अन्य स्त्री सुषमा के साथ सम्बन्ध होने के कारण भी अपने पुराने संस्कारों में ही तथा प्राचीन मान्यताओं को मानने वाली भारतीय गृहिणी है। अपने पति के पाश्चात्य संस्कृति के अनुकरण को देखते हुए भी यह प्राचीन मान्यताओं से ही जकड़ी रहती है।

''प्रमिला आँखें बन्द किए, दोनों हाथ गोद में रखे, प्रार्थना किए जा रही थी। महेन्द्र उसे बैठा देखता रहा। प्रमिला के होंठ बन्द थे और कमान की तरह खिंचे थे। कन्धों और पीठ पर छित्तरे बालों और मुचडे कपडों के कारण प्रमिला की देह शिथिल–सी लग रही थी। थोड़ी ही देर बाद प्रमिला ने सिर नवा दिया जुड़े हुए हाथ माथे पर लगाए और आँखें खोल दीं।''[16]

'तमस' उपन्यास की प्रकाशो (हिन्दू) लड़की मुस्लिम लड़के अल्लाहरक्खा के जबरदस्ती विवाह करने पर उसके सामने हार मान लेती है। अमन कमेटी के लोग जब प्रकाशो के माँ–बाप को बेटी की मिलने की खबर देते हैं, तो यह अपने हिन्दू संस्कारों से बेबस होकर उसे अपने साथ ले जाने से मना कर देते हैं। प्रकाशो के मुसलमान लड़के से शादी होने के कारण यह अकेले ही अपनी बेटी को छोडकर घर चले जाते हैं।

भीष्म साहनी ने अपने साहित्य के द्वारा भारतीय तथा पाश्चात्य समाज के रीति–रिवाज, खान–पान तथा रहन–सहन को व्यापक रूप से उजागर किया है। भारतीय सभ्यता का पाश्चात्य संस्कृति तथा सभ्यता के प्रति अनुकरण को भी व्यापक रूप से विवेचित किया है। आज के अतीत में भीष्म साहनी ने लिखा है– ''कैन्टोमेट में दो सिनेमाघर थे, जहाँ अंग्रेजी फिल्में दिखाई जाती थीं।जमाना बदल रहा था और इस बदलाय की आहटें उन सिनेमाघरों में भी सुनाई पड़ने लगी थीं। उन दिनों के चलन के अनुसार, फिल्म खत्म होने पर (God Save The King) (भगवान् हमारे सम्राट को सुरक्षित रखें) की धुन बजाई जाती थी। जब हॉल में बैठे सभी वर्शक उठ खड़े होते और जितनी देर तक धुन बजती रहती तनकर खड़े रहते। पर अब, दर्शकों में बैठे हिन्दुस्तानी युवक, धुन बनाजे पर उठकर हॉल में से बाहर निकल जाते।''[17]

'कडियां' उपन्यास भीष्म साहनी का एक सामाजिक तथा पारिवारिक उपन्यास माना जाता है। उपन्यास का पात्र महेन्द्र अपनी पत्नी प्रमिला के रहन–सहन के ढंग को लेकर परेशान है। यह चाहता है कि प्रमिला आधुनिक युग की चहल–पहल में ढल जाये। ऐसा न होने पर वह अपनी ही दफ्तर की कैशियर सुषमा से अवैध सम्बन्ध बना लेता है। 'महेन्द्र चाहता है कि प्रमिला नये–नये कपड़े पहने, श्रृंगार करे, आभूषण पहने और अत्याधुनिक तरीके से सज–धज के रहे। वह उससे कहता भी है कि तुम बड़ी सुन्दर हो प्रमिला। तुम अपनी कीमत नहीं पहचानती हो। घर में भी अच्छे कपड़े पहनकर रहना चाहिए।''[18]

'बसंती' उन्यास की नायिका बसंती महानगरीय जीवन की चकाचौंध में ढल जाती है। बसंती गाँव के वातावरण से शहर के वातावरण में घुल–मिल जाती है। सिनेमा देखना, फोटो खिंचवाना सभी प्रकार के आधुनिक क्रियाकलाप को यह जान चुकी थी। 'बसंती' उपन्यास में बसंती की बस्ती का रहन–सहन साधारण था ''सुबह सवेरे जब चौधरी अपनी कोठरी से निकला, तो हवा में कोहरा छाया था– नील–मायल धुंधला–सा कोहरा, जो किसी दिन सुबह उठो, तो अकारण ही चारों ओर नजर आने लगता है। और साथ ही सुइयों चुभोती ठंडी हवा। उसने आँख उठाकर ऊपर की ओर देखा–मट मैले बादल, जैसे रात–ही–रात में नीचे उतर आए थे। इसी कारण सवेरा हो जाने पर भी दिन का गुमान नहीं होता था। 'बरसेगा, आज जरूर बरसेगा, चौधरी बुदबुदाया। पर बस्ती जाग गई थी और दिन का व्यापार, छिट–पुट शुरू हो गया था।''[19]

'मय्यादास की माडी' उपन्यास पंजाब की धरती पर सिक्खों के अमलदारी का इतिहास बताती है। किस तरह से पंजाब की धरती पर अंग्रेजों ने शासन स्थापित कर लिया था। उपन्यास में दीवान धनपत का तीसरा बेटा हुकूमतराय इग्लैण्ड में बैरीस्टरी पढ़कर भारत आया, तो पूरी तरह अंग्रेजों के रंग में डूब चुका था।''दीवान हुकूमतराय ने माड़ी के निचले हिस्से में अपने लिए छोटा–सा इग्लैण्ड बना लिया था। कमरों की साज–सज्जा और वैरिस्टर का रहन–सहन अंग्रेजी ढंग का था। खानसामा सुबह के वक्त गर्म–गर्म चाय लेकर आता और हिदायत के मुताबिक खिड़की पर से पर्दा हटा देता।''[20]

'कुंतो' उपन्यास में प्रोफेस्साब एक अनुभवी तथा दार्शनिक व्यक्ति के रूप में सामने आते हैं। प्रोफेस्साब के छोटे भाई डॉ० धनराज डॉक्टरी के लिए सिंगापुर से आया, तो वह पूरी तरह से भारतीय संस्कृति को छोडकर विदेशी संस्कृति को अपनाता है। ''धनराज ने लौटने के कुछ ही दिन बाद, अपने कमरे के फर्श पर सफेद और भूरे रंगों का एक डुगेट बिछवा दिया था। धनराज कमरे से बाहर निकलता तो ड्रेसिंग गाउन पहनकर। कमरे के अन्दर गोल शीशेवाली एक तिपाई पर उसने प्रसाधन की अनेक छोटी–बड़ी शीशियों टिका दी थीं।''[21]

'नीलू नीलिमा नीलोफर' उपन्यास में भीष्म साहनी ने दो प्रेमी युगलों का चित्रांकन किया है, जो कि विधर्मी होकर भी शादी करना चाहते हैं। दोनों परिवारों के रीति–रिवाज, रहन–सहन असमान हैं। नीलिमा की दादी शादी के लिए मना करती है ''परम्परागत रूढ़िवादी भारतीय नारी के चरित्र के उजागर करने वाली दादी माँ अपने परम्परागत संस्कारों से ग्रस्त है। उसी परिपाटी पर चलना बेहतर समझती है। वह नहीं चाहती कि नीलिमा की शादी उस मुस्लिम लड़के अल्ताफ से हो जिसे वह प्रेम करती है। उनकी नजर में प्रेम, वासना का ही दूसरा नाम है। इसलिए वह नीलिमा की शादी अपनी ही जात–बिरादरी में कराने के लिए अपने बेटे को मजबूर करती है।''[22]

'नीलू नीलिमा नीलोफर' उपन्यास में हिन्दू तथा मुस्लिम परिवारों का खान–पान, रहन–सहन, तीज–त्यौहार, मान्यताओं को निरूपित किया गया है। मुस्लिम घर के रहन–सहन का चित्रण प्रमुख रूप से है–'आँगन में एक ओर को एक गदराए शरीर की औरत 'चटूरी' के पीछे बैठे दही बिलो रही थी, आँगन में एक ओर को एक बकरी बंधी थी। पास में मिट्टी की हाँडी स्खी थी। अपने साथी के पीछे भागता हुआ जब वह पिछले कमरे में पहुँचा था तो अँगीठी पर दीवार के साथ–साथ चीनी के बर्तनों की लम्बी पॉत नजर आई थी। चमचम करती प्लेटें, तश्तरियों, कहवा पीने वाले प्याले।''[23]

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि भीष्म साहनी के सम्पूर्ण साहित्य में हमें धार्मिक तथा सांस्कृतिक चेतना का बहुमुखी रूप देखने को मिलता है। अंग्रजों द्वारा धार्मिक तथा साम्प्रदायिक रूप से भारतीय जनता में फूट डालना तथा भास्त पर अपना शासन स्थापित करना उद्देश्य रहा है, पर लोगों में धार्मिक तथा सांस्कृतिक चेतना स्थापित कर, भीष्म साहनी ने अंग्रेजों का पुरजोर विरोध किया है। 'भारत जैसे बहुधर्मी, बहुजातीय समाज में प्रजातंत्रात्मक धर्मनिरपेक्षता ही शान्ति और सामंजस्य को सुनिश्चित कर सकती है। इसी के बलबूते राष्ट्रीय एकता के प्रति जन–चेतना का संचार किया जा सकता है। यह जन–चेतना समानता के आधार पर सुदृढ़ बनाई जा सकती है। इस दिशा में विभिन्न रचनाकर्मियों, लेखकों, बुद्धिजीवियों, कलाकारों, सिनेमा कर्मियों की विशेष साँझा शिरकत भी लाजिमी है। भीष्म साहनी ने धार्मिक उत्सव, पर्व–त्यौहार और सभी

सामाजिक तथा सांस्कृतिक पहलुओं रीति–रिवाज, खान–पान, रहन–सहन एवं सभी मूल्यों को अपने साहित्य में निरूपित किया है तथा धर्म और संस्कृति के नाम पर होने वाले कुकृत्यों के प्रति अपनी आवाज भी उठाई है।

संदर्भ सूची

1. डॉ. सरोज चौरसिया, 'मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में युग–चेतना', पृष्ठ 294 (2011) वाणी प्रकाशन
2. डॉ. गोरेलाल चन्देला, 'भीष्म साहनी का साहित्यः चेतना के विविध आयाम', पृष्ठ 110
3. डॉ. प्रेमदत्त शर्मा, 'प्रसाद साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि', पृष्ठ 200
4. डॉ. विवेक द्विवेदी, 'भीष्म साहनी का उपन्यास साहित्य', पृष्ठ 16
5. भीष्म साहनी, 'तमस', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 2008 पृष्ठ 152
6. भीष्म साहनी,'नीलू नीलिमा नीलोफर',राजकमल प्रकाशन, पहला प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं.2000पृ. 21
7. डॉ. गोरेलाल चन्देला, 'भीष्म साहनी का साहित्यः चेतना के विविध आयाम', पृष्ठ 84
8. भीष्म साहनी, 'आज का अतीत', राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ 292 (2004)
9. भीष्म साहनी, 'तमस', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 2008 पृष्ठ 125
10. डॉ.कृष्णा पटेल,'कथाकार भीष्म साहनी',प्रकाशकः चिंतन प्रकाशन,कानपुर प्रकाशन वर्ष 2009पृष्ठ 139
11. भीष्म साहनी,'मय्यादास की माड़ी',राजकमल प्रकाशन, पहला प्रकाशन,नई दिल्ली, प्र.सं.2008 पृष्ठ 13
12. भीष्म साहनी,'कुतो',राजकमल प्रकाशन, पहला प्रकाशन, नई दिल्ली,प्र.सं.2008 पृष्ठ 260
13. डॉ. प्रेमदत्त शर्मा,'प्रसाद साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि', प्रकाशकः जयपुर पुस्तक सदन,चौड़ा रास्ता, जयपुर मुद्रकः राजधानी मुद्रण शाला,सुदर्शन गेट, दिल्ली,1968 पृष्ठ 9
14. भीष्म साहनी,'आज का अतीत', राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ 278
15. भीष्म साहनी,'झरोखे',राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1991 पृष्ठ 74
16. भीष्म साहनी,'कड़ियाँ',राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण, नई दिल्ली, प्र.सं.1989 पृष्ठ 21
17. भीष्म साहनी, 'आज का अतीत', राजकमल प्रकाशन,पृष्ठ 69
18. डॉ.कृष्णा पटेल,'कथाकार भीष्म साहनी', प्रकाशकः चिंतन प्रकाशन,कानपुर प्रकाशन वर्ष 2009 पृष्ठ 33
19. भीष्म साहनी, 'बसंती', राजकमल प्रकाशन, चौथा संस्करण, नई दिल्ली, प्र. सं. 2008, पृष्ठ 7
20. भीष्म साहनी,'मय्यादास की माड़ी',राजकमल प्रकाशन,पहला प्रकाशन,नई दिल्ली,प्र.सं. 2008 पृष्ठ 327
21. भीष्म साहनी,'कुंतो',राजकमल प्रकाशन, पहला प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2008 पृष्ठ 128–129
22. डॉ.कृष्णा पटेल,'कथाकार भीष्म साहनी',प्रकाशकः चिंतन प्रकाशन,कानपुर प्रकाशन वर्ष 2009पृष्ठ 166
23. भीष्म साहनी,'नीलू नीलिमा नीलोफर',राजकमल प्रकाशन,पहला प्रकाशन,दिल्ली,प्र.सं.2000 पृष्ठ 81

शोधार्थी :– शिमला रानी
शोध निर्देशक :– डॉ॰ जसबीर सिंह
आचार्य, हिन्दी विभाग
चौधरी देवी लाल
विश्वविद्यालय
सिरसा (हरियाणा)
–125055
दूरभाष – 89295–85637
Email I'd &
Shimlarani244@gmail-com
गाँव – मंगाला
जिला – सिरसा
(हरियाणा)

12

डॉ. राजपालः जीवन, व्यक्तित्व एवं कृतित्व

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

सारांश

समकालीन हिन्दी साहित्य और शिक्षा जगत में डॉ. राजपाल एक ऐसे शिक्षाविद्, शोधकर्ता, साहित्यकार एवं समाजसेवी के रूप में प्रतिष्ठित हैं जिन्होंने अपने बहुआयामी कार्यों से शिक्षा एवं साहित्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। ग्रामीण परिवेश से निकलकर उच्च शिक्षा, शोध, अध्यापन एवं साहित्यिक गतिविधियों के माध्यम से उन्होंने अपनी विशिष्ट पहचान स्थापित की है। प्रस्तुत शोधपत्र में डॉ. राजपाल के जीवन, व्यक्तित्व, कृतित्व, शैक्षिक उपलब्धियों, साहित्यिक योगदान, शोध कार्यों, सामाजिक सरोकारों तथा दार्शनिक दृष्टिकोण का अध्ययन किया गया है।

कुंजी शब्दरू डॉ. राजपाल, हिन्दी साहित्य, शोध, शिक्षा, व्यक्तित्व, कृतित्व, समाजसेवा।

भूमिका

किसी भी व्यक्ति का जीवन केवल उसकी व्यक्तिगत उपलब्धियों तक सीमित नहीं होता, बल्कि उसका प्रभाव समाज, संस्कृति और आने वाली पीढ़ियों तक विस्तृत होता है। विशेष रूप से शिक्षकों और साहित्यकारों का जीवन समाज को दिशा प्रदान करने का कार्य करता है। ऐसे व्यक्तित्वों के जीवन और कृतित्व का अध्ययन न केवल प्रेरणादायक होता है, बल्कि समकालीन सामाजिक एवं शैक्षिक परिदृश्य को समझने में भी सहायक सिद्ध होता है। डॉ. राजपाल उन शिक्षाविदों में से हैं जिन्होंने शिक्षा और साहित्य को समाज परिवर्तन का प्रभावी माध्यम माना है। उन्होंने अध्यापन, शोध, लेखन, अनुवाद, संपादन तथा सामाजिक गतिविधियों के माध्यम से समाज में जागरूकता एवं ज्ञान के प्रसार का कार्य किया है। उनका जीवन संघर्ष, परिश्रम, अनुशासन एवं निरंतर अध्ययन का उत्कृष्ट उदाहरण है।

1. जन्म एवं पारिवारिक पृष्ठभूमि

डॉ. राजपाल का जन्म 12 मई 1979 को हरियाणा राज्य के हिसार जनपद के उकलाना क्षेत्र के ग्राम कल्लरभैणी में एक साधारण कृषक परिवार में हुआ। उनके पिता श्री रामस्वरूप खटोड़ तथा माता श्रीमती कलावती धार्मिक एवं सामाजिक मूल्यों में विश्वास रखने वाले व्यक्ति थे। ग्रामीण परिवेश में जन्म लेने के कारण उन्हें प्रारम्भ से ही श्रम, अनुशासन और आत्मनिर्भरता के संस्कार प्राप्त हुए। किसान परिवार से संबंध होने के कारण उन्होंने जीवन की वास्तविकताओं को निकट से देखा। यही कारण है कि उनके व्यक्तित्व में सरलता, सहनशीलता एवं कर्मशीलता के गुण विशेष रूप से दिखाई देते हैं। भारतीय ग्रामीण जीवन की सामूहिकता, सहयोग की भावना तथा सामाजिक समरसता का प्रभाव उनके व्यक्तित्व पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। वे आज भी ग्रामीण संस्कृति एवं लोक जीवन के मूल्यों को अत्यंत महत्व देते हैं।

2. शैक्षिक यात्रा

डॉ. राजपाल की शैक्षिक यात्रा उनके दृढ़ संकल्प, परिश्रम एवं ज्ञान के प्रति समर्पण की प्रेरक गाथा है। ग्रामीण परिवेश से आने के बावजूद उन्होंने शिक्षा को व्यक्तित्व–विकास का सशक्त माध्यम मानते हुए निरंतर अध्ययन किया। उन्होंने बी.ए. ऑनर्स (हिन्दी), एम. ए. (हिन्दी) तथा हिन्दी साहित्य में पीएच.डी. की उपाधियाँ प्राप्त कीं। साहित्य के साथ–साथ शिक्षाशास्त्र में रुचि के कारण उन्होंने बी.एड. एवं एम.ए. एजुकेशन की शिक्षा भी अर्जित की। उनकी शैक्षिक एवं अकादमिक उपलब्धियों को सम्मान प्रदान करते हुए वर्ष 2019 में उन्हें डी.लिट्. (मानद) की उपाधि से विभूषित किया गया। उनकी यह यात्रा सतत अध्ययन, कर्मनिष्ठा और आत्मविश्वास की प्रेरणादायी मिसाल है।

3. व्यावसायिक जीवन एवं शैक्षिक योगदान

डॉ. राजपाल का व्यावसायिक जीवन शिक्षा, अध्यापन एवं शोध के प्रति उनकी प्रतिबद्धता का परिचायक है। उन्होंने वर्ष 2005 से 2008 तक हिन्दी अध्यापक के रूप में कार्य करते हुए विषयगत गहनता, सरल प्रस्तुति तथा छात्र–केंद्रित दृष्टिकोण के माध्यम से विद्यार्थियों के बौद्धिक, साहित्यिक एवं नैतिक विकास में योगदान दिया। उनका अध्यापन केवल पाठ्यक्रम की सीमाओं तक आबद्ध न रहकर विद्यार्थियों में साहित्यिक चेतना एवं आलोचनात्मक दृष्टि विकसित करने का माध्यम बना। वर्ष 2019 से वे राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हिसार में सहायक प्रोफेसर के रूप में कार्यरत हैं। शिक्षण के साथ–साथ वे शोध, संगोष्ठियों, कार्यशालाओं तथा विभिन्न अकादमिक गतिविधियों में सक्रिय सहभागिता निभाते रहे हैं। विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा एवं शोध के लिए प्रेरित करना तथा उनमें साहित्य के प्रति जिज्ञासा और आलोचनात्मक चेतना विकसित करना उनके शैक्षिक योगदान की प्रमुख विशेषताएँ हैं। डॉ. राजपाल ने उच्च शिक्षा में हिन्दी अध्ययन को प्रोत्साहित करने तथा हिन्दी ऑनर्स पाठ्यक्रम के विकास एवं विस्तार में उल्लेखनीय भूमिका निभाई है। उन्होंने विद्यार्थियों को हिन्दी साहित्य के गंभीर अध्ययन, अनुसंधान एवं आलोचनात्मक चिंतन के लिए प्रेरित किया। उनके लिए हिन्दी केवल अभिव्यक्ति का माध्यम न होकर भारतीय संस्कृति, ज्ञान–परंपरा एवं सामाजिक चेतना की संवाहक भाषा है।

4. व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषताएँ

4.1 सरलता एवं विनम्रता

डॉ. राजपाल के व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषता उनकी सरलता एवं विनम्रता है। उच्च शैक्षिक उपलब्धियों और साहित्यिक प्रतिष्ठा के बावजूद उनके व्यवहार में अहंकार अथवा आत्मप्रदर्शन का लेशमात्र भी नहीं दिखाई देता। विद्यार्थियों, सहकर्मियों एवं समाज के विभिन्न वर्गों के साथ उनका व्यवहार सदैव आत्मीय एवं सम्मानपूर्ण रहता है। भारतीय ज्ञान–परंपरा की उक्ति "विद्या ददाति विनयम्" उनके व्यक्तित्व पर पूर्णतः चरितार्थ होती है। वे ज्ञान को संवेदनशीलता, सहिष्णुता एवं मानवीयता का आधार मानते हैं। उनकी सहजता एवं आत्मीयता ही उन्हें एक लोकप्रिय शिक्षक और सम्मानित व्यक्तित्व के रूप में प्रतिष्ठित करती है।

4.2 मिलनसारिता एवं सामाजिकता

डॉ. राजपाल अत्यंत मिलनसार एवं सामाजिक प्रवृत्ति के व्यक्ति हैं। वे समाज के प्रत्येक वर्ग के लोगों के साथ आत्मीय संबंध बनाए रखने में विश्वास करते हैं। उनके लिए व्यक्ति की सामाजिक, आर्थिक अथवा शैक्षिक स्थिति से अधिक महत्व उसकी मानवीय संवेदनाओं का है। वे विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आयोजनों में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं तथा लोगों के साथ विचार–विमर्श के माध्यम से सामाजिक चेतना के विकास का प्रयास करते हैं। उनकी मिलनसारिता का प्रभाव उनके विद्यार्थियों एवं सहकर्मियों पर भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। वे सदैव सहयोगात्मक वातावरण के निर्माण में विश्वास रखते हैं तथा सामूहिक प्रयासों को व्यक्तिगत उपलब्धियों से अधिक महत्व देते हैं।

4.3 ओजस्वी वक्ता

डॉ. राजपाल एक प्रभावशाली एवं ओजस्वी वक्ता के रूप में भी प्रतिष्ठित हैं। उनके व्याख्यानों में विषय की गहराई, तार्किकता एवं प्रस्तुतीकरण की स्पष्टता देखने को मिलती है। वे जटिल विषयों को भी सरल एवं सहज भाषा में प्रस्तुत करने की क्षमता रखते हैं। राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियों, कार्यशालाओं तथा शैक्षणिक कार्यक्रमों में उनके व्याख्यानों को विशेष सराहना प्राप्त होती रही है। उनकी वक्तृत्व शैली केवल जानकारी प्रदान करने तक सीमित नहीं रहती, बल्कि श्रोताओं को चिंतन एवं मनन के लिए भी प्रेरित करती है। विद्यार्थियों के बीच उनकी लोकप्रियता का एक प्रमुख कारण उनकी प्रभावशाली अभिव्यक्ति एवं संवाद क्षमता है।

4.4 समाजसेवी एवं मानवीय दृष्टिकोण

डॉ. राजपाल का जीवन समाज सेवा एवं मानवीय मूल्यों के प्रति समर्पित रहा है। वे सदैव इस विचार के पक्षधर रहे हैं कि शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य समाज के प्रति उत्तरदायित्व की भावना विकसित करना है। इसी दृष्टिकोण के कारण वे विभिन्न सामाजिक एवं जनकल्याणकारी गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं। वे विद्यार्थियों, शोधार्थियों एवं जरूरतमंद लोगों के मार्गदर्शन एवं सहयोग के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। अनेक अवसरों पर उन्होंने व्यक्तिगत हितों से ऊपर उठकर सामाजिक सरोकारों को प्राथमिकता दी है। उनकी सहायता भावना निस्वार्थ एवं मानवीय मूल्यों पर आधारित है। यही कारण है कि वे अपने क्षेत्र में एक शिक्षक के साथ–साथ संवेदनशील समाजसेवी के रूप में भी सम्मानित हैं।

5. साहित्यिक एवं शोध योगदान

डॉ. राजपाल का साहित्यिक एवं शोध योगदान उनके बहुआयामी व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण पक्ष है। उन्होंने साहित्य, शिक्षा, समाज तथा संस्कृति से जुड़े विविध विषयों पर गंभीर अध्ययन एवं लेखन कार्य किया है। एक शोधकर्ता के रूप में उन्होंने हिन्दी साहित्य के विभिन्न आयामों का विश्लेषण करते हुए नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किए हैं। उनके शोधपत्र राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं तथा संगोष्ठियों में प्रकाशित एवं प्रस्तुत हुए हैं, जो उनकी अकादमिक सक्रियता का प्रमाण हैं। डॉ. राजपाल ने अब तक अनेक शोधपत्रों का प्रकाशन किया है तथा विभिन्न राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियों, कार्यशालाओं एवं सम्मेलनों में अपने शोधपत्र प्रस्तुत किए हैं। उनके शोध कार्यों में सामाजिक चेतना, शिक्षा, भाषा, संस्कृति, साहित्य तथा समकालीन विमर्शों से संबंधित विषयों को विशेष महत्व प्राप्त है।

(क) प्रकाशित शोध पत्र– पत्रिकाओं एवं सम्मेलन कार्यवाहियों में प्रकाशित शोध पत्ररू 23

ऽ शोध प्रकाशन (रेफरीड जर्नल लेखों के अतिरिक्त पुस्तकों/मोनोग्राफ में अध्याय)रू 10

(ख) प्रकाशित पुस्तकें पुस्तकेंरू 07

ऽ पुस्तक संपादनरू 04

ऽ पुस्तक अनुवादरू 04

ऽ पुस्तक उपसर्गरू 21

(ग) शोध मार्गदर्शन

ऽ पीएच.डी. शोध मार्गदर्शनरू 04

ऽ एम.फिल. शोध मार्गदर्शनरू 04

(घ) शोध प्रस्तुतियाँ एवं आयोजन

ऽ सम्मेलन/सेमिनार/कार्यशाला/संगोष्ठी आदि में प्रस्तुत शोध पत्ररू 50

ऽ राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन (सचिव एवं संयोजक)रू 03

ऽ सम्मेलन/सेमिनार/कार्यशाला/संगोष्ठी में व्याख्यान /अध्यक्षता सत्र देने हेतु आमंत्रितरू 04

(ङ) अन्य साहित्यिक गतिविधियाँ

ऽ पुनश्चर्या पाठ्यक्रम, कार्यप्रणाली कार्यशालाएँ, प्रशिक्षण, शिक्षण–अधिगम मूल्यांकन प्रौद्योगिकी कार्यक्रम, सॉफ्ट स्किल्स विकास कार्यक्रम, संकाय विकास कार्यक्रमः 04

ऽ रेडियो एवं टीवी कार्यक्रमः 01

ऽ मेरे द्वारा लिखे गए साहित्य पर शोधः 03

ऽ अतिथि संपादकः 02

(च) अनुवाद कार्य

डॉ. राजपाल ने चार महत्वपूर्ण पुस्तकों का अनुवाद किया हैः

1. स्वास्थ्य दर्शन (Health is Wealth)

2. अच्छे अभिभावक कैसे बने (Successful Parenting)

3. कौटिल्य अर्थशास्त्र एवं प्रबंधन विज्ञान (Kautilya Arthshastra and the Science of Management)

4. अन्य अनुवाद कार्य

इन अनुवादों के माध्यम से उन्होंने पाश्चात्य एवं प्राचीन भारतीय ज्ञान–परंपरा को हिंदी भाषी पाठकों के लिए सुलभ बनाने का सराहनीय कार्य किया है।

(छ) संपादकीय सदस्यता एवं सलाहकार पद

डॉ. राजपाल विभिन्न राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय पत्रिकाओं के सलाहकार एवं संपादकीय बोर्ड के सदस्य हैंरू

ऽ दक्ष गौरव पत्रिका, हिसार

ऽ शिक्षा शोध पत्रिका, सिरसा

ऽ पांडित्य शोध पत्रिका, नई दिल्ली

ऽ लोकल एक्सप्रेस समाचार प्त्र, उकलाना मंडी (साहित्यिक संपादक)

ऽ बोहल शोध मंजूषा (समकक्ष समीक्षित अंतर्राष्ट्रीय क्वेस्टोरी शोध पत्रिका)

ऽ इंडियन जर्नल ऑफ सोशल कंसर्न्स (अंतर्राष्ट्रीय समीक्षित पत्रिका)

ऽ डीकेआईआरई पत्रिका, डीके इंटरनेशनल रिसर्च फाउंडेशन, तमिलनाडु

ऽ शोध साड़ी (अंतर्राष्ट्रीय बहुविषयक पत्रिका, आईसीईआरटी)

6. सम्मान एवं पुरस्कार

डॉ. राजपाल को उनके उत्कृष्ट योगदान के लिए अनेक राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय सम्मानों एवं पुरस्कारों से विभूषित किया गया हैः

1. महात्मा ज्योतिबाफुले राष्ट्रीय फेलोशिप अवार्ड (2015)

2. भगवानबुद्ध राष्ट्रीय फेलोशिप अवार्ड (2016)

3. जनश्री महाराणा प्रताप फेलोशिप अवार्ड (2017)

4. मान्यवर कांशी राम राष्ट्रीय साहित्य अवार्ड (2018)

5. शिक्षक गौरव सम्मान (2020)

6. इंडियन एक्सीलेंस अवार्ड (2021)

7. अवगत अवार्ड (2021) कृ अक्षरवार्ता एवं शोध संस्थान, उज्जैन (म.प्र.)

8. इंडियन यूथ अवार्ड (2021) कृ इंटरनेशनल काउंसिल फॉर एजुकेशन, रिसर्च एण्ड ट्रेनिंग, नई दिल्ली

9. एकलव्य अवार्ड (2022) कृ इंटरनेशनल काउंसिल फॉर एजुकेशन, रिसर्च एण्ड ट्रेनिंग

10. आचार्य रवीन्द्रनाथ टैगोर साहित्य सम्मान (2022) कृ सृजन वांग्मय परिषद, भोपाल (म.प्र.)

11. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र राष्ट्रभाषा हिन्दी गौरव सम्मान (2022)

12. गीना देवी हिन्दी गौरव सम्मान (2023) – जिला अध्यक्ष, हिसार

13. यूनिवर्सल एजुकेटर्स ऑर्गनाइजेशन अवार्ड (2023)

14. ग्लोबल एजुकेटर आइकॉन अवार्ड (2023) कृ गुरु विद्यापीठ, रोहतक

15. बेस्ट रिसर्चर अवार्ड (2023) कृ इंटरनेशनल अमेरिकन काउंसिल फॉर रिसर्च एंड डेवलपमेंट

16. यूनाइटेड इंडिया नेशनल अवार्ड (2024) कृ वीवाईआईएल फाउंडेशन (भारत सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त)

17. भारत गौरव पुरस्कार (2024) कृ आरटीबीआर

18. स्टार रिकॉर्ड बुक ऑफ इंटरनेशनल (2024) कृ स्टार बुक रिकॉर्ड

19. यंग प्रोफेशनल अवार्ड (2024) कृ अफटेफ्स एंड वाइटल बायोटेक एजुकेशनल ग्रुप, कोटा

इसके अतिरिक्त उन्हें 25 से अधिक पुरस्कार, 04 प्रशंसा पत्र एवं प्रमाणपत्र प्राप्त हुए हैं। डी.लिट्. की मानद उपाधि (University of Californi, 2019) उनकी अकादमिक उपलब्धियों का प्रमाण है।

7. दार्शनिक दृष्टिकोण

डॉ. राजपाल का दार्शनिक दृष्टिकोण तर्क, विवेक, मानवीय मूल्यों एवं सामाजिक उत्तरदायित्व पर आधारित है। वे ज्ञान को मानव जीवन को सार्थक एवं उपयोगी बनाने का साधन मानते हैं। उनके विचारों में सत्य, करुणा, सहिष्णुता, समानता तथा मानवता के मूल्य प्रमुख हैं। वे शिक्षा को रोजगारोन्मुखी साधन मात्र न मानकर आलोचनात्मक चिंतन, नैतिक चेतना एवं सामाजिक जागरूकता के विकास का माध्यम स्वीकार करते हैं।

उनकी दृष्टि में सामाजिक परिवर्तन का आधार शिक्षा, विवेक एवं जागरूकता है।

8. मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण

डॉ. राजपाल का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण सकारात्मक, व्यावहारिक एवं मानवीय है। वे आत्मविश्वास, सकारात्मक चिंतन एवं आत्मानुशासन को व्यक्तित्व–विकास का आधार मानते हैं। उनके अनुसार चुनौतियाँ व्यक्ति के आत्मविकास का अवसर प्रदान करती हैं। वे विद्यार्थियों के बौद्धिक विकास के साथ उनके भावनात्मक एवं नैतिक विकास को भी आवश्यक मानते हैं। सहानुभूति, संवेदनशीलता, सहयोग एवं स्वस्थ मानवीय संबंध उनके मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के प्रमुख आधार हैं।

9. सामाजिक योगदान

डॉ. राजपाल का सामाजिक योगदान शिक्षा एवं समाज–सेवा की समन्वित चेतना से अनुप्राणित है। वे शिक्षा को सामाजिक जागरूकता एवं सकारात्मक परिवर्तन का प्रभावी माध्यम मानते हैं। शैक्षणिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों में उनकी सक्रिय सहभागिता रही है। विद्यार्थियों एवं शोधार्थियों के मार्गदर्शन के साथ वे सामाजिक जागरूकता, पर्यावरण संरक्षण तथा जनहित से जुड़े कार्यों में भी योगदान देते रहे हैं। उनकी सामाजिक दृष्टि समावेशी, संवेदनशील एवं मानवीय है, जो उनके व्यक्तित्व के सामाजिक सरोकारों को रेखांकित करती है।

निष्कर्ष

डॉ. राजपाल का जीवन एवं कृतित्व समकालीन हिन्दी जगत में संघर्ष, साधना और सृजनशीलता की प्रेरणादायी यात्रा का परिचायक है। ग्रामीण परिवेश से जीवन–यात्रा आरम्भ कर उन्होंने शिक्षा, अध्यापन, साहित्य, शोध एवं सामाजिक सरोकारों के क्षेत्र में विशिष्ट पहचान बनाई। उनकी शैक्षिक साधना, व्यावसायिक निष्ठा एवं साहित्यिक सक्रियता उनके बहुआयामी व्यक्तित्व को रेखांकित करती है। एक शिक्षक के रूप में उन्होंने विद्यार्थियों का मार्गदर्शन किया, शोधकर्ता के रूप में ज्ञान–विस्तार में योगदान दिया तथा साहित्यकार के रूप में हिन्दी साहित्य की समृद्ध परंपरा को आगे बढ़ाया। उनके व्यक्तित्व में विद्वत्ता, विनम्रता, कर्मनिष्ठा एवं मानवीय संवेदनाओं का समन्वय दृष्टिगोचर होता है। अतः डॉ. राजपाल का जीवन एवं कृतित्व निरंतर अध्ययन, साधना और सामाजिक उत्तरदायित्व की सार्थक परिणति है। उनका योगदान हिन्दी साहित्य एवं शिक्षा–जगत में प्रेरणास्पद एवं दीर्घकाल तक स्मरणीय रहेगा।

संदर्भ सूची–

1 धर्मचन्द विद्यालकारः व्यक्तित्व एवं कृतित्व; फाल्गुनी वाटिका प्रकाशन दिल्ली, 2016

2 राजपाल (डॉ)इतिहास की परिक्रमा चन्द्रमुखी प्रकाशन दिल्ली 2016

3 (सं.) राजपाल; पराक्रमी महाराजा सूरजमल; पुस्तक वाटिका दिल्ली, 2019

4) डा. राजपाल, हिंदी साहित्य को राजस्थान का योगदान साहित्य संचय दिल्ली – 2021

5 राजपाल (सं) पंजाब में भारतीय संस्कृति व संतराम बी.ए. को लेखन संदर्भ साहित्य संचय दिल्ली–2021

6 राजपाल (अनुवाद) स्वास्थ्य दर्शन (Health is wealth) चन्द्रमुखी प्रकाशन दिल्ली – 2022

7 राजपाल (अनुवादक) (successful-Parenting) अच्छे अभिभावक कैसे बने ।चंद्रमुखी प्रकाशन ,दिल्ली।

8 राजपाल (डॉ)अनुवाद, कौटिल्य अर्थशास्त्र और विज्ञान प्रबंध, Kautilya Arth shastra and the science of management, सडोरां प्रकाशन दिल्ली।

9 राजपाल(डॉ) साहित्य शोध की प्रविधियाँ ; दी रीडर्स पैराडाइस, नई दिल्ली–2023

10 राजपाल (डॉ) शोध प्रविधियाँ दो रीडर्स पैराडाइस; नई दिल्ली – 2023

11 राजपाल (डॉ) समकालीन यात्रा वृतांत में स्त्री संवेदना; चंदमुखी प्रकाशन दिल्ली–2025

प्रस्तुतकर्ता

डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद

हिन्दी विभाग राजकीय स्नातकोत्तर

महाविद्यालय, हिसार

13

भारतीय ज्ञान परंपरा का ऐतिहासिक विकासः प्राचीन भारत से समकालीन भारत तक

मुकुन्द कुमार

सारांश

भारतीय ज्ञान परंपरा विश्व की प्राचीन और निरंतर विकसित होने वाली बौद्धिक परंपराओं में से एक है। इसकी विशेषता इसकी दीर्घकालिक निरंतरता, विविधता और विभिन्न ज्ञान–विधाओं तथा सांस्कृतिक धाराओं के बीच संवाद में निहित है। भारतीय ज्ञान परंपरा केवल धार्मिक या आध्यात्मिक चिंतन तक सीमित नहीं रही, बल्कि दर्शन, गणित, खगोलशास्त्र, चिकित्सा, भाषा–विज्ञान, राजनीति, अर्थशास्त्र, साहित्य, संगीत, कला, स्थापत्य और शिक्षा जैसे क्षेत्रों में भी विकसित हुई। प्रस्तुत लेख वैदिक एवं उपनिषदिक काल से प्रारंभ होकर शास्त्रीय युग की दार्शनिक एवं वैज्ञानिक उपलब्धियों, तक्षशिला और नालंदा जैसी शिक्षा–परंपराओं, मध्यकालीन भक्ति–सूफी समन्वय, औपनिवेशिक काल के बौद्धिक पुनर्जागरण तथा स्वतंत्र भारत में आधुनिक विज्ञान और शिक्षा के विकास तक भारतीय ज्ञान परंपरा की ऐतिहासिक यात्रा का विश्लेषण करता है। अध्ययन का प्रमुख निष्कर्ष है कि भारतीय ज्ञान परंपरा स्थिर या रूढ़ प्रणाली नहीं रही, बल्कि विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक संपर्कों के माध्यम से निरंतर परिवर्तित और समृद्ध होती रही। समकालीन संदर्भ में भारतीय ज्ञान प्रणाली (IKS) का पुनर्पाठ वैज्ञानिक प्रमाण, ऐतिहासिक विवेक और बहुविषयक दृष्टिकोण के साथ किया जाना आवश्यक है।

मुख्य शब्दः भारतीय ज्ञान परंपरा, भारतीय ज्ञान प्रणाली, वैदिक साहित्य, उपनिषद, नालंदा, तक्षशिला, भक्ति आंदोलन, सूफी परंपरा, भारतीय पुनर्जागरण, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020

1. प्रस्तावना

भारतीय ज्ञान परंपरा उन दीर्घकालिक बौद्धिक परंपराओं में है, जिनका विकास अनेक ऐतिहासिक चरणों से गुजरते हुए हुआ। इसका स्वरूप केवल धर्म और अध्यात्म तक सीमित नहीं रहा; दर्शन, गणित, खगोलशास्त्र, आयुर्वेद, भाषा–विज्ञान, राजनीति, अर्थशास्त्र, साहित्य, संगीत, कला और स्थापत्य में भी इसके विविध रूप दिखाई देते हैं (मजुमदार, 1951; बाशम, 1954)। भारतीय चिंतन में ज्ञान को केवल सूचना अथवा बौद्धिक दक्षता के रूप में नहीं देखा गया, बल्कि अनुभव, आत्मबोध, नैतिकता और जीवन–व्यवहार से भी जोड़ा गया। भारतीय ज्ञान परंपरा की एक महत्वपूर्ण विशेषता इसकी समन्वयात्मक प्रकृति है। विभिन्न कालों में इसने बौद्ध, जैन, इस्लामी, फारसी तथा पश्चिमी बौद्धिक परंपराओं के साथ संवाद किया और नए ज्ञान तथा सांस्कृतिक रूपों को आत्मसात किया। इस दृष्टि से इसका इतिहास निरंतरता और परिवर्तन दोनों का इतिहास है।

2. वैदिक एवं उपनिषदिक ज्ञान परंपरा

भारतीय ज्ञान परंपरा की प्रारंभिक संरचना वैदिक साहित्य में दिखाई देती है। ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद ने धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन के साथ–साथ प्रकृति, समाज, भाषा, संगीत और जीवन–दृष्टि से संबंधित विचारों को संरक्षित किया। वैदिक ज्ञान का संरक्षण मुख्यतः श्रुति और मौखिक परंपरा के माध्यम से हुआ, जिसने ज्ञान के सूक्ष्म उच्चारण और क्रमबद्ध संप्रेषण की विकसित प्रणाली को जन्म दिया (शर्मा, 2005; थापर, 1966)।

उत्तरवैदिक काल में उपनिषदों ने भारतीय चिंतन को दार्शनिक गहराई प्रदान की। आत्मा, ब्रह्म, चेतना, अस्तित्व और ज्ञान से जुड़े प्रश्न इनके प्रमुख विषय रहे। उपनिषदिक चिंतन में ज्ञान को आत्मबोध और अस्तित्व की व्यापक समझ से जोड़ा गया (राधाकृष्णन, 1929)। इसी काल में वेदांगों के माध्यम से व्याकरण, छंद, उच्चारण, ज्योतिष और काल–गणना जैसी विधाओं का व्यवस्थित विकास हुआ।

3. शास्त्रीय कालः दर्शन, विज्ञान और ज्ञान–विस्तार

छठी शताब्दी ईसा पूर्व से लगभग बारहवीं शताब्दी तक भारतीय ज्ञान परंपरा ने दर्शन, विज्ञान, गणित, चिकित्सा और साहित्य के क्षेत्रों में उल्लेखनीय विकास किया। रामायण, महाभारत और पुराणों ने भारतीय सांस्कृतिक चेतना को प्रभावित किया, जबकि भगवद्गीता ने नैतिकता, कर्तव्य, कर्म और आध्यात्मिक चिंतन पर महत्वपूर्ण विमर्श प्रस्तुत किया (राधाकृष्णन, 1929; मजुमदार, 1951)।

भारतीय दर्शन में सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा और वेदांत सहित अनेक दार्शनिक परंपराएँ विकसित हुईं। इनके साथ बौद्ध, जैन और चार्वाक चिंतन ने ज्ञान, तर्क, नैतिकता, पदार्थ और अस्तित्व के प्रश्नों पर वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किए (हिरियन्ना, 1932; स्टीवेन्सन, 2004)। इस बहुलता ने भारतीय बौद्धिक जीवन को विमर्श और तर्क की व्यापक भूमि प्रदान की।

विज्ञान एवं गणित के क्षेत्र में आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य का योगदान विशेष उल्लेखनीय है। आर्यभट्ट ने गणित और खगोलशास्त्र में महत्वपूर्ण कार्य किया, जबकि ब्रह्मगुप्त ने गणितीय संक्रियाओं और बीजगणित के विकास में योगदान दिया। भास्कराचार्य ने गणितीय समस्याओं को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत किया (काक, 2002)। भारतीय गणितीय परंपरा में शून्य और स्थान–मूल्य पद्धति का विकास विश्व गणित के इतिहास की महत्वपूर्ण उपलब्धियों में माना जाता है।

चिकित्सा के क्षेत्र में चरक और सुश्रुत की परंपरा महत्वपूर्ण रही। चरक संहिता ने चिकित्सा एवं रोग–विज्ञान से जुड़े विचारों को व्यवस्थित किया, जबकि सुश्रुत संहिता में शल्यचिकित्सा संबंधी विस्तृत विवरण मिलता है। आयुर्वेद ने स्वास्थ्य को शरीर, आहार, जीवनशैली और पर्यावरण के संतुलन से जोड़ने वाली दृष्टि विकसित की (जॉली, 2004)।

धातुशास्त्र और स्थापत्य में भी भारतीय तकनीकी ज्ञान के प्रमाण मिलते हैं। दिल्ली का लौह स्तंभ प्राचीन भारतीय धातुकर्म के अध्ययन का उल्लेखनीय उदाहरण है (काक, 2002)। इस प्रकार भारतीय ज्ञान परंपरा में सैद्धांतिक चिंतन के साथ व्यावहारिक और तकनीकी ज्ञान का भी विकास हुआ।

4. शिक्षा और विश्वविद्यालय परंपरा

भारतीय ज्ञान परंपरा का संस्थागत विकास तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला, वल्लभी और ओदंतपुरी जैसे शिक्षा–केंद्रों में दिखाई देता है। इन संस्थानों ने विभिन्न क्षेत्रों से विद्यार्थियों और विद्वानों को आकर्षित किया तथा अध्ययन, अध्यापन और बौद्धिक विमर्श को संगठित रूप प्रदान किया (मुखर्जी, 1961; भट्टाचार्य, 2015)।

नालंदा विशेष रूप से महत्वपूर्ण था। चीनी यात्री ह्वेनसांग के विवरण से वहाँ की शिक्षा–व्यवस्था, बौद्धिक गतिविधियों और अंतरराष्ट्रीय संपर्कों की जानकारी मिलती है। नालंदा में दर्शन, बौद्ध अध्ययन, चिकित्सा, खगोलशास्त्र और अन्य विषयों का अध्ययन किया जाता था (ह्वेनसांग, 600–664; मुखर्जी, 1961)। इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा का विकास व्यापक एशियाई बौद्धिक संपर्कों से जुड़ा था।

5. मध्यकालीन भारतः भक्ति, सूफी और सांस्कृतिक समन्वय

मध्यकालीन भारत में भारतीय ज्ञान परंपरा ने नई सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के साथ संवाद स्थापित किया। भक्ति आंदोलन ने ज्ञान और आध्यात्मिक अनुभव को संस्कृत के साथ–साथ क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से व्यापक समाज तक पहुँचाया। रामानंद, कबीर, गुरु नानक, चौतन्य, तुलसीदास, मीराबाई और सूरदास जैसे संतों ने धार्मिक अनुभव, नैतिकता, सामाजिक समानता और मानवतावादी दृष्टि को जनभाषाओं में अभिव्यक्त किया (सिंह, 2003)।

सूफी परंपरा ने प्रेम, सेवा, आध्यात्मिकता और मानवीय संबंधों को महत्व दिया। मोइनुद्दीन चिश्ती, निजामुद्दीन औलिया और अमीर खुसरो जैसे व्यक्तित्व भारतीय सांस्कृतिक इतिहास में अंतर्सांस्कृतिक संवाद के महत्वपूर्ण उदाहरण हैं (आलम, 2004; रिचड्र्स, 1993)। अमीर खुसरो की साहित्यिक और संगीत संबंधी गतिविधियों ने भारतीय तथा फारसी सांस्कृतिक परंपराओं के बीच संवाद को सुदृढ़ किया।

कबीर और अन्य संतों की वाणी ने सामाजिक विभाजन, जातिगत भेदभाव और धार्मिक कट्टरता पर प्रश्न उठाए। इस प्रकार मध्यकालीन ज्ञान परंपरा में लोकभाषा, सामाजिक चेतना और सांस्कृतिक समन्वय के नए आयाम जुड़े।

6. औपनिवेशिक काल और भारतीय बौद्धिक पुनर्जागरण

औपनिवेशिक काल भारतीय ज्ञान परंपरा के लिए चुनौती और पुनर्व्याख्या का दौर था। यूरोपीय विद्वानों ने संस्कृत, भारतीय दर्शन, साहित्य और इतिहास का अध्ययन किया। विलियम जोन्स, एच.टी. कोलब्रुक, मैक्स मूलर और एच.एच. विल्सन जैसे विद्वानों के कार्यों ने भारतीय ग्रंथों को वैश्विक अकादमिक विमर्श में स्थान दिया, यद्यपि उनके अध्ययन को औपनिवेशिक संदर्भ और उस समय की बौद्धिक सीमाओं के भीतर समझना आवश्यक है (जोन्स, 1790; मैक्स मूलर, 1859)।

इसी अवधि में भारतीय समाज के भीतर भी बौद्धिक पुनर्जागरण हुआ। राजा राममोहन राय ने सामाजिक सुधार और आधुनिक शिक्षा का समर्थन किया। स्वामी दयानंद सरस्वती ने वैदिक परंपरा की पुनर्व्याख्या की। स्वामी विवेकानंद ने वेदांत और भारतीय आध्यात्मिक चिंतन को वैश्विक मंच पर प्रस्तुत किया। श्री अरविंद ने भारतीय दर्शन और राष्ट्रवाद को जोड़ा, जबकि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने विश्वभारती के माध्यम से भारतीय और वैश्विक ज्ञान परंपराओं के बीच संवाद का प्रयास किया। महात्मा गांधी ने स्वराज, नैतिकता, ग्राम–आधारित जीवन और आत्मनिर्भरता को अपने चिंतन का आधार बनाया (सिंह, 2005; राधाकृष्णन, 1929)।

इस काल में आधुनिक शिक्षण संस्थानों का भी विस्तार हुआ। हिंदू कॉलेज, कलकत्ता विश्वविद्यालय, बंबई विश्वविद्यालय, मद्रास विश्वविद्यालय और बनारस हिंदू विश्वविद्यालय जैसी संस्थाओं ने आधुनिक शिक्षा और भारतीय बौद्धिक परंपराओं के बीच नए संबंधों की संभावनाएँ विकसित कीं (चौटर्जी, 1912; सिंह, 2005)।

7. स्वतंत्रता के बादः आधुनिक विज्ञान और भारतीय ज्ञान

स्वतंत्रता के बाद भारत ने आधुनिक विज्ञान, प्रौद्योगिकी और उच्च शिक्षा के संस्थागत विस्तार को प्राथमिकता दी। भारतीय विज्ञान संस्थान, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, भारतीय प्रबंधन संस्थान, अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान और भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन जैसी संस्थाओं ने आधुनिक ज्ञान–विज्ञान के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस प्रक्रिया ने यह स्पष्ट किया कि भारतीय बौद्धिक विरासत और आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण को परस्पर विरोधी मानना आवश्यक नहीं है।

भारत की वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगतिकृअंतरिक्ष अनुसंधान, परमाणु ऊर्जा, सूचना प्रौद्योगिकी और जैव–प्रौद्योगिकी सहितकृआधुनिक ज्ञान–व्यवस्था के निर्माण का हिस्सा है। भारतीय ज्ञान परंपरा का समकालीन पुनर्पाठ आधुनिक विज्ञान के साथ संवाद और अंतरविषयक अनुसंधान के माध्यम से अधिक सार्थक बनाया जा सकता है।

8. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और भारतीय ज्ञान प्रणाली

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारतीय ज्ञान, भाषाओं, संस्कृति और परंपराओं को शिक्षा की व्यापक संरचना से जोड़ने पर बल देती है। नीति शिक्षा को भारतीय सांस्कृतिक एवं ज्ञान परंपराओं से जुड़ा हुआ रखते हुए एक समावेशी और वैश्विक ज्ञान–समाज के निर्माण की कल्पना करती है (भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय, 2020)। नीति में प्राचीन भारतीय ज्ञान, तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला और वल्लभी जैसी संस्थागत परंपराओं तथा भारतीय भाषाओं और ज्ञान–विधाओं के महत्व को रेखांकित किया गया है।

प्श्नै को उच्च शिक्षा में प्रभावी बनाने के लिए केवल पाठ्यक्रम में विषय जोड़ना पर्याप्त नहीं होगा। इसके लिए मूल ग्रंथों का आलोचनात्मक संपादन, भारतीय भाषाओं में अनुवाद, पांडुलिपियों का डिजिटलीकरण, तुलनात्मक अध्ययन और प्रमाण–आधारित अनुसंधान आवश्यक है। इससे भारतीय ज्ञान परंपरा का अध्ययन भावनात्मक दावों से आगे बढ़कर अकादमिक अनुशासन का रूप ग्रहण कर सकेगा।

9. वैश्विक प्रसार और समकालीन चुनौतियाँ

समकालीन समय में योग, आयुर्वेद, भारतीय दर्शन और संस्कृत सहित अनेक भारतीय ज्ञान–विधाओं में वैश्विक रुचि बढ़ी है। UNESCO ने योग को 2016 में मानवता की अमूर्त सांस्कृतिक विरासत की प्रतिनिधि सूची में शामिल किया, जिससे इसकी सांस्कृतिक और पारंपरिक ज्ञान–प्रणाली के अंतरराष्ट्रीय महत्व को मान्यता मिली (UNESCO, 2016)।

इसके बावजूद भारतीय ज्ञान प्रणाली के समक्ष कई चुनौतियाँ हैं। अनेक पांडुलिपियों और मौखिक ज्ञान परंपराओं का संरक्षण अभी भी अधूरा है। भारतीय भाषाओं में उच्च स्तरीय शोध और मूल स्रोतों तक विद्यार्थियों की पहुँच बढ़ाने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त प्श्नै के अध्ययन में दो अतियों से बचना आवश्यक है–अप्रमाणित दावों के आधार पर अतीत का महिमामंडन तथा पूर्वाग्रह के कारण भारतीय ज्ञान को अप्रासंगिक मान लेना।

अतः IKS के अध्ययन में ऐतिहासिक स्रोत, पाठालोचन, पुरातात्त्विक साक्ष्य, तुलनात्मक अध्ययन और आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति को आधार बनाया जाना चाहिए। इससे परंपरा के वास्तविक योगदान और उसकी ऐतिहासिक सीमाओं दोनों को समझना संभव होगा।

10. भारतीय ज्ञान प्रणाली की समकालीन प्रासंगिकता

भारतीय ज्ञान प्रणाली का महत्व केवल सांस्कृतिक पहचान तक सीमित नहीं है। पारंपरिक कृषि, जल–संरक्षण, स्थानीय संसाधन प्रबंधन, पर्यावरणीय चेतना, योग, स्वास्थ्य–परंपराएँ, लोककला और समुदाय–आधारित ज्ञान आज सतत विकास के संदर्भ में नए अध्ययन की संभावना प्रस्तुत करते हैं। इसी प्रकार भारतीय गणित, दर्शन, भाषा–विज्ञान, शिक्षा–पद्धति और राजनीतिक चिंतन पर अंतरविषयक शोध आधुनिक ज्ञान के विस्तार में योगदान कर सकता है।

IKS की वास्तविक शक्ति तभी सामने आएगी जब इसे अतीत की गौरव–कथा के रूप में प्रस्तुत करने के बजाय एक ऐतिहासिक ज्ञान–संपदा के रूप में समझा जाए, जिसका आलोचनात्मक परीक्षण और समकालीन संदर्भ में पुनर्पाठ किया जा सके। इस दृष्टिकोण से परंपरा और आधुनिकता के बीच संघर्ष के बजाय संवाद की संभावना उत्पन्न होती है।

11. निष्कर्ष एवं सुझाव

भारतीय ज्ञान परंपरा का ऐतिहासिक विकास निरंतरता और परिवर्तन की संयुक्त प्रक्रिया रहा है। वैदिक और उपनिषदिक चिंतन से लेकर शास्त्रीय दर्शन एवं विज्ञान, नालंदा और तक्षशिला की शिक्षा–परंपरा, मध्यकालीन भक्ति–सूफी समन्वय, औपनिवेशिक पुनर्जागरण और स्वतंत्र भारत के आधुनिक वैज्ञानिक विकास तक इसकी यात्रा अनेक स्तरों पर परिवर्तनशील रही है (थापर, 1966; राधाकृष्णन, 1929)।

इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा को किसी एक धार्मिक, भाषाई या ऐतिहासिक काल तक सीमित करना उचित नहीं होगा। इसकी व्यापकता दर्शन, गणित, खगोलशास्त्र, चिकित्सा, भाषा, कला, साहित्य, राजनीति और शिक्षा तक फैली हुई है। इसकी दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता इसकी संवादात्मक और अनुकूलनशील प्रकृति है, जिसने विभिन्न सांस्कृतिक संपर्कों के बीच नए ज्ञान और अभिव्यक्ति के रूपों को जन्म दिया।

अतः भारतीय ज्ञान प्रणाली को पुनर्जीवित करने का अर्थ अतीत को वर्तमान पर आरोपित करना नहीं, बल्कि उपलब्ध स्रोतों का आलोचनात्मक अध्ययन करके उनके प्रासंगिक तत्वों को वर्तमान आवश्यकताओं से जोड़ना है। इसके लिए प्राचीन ग्रंथों का वैज्ञानिक संपादन और डिजिटलीकरण, भारतीय भाषाओं

में शोध को प्रोत्साहन, पांडुलिपियों का संरक्षण, विश्वविद्यालयों में प्ज्ञै आधारित अंतरविषयक शोध तथा अंतरराष्ट्रीय अकादमिक सहयोग आवश्यक है। आधुनिक विज्ञान और पारंपरिक ज्ञान के बीच संवाद भी इसी प्रक्रिया का महत्वपूर्ण हिस्सा होना चाहिए।

शिक्षा के क्षेत्र में प्ज्ञै को इतिहास, दर्शन, विज्ञान, अर्थशास्त्र, पर्यावरण, साहित्य और संस्कृति जैसे विषयों के साथ अंतर्विषयक रूप से जोड़ा जाना चाहिए। भारतीय भाषाओं में मूल स्रोतों और उच्च स्तरीय शोध–सामग्री की उपलब्धता बढ़ाई जानी चाहिए। साथ ही, प्ज्ञै के प्रत्येक दावे का मूल्यांकन प्रमाण, तर्क और वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर किया जाना चाहिए।

इस प्रकार भारतीय ज्ञान प्रणाली को केवल अतीत की विरासत के रूप में संरक्षित करने के बजाय भविष्य के ज्ञान–समाज के लिए सक्रिय बौद्धिक संसाधन बनाया जा सकता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने इस दिशा में एक महत्वपूर्ण नीतिगत आधार उपलब्ध कराया है (भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय, 2020)। यदि इसे प्रमाण–आधारित अनुसंधान, बहुविषयक अध्ययन और भारतीय भाषाओं के सशक्तीकरण से जोड़ा जाए, तो भारतीय ज्ञान परंपरा समकालीन भारत की शैक्षिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक आवश्यकताओं की पूर्ति में अधिक प्रभावी भूमिका निभा सकती है। जैसा कि स्वामी विवेकानंद के 1893 के शिकागो भाषण ने भारतीय चिंतन की सार्वभौमिकता और सहिष्णुता को वैश्विक मंच पर प्रस्तुत किया था, भारतीय ज्ञान परंपरा का समकालीन पुनर्पाठ भी संकीर्णता के बजाय संवाद, विविधता और मानवकल्याण पर केंद्रित होना चाहिए (विवेकानंद, 1893)। इसी दृष्टि से प्ज्ञै अतीत की स्मृति मात्र नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के बीच एक सार्थक बौद्धिक सेतु बन सकती है।

संदर्भ सूची

आलम, एम. (2004). भारत में सूफीवाद एवं सांस्कृतिक समन्वय. नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन।

बाशम, ए. एल. (1954). The Wonder That Was India- London: Sidgwick & Jackson-

भट्टाचार्य, एन. (2015). भारतीय विश्वविद्यालय परंपरा. पटनाः बिहार हेरिटेज प्रेस।

चौटर्जी, एस. (1912). भारतीय पुनर्जागरण का इतिहास. कलकत्ताः University of Calcutta Press।

जॉली, के. (2004). आयुर्वेदः भारतीय चिकित्सा का इतिहास. नई दिल्लीः सत्यम पब्लिशर्स।

जोन्स, डब्ल्यू. (1790). Asiatic Researches- Calcutta: Asiatic Society-

काक, एस. (2002). भारतीय गणित एवं खगोलशास्त्र. नई दिल्ली।

मुखर्जी, आर. (1961). नालंदारू विश्वविद्यालय एवं मठ. पटनारू बिहार सरकार।

मजुमदार, आर. सी. (1951). भारतीय सभ्यता का इतिहास. कलकत्ता: University of Calcutta PressA

मैक्स मूलर, एफ. (1859). Rig&Veda&Samhita- London: W- H- Allen@related scholarly editions-

राधाकृष्णन, एस. (1929). Indian Philosophy- London: George Allen & Unwin-

रिचड्र्स, जे. एफ. (1993). The Mughal Empire- Cambridge: Cambridge University Press-

शर्मा, आर. एस. (2005). वैदिक साहित्य एवं संस्कृति. नई दिल्लीरू मोतीलाल बनारसीदास।

सिंह, आर. (2005). भारतीय पुनर्जागरण एवं स्वतंत्रता संग्राम. नई दिल्लीरू राजकमल प्रकाशन।

सिंह, वी. (2003). भक्ति आंदोलनरू इतिहास एवं विरासत. पटनारू बिहार हेरिटेज प्रेस।

स्टीवेन्सन, एल. (2004). बौद्ध दर्शन का इतिहास. नई दिल्लीरू मोतीलाल बनारसीदास।

थापर, आर. (1966). । History of India] Vol- 1- London: Penguin@related editions-

हिरियन्ना, एम. (1932). Outlines of Indian Philosophy- London: George Allen & Unwin-

भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय. (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020. नई दिल्लीः भारत सरकार।

UNESCO- (2016). Yoga: Representative List of the Intangible Cultural Heritage of Humanity- Paris: UNESCO-

विवेकानंद, एस. (1893). शिकागो भाषण. Parliament of the World's Religions] Chicago-

ह्वेनसांग. (600–664). Records of the Western World (vuqokn: Samuel Beal)-

मुकुन्द कुमार

सहायक प्राध्यापक,

इतिहास विभाग, टी० पी० एस० कॉलेज,

पटना, बिहार.

14

डिजिटल युग में बाल सुरक्षा एवं अधिकारः परिवार की बदलती जिम्मेदारियाँ और नई चुनौतियाँ

डॉ० कुमारी निभा

सारांश

डिजिटल तकनीक ने बच्चों के जीवन, शिक्षा, मनोरंजन, सामाजिक संबंधों और अभिव्यक्ति के अवसरों को व्यापक रूप से बदल दिया है। स्मार्टफोन, इंटरनेट, सोशल मीडिया, ऑनलाइन गेमिंग, डिजिटल शिक्षा तथा कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) आज बच्चों के दैनिक जीवन का हिस्सा बन चुके हैं। डिजिटल माध्यम बच्चों को ज्ञान, रचनात्मकता और सामाजिक सहभागिता के नए अवसर प्रदान करते हैं, किंतु इनके साथ साइबर बुलिंग, ऑनलाइन शोषण, साइबर ग्रूमिंग, अनुचित सामग्री, गोपनीयता का उल्लंघन, पहचान की चोरी, डिजिटल लत, भ्रामक सूचना और मानसिक स्वास्थ्य से जुड़ी चुनौतियाँ भी बढ़ी हैं। संयुक्त राष्ट्र बाल अधिकार समिति ने General Comment No- 25 (2021) के माध्यम से स्पष्ट किया है कि बच्चों के अधिकार डिजिटल वातावरण में भी उतने ही लागू होते हैं जितने ऑफलाइन जीवन में।

भारत में डिजिटल विस्तार के साथ बच्चों की ऑनलाइन सुरक्षा का प्रश्न विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो गया है। न्छप्ब्थ प्दकपं ने भी डिजिटल दुनिया को बच्चों के लिए सीखने और सहभागिता का महत्वपूर्ण माध्यम मानते हुए सुरक्षित एवं जिम्मेदार डिजिटल उपयोग की आवश्यकता पर बल दिया है। (न्छप्ब्थ) ऐसे वातावरण में परिवार की भूमिका केवल बच्चों के इंटरनेट उपयोग पर नियंत्रण रखने तक सीमित नहीं रह सकती। माता–पिता को डिजिटल साक्षरता, संवाद, गोपनीयता, साइबर सुरक्षा, मानसिक स्वास्थ्य और जिम्मेदार डिजिटल व्यवहार के संबंध में बच्चों के मार्गदर्शक, सहायक और संरक्षक की भूमिका निभानी होगी। प्रस्तुत लेख बाल अधिकारों के डिजिटल आयाम, उभरती चुनौतियों और परिवार की बदलती जिम्मेदारियों का विश्लेषण करता है तथा सुरक्षित, समावेशी और बाल–केंद्रित डिजिटल वातावरण के निर्माण के लिए आवश्यक उपाय प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्दः बाल अधिकार, डिजिटल सुरक्षा, साइबर बुलिंग, डिजिटल साक्षरता, परिवार, ऑनलाइन शोषण, बाल संरक्षण, सोशल मीडिया, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, डिजिटल गोपनीयता

---

१. प्रस्तावनाः डिजिटल क्रांति और बालपन का नया परिदृश्य

इक्कीसवीं सदी को केवल सूचना क्रांति का युग नहीं, बल्कि डिजिटल परिवर्तन (क्पहपजंस ज्तंदेवितउंजपवद) का युग कहा जाता है। पिछले दो दशकों में इंटरनेट, स्मार्टफोन, सोशल मीडिया और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) ने मानव जीवन के हर आयाम को मौलिक रूप से पुनर्परिभाषित किया है। इस परिवर्तन का सबसे गहरा प्रभाव बच्चों पर पड़ा है, क्योंकि आज की पीढ़ी डिजिटल नेटिव (Digital Natives) हैकृये बच्चे उस दुनिया में जन्मे और पले–बढ़े हैं जहाँ डिजिटल उपकरण हवा और पानी की तरह सहज उपलब्ध हैं।

वर्ष २०२० में आई कोविड–१९ महामारी ने इस प्रक्रिया को और तीव्र कर दिया। जब विद्यालय बंद हुए, तब ऑनलाइन शिक्षा ही एकमात्र विकल्प बन गई, जिसने अनिच्छुक अभिभावकों को भी बच्चों को डिजिटल उपकरण सौंपने के लिए विवश कर दिया (न्छप्ब्थ प्दकपं, 2020)। डिजिटल माध्यम अब बच्चों के लिए शिक्षा, मनोरंजन, सामाजिक संपर्क और आत्म–अभिव्यक्ति का केंद्र बन चुका है।

हालाँकि, यह सिक्का दो पहलू वाला है। जहाँ एक ओर यह तकनीक बच्चों को ज्ञान, रचनात्मकता और वैश्विक सहभागिता के अभूतपूर्व अवसर प्रदान करती है, वहीं दूसरी ओर यह साइबर बुलिंग, ऑनलाइन शोषण, गोपनीयता के उल्लंघन, डिजिटल लत और भ्रामक सूचना जैसे गंभीर खतरों का द्वार भी खोलती है। इस गंभीर संदर्भ को ध्यान में रखते हुए, संयुक्त राष्ट्र बाल अधिकार समिति (Committee on the Rights of the Child) ने वर्ष २०२१ में सामान्य टिप्पणी क्रमांक २५ (General Comment No- 25) जारी की, जिसमें यह ऐतिहासिक स्पष्टीकरण दिया गया कि बाल अधिकारों का कोई भी पहलूकृचाहे वह शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा या सहभागिता होकृडिजिटल वातावरण में भी उतनी ही पूर्णता से लागू होता है, जितना भौतिक संसार में (Committee on the Rights of the Child, 2021)।

भारत, जहाँ इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या दुनिया में दूसरे स्थान पर है, वहाँ बाल सुरक्षा का प्रश्न और भी जटिल हो जाता है। न्छप्ब्थ (२०२५) ने अपनी वैश्विक रिपोर्ट 'Childhood in a Digital World' में स्पष्ट किया है कि समाधान बच्चों को डिजिटल दुनिया से अलग करना नहीं, बल्कि उन्हें सुरक्षित, सक्षम और जिम्मेदार डिजिटल उपयोगकर्ता बनाने के लिए सशक्त बनाना (Empowerment) है (UNICEF, 2025)। इस परिवर्तन में परिवार की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण हो जाती है, जिसे अब केवल नियंत्रक (Controller) नहीं, बल्कि मार्गदर्शक (Guide), संवाद–सहयोगी (Dialoguer) और भावनात्मक सुरक्षा–प्रदाता (Emotional Safeguarder) की भूमिका निभानी पड़ती है।

२. बाल अधिकारों का डिजिटल आयामः अवसर, समानता और असमानता

बाल अधिकारों की मूल अवधारणा (न्छब्ब्, 1989) में जीवन, विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा, गरिमा, अभिव्यक्ति और सहभागिता शामिल हैं। डिजिटल युग ने इन अधिकारों को एक नया आयाम दिया है, जिसे तीन स्तंभों में समझा जा सकता हैरू

(क) शिक्षा और सूचना तक पहुँच का अधिकार दृ डिजिटल माध्यम ने शिक्षा को चारदीवारी से मुक्त कर दिया है। ऑनलाइन पाठ्यक्रम,

डिजिटल पुस्तकालय, शैक्षिक ल्वनज्नइम चौनल और ई–लर्निंग ऐप्स (जैसे DIKSHA, Byju's) ने बच्चों को भौगोलिक सीमाओं से परे ज्ञान प्राप्त करने का अवसर दिया है। विशेष आवश्यकता वाले दिव्यांग बच्चों के लिए स्क्रीन–रीडर, वॉयस–टू–टेक्स्ट और अन्य सहायक तकनीकों (Assistive Technologies) ने संचार और अधिगम के नए द्वार खोले हैं (UNICEF India, 2019)।

(ख) अभिव्यक्ति, रचनात्मकता और सहभागिता का अधिकार – बच्चे अब डिजिटल प्लेटफॉर्म (जैसे इंस्टाग्राम, यूट्यूब, क्रिएटिव कम्युनिटी) के माध्यम से अपनी कला, संगीत, लेखन और विचारों को वैश्विक मंच पर प्रदर्शित कर सकते हैं। वे ऑनलाइन बहस, मतदान और सामुदायिक परियोजनाओं में भाग लेकर अपनी आवाज़ बुलंद कर सकते हैं।

(ग) डिजिटल सुरक्षा और गोपनीयता का अधिकार – यह आयाम सबसे नाजुक है। जहाँ अवसर बढ़े हैं, वहीं डेटा का दुरुपयोग, पहचान की चोरी और शोषण के जोखिम भी बढ़े हैं। General Comment No- 25 (2021) ने राज्यों पर यह दायित्व डाला है कि वे सुनिश्चित करें कि सभी बच्चों को डिजिटल सेवाओं तक समान, सुरक्षित और सस्ती पहुँच मिले (uhr.humanrights.go.kr)।

हालाँकि, वास्तविकता यह है कि डिजिटल विभाजन (Digital Divide) एक गंभीर बाधा है। शहरी–ग्रामीण अंतर, उच्च–निम्न आय वर्ग, तथा लड़के–लड़कियों के बीच इंटरनेट पहुँच और डिजिटल कौशल में भारी असमानता है। UNICEF India (२०२६) ने अपनी हालिया मार्गदर्शिका में ASER २०२४ के आंकड़ों का हवाला देते हुए चेतावनी दी है कि डिजिटल बहिष्कार (Digital E•clusion) मौजूदा सामाजिक असमानताओं को और गहरा करता है, जिससे वंचित बच्चे न केवल शिक्षा से, बल्कि डिजिटल सुरक्षा की जानकारी से भी वंचित रह जाते हैं (UNICEF India – UNESCO, 2026)। अतः डिजिटल युग में बाल अधिकारों का अर्थ केवल कनेक्टिविटी नहीं, बल्कि सार्थक कनेक्टिविटी (Meaningful Connectivity) और समावेशी डिजिटल साक्षरता है।

३. डिजिटल वातावरण में बच्चों के सामने उभरती प्रमुख चुनौतियाँ (विस्तृत विश्लेषण)

यह लेख का केंद्रीय हिस्सा है, क्योंकि सुरक्षा रणनीति बनाने के लिए इन खतरों की गहराई को समझना अनिवार्य है।

३.१ साइबर बुलिंग (Cyber bullying) – यह डिजिटल युग की सबसे व्यापक और कपटी समस्या है। इसमें अपमानजनक संदेश, फर्जी अफवाहें, सार्वजनिक उपहास, तथा सोशल मीडिया पर जानबूझकर सामाजिक बहिष्कार (Social E•clusion) शामिल हैं। पारंपरिक बुलिंग के विपरीत, साइबर बुलिंग का कोई समय–सीमा (Time-bound) नहीं होता; अपमानजनक सामग्री २४•७ ऑनलाइन बनी रहती है और वायरल हो सकती है। इसका बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव पड़ता हैकृअवसाद, आत्महत्या के विचार, स्कूल छोड़ना और सामाजिक अलगाव इसके सामान्य परिणाम हैं (UNICEF India, 2023)। भारतीय साइबर कानूनों (सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, २०००) में इसके लिए दंडात्मक प्रावधान हैं, परंतु सबसे बड़ी चुनौती पीड़ित बच्चे की चुप्पी है, क्योंकि उसे डर होता है कि मोबाइल छीन लिया जाएगा या उसे डाँट पड़ेगी।

३.२ साइबर ग्रूमिंग और ऑनलाइन यौन शोषण (Cyber Grooming & Online Se•ual E•ploitation) – यह सबसे खतरनाक और हिंसक अपराध है। ग्रूमिंग एक चरणबद्ध मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसमें अपराधी (अक्सर नकली पहचान के साथ) सोशल मीडिया, गेमिंग चौट या मैसेजिंग ऐप्स के माध्यम से बच्चे की भावनात्मक ज़रूरतों (जैसे ध्यान, स्नेह, प्रशंसा) को समझकर उसका विश्वास जीतता है, फिर धीरे–धीरे उसे अलग–थलग करता है और अंततः यौन शोषण, ब्लैकमेल या मानव तस्करी तक पहुँचता है। इस संबंध में भारत का राष्ट्रीय साइबर अपराध रिपोर्टिंग पोर्टल (National Cyber Crime Reporting Portal) एक महत्वपूर्ण तंत्र है, जिसमें श्महिला और बाल–संबंधी साइबर अपराधश (Cyber Crime against Women & Children) के लिए समर्पित रिपोर्टिंग विकल्प है, जहाँ पीड़ित गुमनाम शिकायत भी दर्ज कर सकता है (Government of India, n-d-)।

३.३ अनुचित एवं हानिकारक सामग्री (Inappropriate & Harmful Content)–एल्गोरिदम–संचालित (Algorithm–driven) प्लेटफॉर्म अक्सर बच्चों को हिंसा, घृणा, अश्लीलता, नशीले पदार्थों या आत्म–हानि को बढ़ावा देने वाली सामग्री दिखा देते हैं। छोटे बच्चों में वास्तविकता और डिजिटल कल्पना के बीच अंतर करने की क्षमता अविकसित होती है, जिससे उनके नैतिक विकास, भय और आक्रामक व्यवहार पर प्रतिकूल असर पड़ता है।

३.४ गोपनीयता का उल्लंघन और डेटा का व्यावसायिक शोषण दृ बच्चे अनजाने में अपना नाम, फोटो, विद्यालय, स्थान और फोन नंबर सार्वजनिक कर देते हैं। इसे ध्यान में रखते हुए, भारत सरकार द्वारा अधिनियमित डिजिटल व्यक्तिगत डेटा संरक्षण अधिनियम, २०२३ (DPDP Act, 2023) एक युगांतरकारी कदम है। इसकी धारा ६ स्पष्ट करती है कि किसी भी डेटा प्रोसेसर को बच्चों का व्यक्तिगत डेटा तभी प्रोसेस करना होगा जब उसके पास सत्यापन योग्य अभिभावकीय सहमति (Verifiable Parental

Consent) हो। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि इस अधिनियम में बच्चों की ट्रैकिंग, व्यवहार–निगरानी (Behavioral Monitoring) और लक्षित विज्ञापन (Targeted Advertising) पर पूर्ण प्रतिबंध लगाया गया है, ताकि बच्चों के ऑनलाइन व्यवहार का उपयोग करके उन्हें व्यावसायिक रूप से हेरफेर न किया जा सके (Government of India, 2023)।

३.५ डिजिटल लत और स्क्रीन–निर्भरता (क्पहपजंस ।ककपबजपवद) दृ अत्यधिक स्क्रीन टाइम (विशेषकर सोशल मीडिया और गेमिंग) बच्चों के प्रीफ्रंटल कॉर्टेक्स (Pre–frontal Corte•कृजो निर्णय लेने और आवेग नियंत्रण के लिए जिम्मेदार है) के विकास को नुकसान पहुँचाता है। इससे नींद में कमी, मोटापा, एकाग्रता में कमी और पारिवारिक संवाद का ह्रास होता है। न्छप्ब्थ (२०२५) ने अपनी समीक्षा में रेखांकित किया है कि स्क्रीन समय अपने आप में बुरा नहीं है, लेकिन निष्क्रिय उपभोग (Passive Consumption) और सामाजिक तुलना (Social Comparison) मानसिक स्वास्थ्य पर सबसे अधिक नकारात्मक प्रभाव डालते हैं (UNICEF, 2025)।

३.६ कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) और गलत सूचना (Misinformation) का नया खतरा – जनरेटिव AI (जैसे चौटजीपीटी, डीपफेक) ने बच्चों के सामने अभूतपूर्व जोखिम उत्पन्न किए हैं। AI द्वारा निर्मित डीपफेक वीडियो और फर्जी समाचार बच्चों को गुमराह कर सकते हैं। इसके अलावा, AI–संचालित चौटबॉट्स बच्चों के साथ भावनात्मक संबंध बना सकते हैं, जिससे वास्तविक दुनिया के रिश्तों में अलगाव पैदा हो सकता है। UNICEF India (२०२६) ने अपनी 'Responsible AI for Children' रिपोर्ट में सरकारों और तकनीकी कंपनियों से आग्रह किया है कि सभी ।प् प्रणालियों में मानवीय निगरानी (Human–in–the–loop), पारदर्शिता और बाल–केंद्रित डिज़ाइन (Child–centric Design) अनिवार्य बनाया जाए, ताकि AI बच्चों के लिए खतरा न बने, बल्कि अवसर बने (UNICEF India, 2026)।

४. परिवार की बदलती भूमिकाः नियंत्रण से मार्गदर्शन की ओर (व्यावहारिक दृष्टिकोण)

पुराने जमाने में माता–पिता यह कहकर अपनी जिम्मेदारी पूरी कर लेते थे कि टीवी मत देखो या ष्फोन मत चलाओ। आज यह दृष्टिकोण पूर्णतः अप्रभावी और अव्यावहारिक है। डिजिटल युग में पालन–पोषण (Digital Parenting) के लिए एक नए दार्शनिक बदलाव की आवश्यकता है–प्रतिबंध (Restriction) से योग्यता–निर्माण (Capacity Building) की ओर।

४.१ डिजिटल साक्षर अभिभावक (Digitally Literate Parents) – माता–पिता को स्वयं प्राइवेसी सेटिंग्स, पैरेंटल कंट्रोल्स, रिपोर्टिंग टूल्स और ऑनलाइन धोखाधड़ी की जानकारी होनी चाहिए। UNICEF (२०२३) के अनुसार, यदि माता–पिता डिजिटल रूप से अनभिज्ञ हैं, तो वे बच्चों को साइबर जोखिमों से नहीं बचा सकते, क्योंकि बच्चे हमेशा अपने माता–पिता से अधिक तकनीक–प्रवीण (Tech–savvy) होते हैं और गलतियाँ छिपाते हैं (UNICEF India, 2023)।

४.२ खुला, भय–मुक्त संवाद (Fear–free Communication) – यह डिजिटल सुरक्षा का सबसे मजबूत कवच है। परिवार में ऐसा सुरक्षित वातावरण होना चाहिए जहाँ बच्चा बिना झिझक और बिना डाँट–डपट के किसी भी असहज ऑनलाइन अनुभव (जैसे अजनबी संदेश, अश्लील लिंक, या धमकी) को साझा कर सके। संयुक्त राष्ट्र बाल अधिकार समिति (२०२१) ने विकसित होती क्षमताओं (Evolving Capacities) के सिद्धांत पर जोर देते हुए कहा है कि बच्चों की राय सुनी जानी चाहिए और उन्हें निर्णय लेने की प्रक्रिया में शामिल किया जाना चाहिए, क्योंकि इससे उनमें आत्म–विश्वास और जिम्मेदारी की भावना विकसित होती है।

व्यावहारिक प्रश्न जो अभिभावकों को नियमित रूप से पूछने चाहिए–

- आज तुमने ऑनलाइन क्या नया सीखा?
- क्या कोई ऐसा वीडियो या संदेश आया जिससे तुम असहज महसूस करो?
- क्या कोई नया ऑनलाइन मित्र बना है? उसके बारे में मुझे बताओ।

४.३ आयु–अनुकूल पारिवारिक डिजिटल नियम (Age–Appropriate Family Rules) – नियम प्रतिबंधात्मक न होकर संरक्षणात्मक होने चाहिए, जैसा–

- भोजन और सोने के समय स्क्रीन–फ्री ज़ोन बनाएँ।
- कभी भी पासवर्ड या OTP किसी को साझा न करें।
- किसी भी अनजान मित्रश ैजतंदहमत) की मित्रता–अनुरोध को स्वीकार न करें।
- किसी भी प्रकार की निजी तस्वीर या वीडियो सार्वजनिक डोमेन में पोस्ट करने से पहले माता–पिता से परामर्श करें (UNICEF India, 2020)।

४.४ नियंत्रण बनाम स्वायत्तता का नाजुक संतुलन – क्या माता–पिता को बच्चे का हर संदेश पढ़ना चाहिए? इसका उत्तर श्नहींश है। अत्यधिक निगरानी (स्पाइवेयर या कड़ी जासूसी) बच्चों में अविश्वास, विद्रोह और गोपनीयता का उल्लंघन की भावना पैदा करती है। दूसरी ओर, पूर्ण स्वतंत्रता (खासकर १२ साल से कम उम्र में) अत्यंत खतरनाक है। समाधान है श्साझी जिम्मेदारीश ैंतमक त्मेचवदेपइपसपजल) कृजहाँ माता–पिता

बच्चे को सुरक्षा उपकरणों (जैसे पैरेंटल कंट्रोल ऐप्स, Google Safe Search, YouTube Restricted Mode) का उपयोग करना सिखाएँ, यह समझाते हुए कि यह अविश्वास नहीं, बल्कि बाहरी दुनिया के खतरों से बचाव का हैलमेट (Helmet) है, ठीक जैसे साइकिल चलाते समय पहना जाता है।

४.५ सुरक्षित डिजिटल परिवार मॉडल (The SAFE Model) –Home Science के परिप्रेक्ष्य में, परिवार एक छह–चरणीय मॉडल अपना सकता है:

१. जागरूकता (Awareness) – माता–पिता और बच्चे दोनों जोखिमों को पहचानें।

२. संवाद (Dialogue) – बिना निर्णय के नियमित डिजिटल चर्चा करें।

३. मार्गदर्शन (Guidance) – नहीं कहने के बजाय सही तरीका बताएं।

४. निगरानी (Monitoring) – आयु और जोखिम के अनुसार उचित डिजिटल टूल्स का उपयोग करें (अत्यधिक नहीं)।

५. संरक्षण (Protection) – गोपनीयता सेटिंग्स, मजबूत पासवर्ड और डिजिटल पहचान की सुरक्षा सुनिश्चित करें।

६. सहायता (।पेजंदबम) – यदि कोई घटना घटती है, तो बच्चे को दोषी ठहराने के बजाय तुरंत भावनात्मक सहारा दें और आवश्यकता पड़ने पर साइबर पोर्टल पर रिपोर्ट करें (Government of India, n.d.)।

———————————————————————————

५. सामूहिक दायित्वरू विद्यालय, सरकार और डिजिटल प्लेटफॉर्म

बाल ऑनलाइन सुरक्षा को केवल परिवार के कंधों पर नहीं डाला जा सकता; यह एक साझा सामाजिक उत्तरदायित्व (Collective Social Responsibility) है।

(क) विद्यालय और शिक्षकों की भूमिका –

UNICEF India vkSj UNESCO (२०२६) की संयुक्त मार्गदर्शिका श्बैपसकतमदे व्दसपदमे मिजल पद म्कनबंजपवदश में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि स्कूलों को पाठ्यक्रम में डिजिटल नागरिकता (Digital Citizenship), ।I साक्षरता (।I Literacy), साइबर बुलिंग से बचाव और फर्जी समाचार (Fake News) की पहचान को अनिवार्य विषयों के रूप में शामिल करना चाहिए। इसके अलावा, शिक्षक–अभिभावक बैठकों को केवल परीक्षा अंकों तक सीमित न रखकर, बच्चों के डिजिटल व्यवहार, उनके ऑनलाइन समय और मनोवैज्ञानिक संकेतों पर चर्चा का मंच बनाया जाना चाहिए (UNICEF India & UNESCO, 2026)।

(ख) सरकार और नियामक तंत्र की भूमिका –

भारत सरकार ने DPDP Act, 2023 और राष्ट्रीय साइबर अपराध रिपोर्टिंग पोर्टल जैसे कानूनी और संस्थागत तंत्र विकसित किए हैं, लेकिन इनकी श्जमीनी स्तर पर उपलब्धताश और जागरूकता अभी अपर्याप्त है। ग्रामीण क्षेत्रों में साइबर पुलिस स्टेशनों की पहुँच और उनमें महिला–बाल–संवेदनशील प्रशिक्षण पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। साथ ही, General Comment No. 25 (2021) राज्यों पर यह दायित्व डालता है कि वे सुनिश्चित करें कि डिजिटल शिक्षा सभी के लिए सुलभ और लिंग–संवेदनशील (Gender–sensitive) हो।

(ग) डिजिटल प्लेटफॉर्म और तकनीकी कंपनियों की जिम्मेदारी दृ फेसबुक, इंस्टाग्राम, यूट्यूब, माइक्रोसॉफ्ट और गूगल जैसी कंपनियों को अब श्बाल–सुरक्षित डिज़ाइन (Child–Safe by Design) को अपनाना होगा, जो केवल एक नारा नहीं, बल्कि एक तकनीकी आवश्यकता है। इसमें शामिल होना चाहिएकृ

- आयु–सत्यापन (Age Verification) की मजबूत तकनीक ताकि कम उम्र के बच्चे प्लेटफॉर्म पर न आ सकें।
- बच्चों के डेटा का न्यूनतम संग्रह (Data Minimization) ताकि डेटा लीक होने पर भी नुकसान सीमित हो।
- हानिकारक सामग्री (Harmful Content) की पहचान के लिए AI–आधारित सक्रिय निगरानी और त्वरित मानवीय समीक्षा (Human Oversight) (UNICEF India, 2026; Committee on the Rights of the Child, 2021)।

६. डिजिटल विभाजन और सामाजिक न्यायरू एक अनदेखा पहलू

डिजिटल सुरक्षा की चर्चा अक्सर शहरी, अंग्रेज़ी–भाषी और उच्च–आय वर्ग के संदर्भ में होती है, जबकि सबसे अधिक असुरक्षित बच्चे वंचित समुदायों, ग्रामीण क्षेत्रों और निम्न–आय वर्ग के होते हैं। UNICEF India (२०२६) ने ASER २०२४ के आधार पर दिखाया कि ग्रामीण क्षेत्रों में लड़कियों को न केवल स्मार्टफोन तक कम पहुँच मिलती है, बल्कि डिजिटल सुरक्षा कौशल (जैसे प्राइवेसी सेटिंग बदलना, ब्लॉक करना, रिपोर्ट करना) में भी उनका प्रदर्शन लड़कों से कम है (UNICEF India & UNESCO, 2026)।

यह डिजिटल विभाजन एक श्दोहरी विसंगति (Double Disparity) पैदा करता है–एक तो उन्हें शिक्षा और अवसरों से वंचित करता है, और दूसरी ओर, सुरक्षा जानकारी के अभाव में वे साइबर अपराधियों के लिए आसान शिकार बन जाते हैं। अतः

डिजिटल सुरक्षा नीतियों को न केवल अपराध–रोकथाम पर, बल्कि समावेशी डिजिटल साक्षरता (Inclusive Digital Literacy) पर भी ध्यान केंद्रित करना चाहिए, जिसमें स्थानीय भाषाओं में सामग्री, लिंग–समानता और दिव्यांग बच्चों के लिए सुलभ डिज़ाइन शामिल हो (UNICEF India, 2018)।

७. निष्कर्षः सुरक्षित, जिम्मेदार और सशक्त डिजिटल नागरिकता की ओर डिजिटल युग ने हमें श्कनेक्टेड वर्ल्डश (Connected World) दिया है, लेकिन यह कनेक्टिविटी अगर असुरक्षित है, तो यह बच्चों के लिए श्वर्चुअल जेलश बन सकती है। बच्चों को तकनीक से दूर करने की कोशिश करना बंदूक को गोली से भरने के बजाय उसे अनदेखा करने जैसा है–खतरा बना रहता है।

हमें इस दार्शनिक बदलाव को स्वीकार करना होगाकृबच्चों को सुरक्षित रखने का सबसे अच्छा तरीका उन्हें डिजिटल जोखिमों को पहचानने और उनसे निपटने के लिए सशक्त बनाना है, न कि उन्हें अज्ञानता (Ignorance) में रखना। माता–पिता को डिजिटल मार्गदर्शक बनना होगा, जो बच्चे की ऑनलाइन दुनिया में उसके साथ चलता है, उसकी जासूसी नहीं करता।

संयुक्त राष्ट्र बाल अधिकार समिति (२०२१) का दृष्टिकोण स्पष्ट है–डिजिटल वातावरण को बच्चों के लिए अनुकूल (Child–friendly) बनाना राज्यों, समाज और व्यवसायों का कानूनी और नैतिक दायित्व है। यह तभी संभव होगा जब परिवार, विद्यालय, सरकार और तकनीकी कंपनियाँ मिलकर एक सुरक्षा–पारिस्थितिकी तंत्र (Safety Ecosystem) विकसित करें–जहाँ बच्चा सीख सके, खेल सके, रचनात्मक बन सके, अपनी आवाज़ उठा सके, और सबसे महत्वपूर्ण, सुरक्षित रह सके। भारत जैसे विशाल और विविध देश में यह चुनौती और भी बड़ी है, लेकिन क्च्क्च ।बज, 2023 और बढ़ती डिजिटल जागरूकता के साथ, हम एक ऐसी दिशा में आगे बढ़ रहे हैं, जहाँ हर बच्चे को डिजिटल गरिमा (Digital Dignity) और श्सुरक्षित ऑनलाइन अस्तित्वश (Safe Online E•istence) का अधिकार प्राप्त हो। यही डिजिटल युग में बाल अधिकारों की वास्तविक सार्थकता हैकृएक ऐसा भविष्य जहाँ तकनीक मानवता की सेवक है, न कि शोषण की हथियार।

संदर्भ सूची (References)

- Committee on the Rights of the Child- (2021)- General Comment No- 25 (2021) on children's rights in relation to the digital environment (CRC / C / GC / 25)- United Nations-
- Government of India- (2023)- Digital Personal Data Protection Act] 2023 (Section 9: Processing of personal data of children)- Ministry of Electronics and Information Technology-
- Government of India- (n-d-)- National Cyber Crime Reporting Portal- Indian Cybercrime Coordination Centre (I4C)- Ministry of Home Affairs- (Cyber Crime Portal)
- UNICEF- (2025)- Childhood in a Digital World- UNICEF Office of Strategy and Evidence] Innocenti – Global Report-
- UNICEF India- (2018)- UNICEF India and NASSCOM Foundation partner on online safety of children and tech&based innovations for child rights in India- Press Release-
- UNICEF India- (2019)- My Digital Diary: A Digital Safety Guide for Young People in India- UNICEF India Country Office-
- UNICEF India- (2020)- For Parents: Keeping Children Safe Online during the COVID&19 Pandemic (In collaboration with NCPCR & Cyber Peace Foundation)-
- UNICEF India- (2023)- Online Safety for Children and Adolescents: A Guide for Parents] Teachers and Caregivers- UNICEF India-
- UNICEF India & UNESCO Regional Office for South Asia- (2026)- Children*s Online Safety in Education: Implications for Students] Teachers and Parents in the Age of AI and Frontier Digital Technologies- Joint Guidance Note-
- UNICEF India- (2026)- Responsible AI for Children and Young People: Recommendations for AI Policies and Systems that Uphold Child Rights- Policy Brief-

डॉ० कुमारी निभा

सहायक प्राध्यापक, गृह विज्ञानं विभाग

वैशाली महिला महाविद्यालय, हाजीपुर, बिहार.

15

"आदिवासी जीवन और सह–अस्तित्व की भावना"

कुमारी राजबाला, डॉ. संजय कुमार

सारांशः–

आज के इस वैश्वीकरण एवं उच्च तकनीकी के दौर में आदिवासी समाज एक आदिम समाज बनकर रह गया है, यह आज भी अपने जीवन में आदिम (Ancient) दृष्टिकोण को अपनाए हुए है।

आदिवासी मुख्य धारा में शामिल होना तो चाहते हैं, पर अपने मूल्यों से समझौता करके नहीं। "नदी, पेड़, पहाड़ लोगों के जीवन की सारी गतिविधियों में, पर्व–त्योहार, शादी–विवाह में विशिष्ट अतिथियों की तरह मौजूद रहते हैं। उनका केंद्र में रहकर ही सब कुछ होता है।"1 आदिवासियों के जीवन के केंद्र में प्रकृति ही है भला वे इससे बिछड़ कर अपने अस्तित्व की कामना कैसे कर सकते हैं?

आदिवासी अस्मिता की समीक्षा करने से पहले हमें यह समझना होगा कि आदिवासी अस्मिता से यहाँ तात्पर्य क्या है? "पूरे देश के विभिन्न अंचलों में आदिवासी जन–समुदाय बिखरे पड़े हैं जिनके अधिकांश में परस्पर कोई संपर्क नहीं रहा। कमोबेश संस्कृति व जीवन शैली में भी अंतर दिखाई देता है फिर भी कुछ ऐसे स्थायी तत्व हैं जिनका समेकीकृत स्वरूप आदिवासी जन की एक छवि बनाता है। यह छवि ही आदिवासी की पहचान है और इस पहचान को मानव समाज के रूप में सम्मान देना ही आदिवासी अस्मिता कही जा सकती है।"2

मुख्य धारा समाज और आदिवासी समाज में राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, वैचारिक और भौतिक स्तर पर इतनी सारी असमानताएँ हैं कि यदि ये चाहें भी तो पूरी तरह से एक–दूसरे से घुल–मिल नहीं सकते।

मुख्य धारा का समाज कई सीमाओं को तोड़कर अपनी एक अति–आधुनिक और विकसित पहचान बनाए हुए है। जबकि आदिवासी समाज अपनी जड़ों को पकड़े हुए है।

'आदिवासी' शब्द पहचान को दर्शाता है, यह पहचान अस्मिता से जुड़ी हुई है। 'आदिवासी' खुद में ही एक धर्म है। आज मुख्य धारा में शामिल करने का झाँसा देकर बड़ी संख्या में इनका धर्मांतरण किया जा रहा है रू "आदिवासी समाज का प्रकृति पर आधारित अपना धर्म है इसलिये ईसाई एवं हिंदू संगठनों में यह होड़ मची रही कि आदिवासियों का धर्म परिवर्तन किया जाये।"3

अस्मिता की अवधारणा

अस्मिता की स्थाई और अस्थाई दो अवधारणाएँ होती हैं, यह दोनों ही रूपों में समाज को प्रभावित करती हैं। आदिवासी समाज में भी अस्मिता के दोनों ही रूपों के प्रभाव देखे जा सकते हैं। अब आगे इन दोनों अवधारणाओं के बारे में विस्तार से बताया जा रहा हैः

1. स्थाई अवधारणा

सह–अस्तित्व की भावना के साथ आदिवासी समाज सदियों से जुड़ा है, यह अपने अस्तित्व को बचाने का स्थाई रूप है। आदिवासी मानवेतर प्राणी और प्राकृतिक तत्वों के बीच सह–अस्तित्व की भावना लिए चलते हैं। वे इसके साथ जीने की कला पूरे विश्व को सिखाते हैं। "प्रकृति अपने भीतर सुंदर मूल्यों को, जीवन दर्शन को सहेज कर रखती है। उसके निकट रहने और उसके साथ जीने वाला समाज भी अनायास उन मूल्यों को जीने लगता है। बहुत सहजता से। आदिवासी समुदाय जो पीढ़ी दर पीढ़ी पहाड़ों और जंगलों के निकट रहता आया है, वह प्रकृति के भीतर मौजूद जीवन मूल्यों को जीने लगता है। उसकी व्यवस्था में प्रकृति की फिक्र भी शामिल रहती है। उसके पुरखे प्रकृति के साथ होते हैं। इसलिए वह पुरखों और प्रकृति दोनों की फिक्र करता है।"4

प्राकृतिक तत्वों पर मानव वर्चस्व और अत्यधिक दोहन के कारण ही आज प्रकृति के साथ–साथ आदिवासियों का अस्तित्व भी खतरे में है। इसे बचाने का सूत्र यानी सह–अस्तित्व की भावना केवल आदिम समाज के पास ही है। आदिवासी पृथ्वी के किसी भी कोने में क्यों न रहते हों, वे हमेशा सह–अस्तित्व की भावना के साथ जुड़े हुए ही नजर आएँगे, सह–अस्तित्व के बिना आदिवासी समाज अधूरा है। इसलिए आदिवासी प्रकृति की रक्षा के लिए हमेशा संघर्ष करते रहते हैं। ष्यह सहअस्तित्व जब किसी भी रूप में और किसी भी हद तक भंग होता है तो वह एक तरह से आदिवासी अस्मिता पर आघात होता है क्योंकि आदिवासी जीवन की कल्पना इस सहअस्तित्व के बिना नहीं की जा सकती है।"5

2. अस्थाई अवधारणा

अस्मिता का दूसरा रूप अस्थाई या परिवर्तनशील है। आदिवासी संस्कृति परिवर्तनशील है। इसमें समय के अनुकूल परिवर्तन होते रहते हैं और कई क्षेत्रों में अब भी परिवर्तन होना आवश्यक है।

भाषा का क्षेत्र एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें आज भी परिवर्तन होना आवश्यक है। यहाँ मौलिकता के साथ ही भाषा के विकास के लिए बाहरी उपयुक्त शब्दों को इसमें जोड़ना और यदि भाषा की अपनी मूल लिपि न हो तो किसी नई लिपि को विकसित करना या पहले से मौजूद किसी लिपि को आत्मसात करना भाषा के विकास के

लिए जरूरी है।

आज मौखिक रूप में चल रहे भाषा के इतिहास की पुष्टि भी उसके लिखित रूप से ही होती है इसलिए यह अपेक्षित है कि मौखिक के साथ–साथ लिखित इतिहास भी अस्तित्व में रहे। "भाषा की प्रगति और विकास का मूल्यांकन उसके लिखित साहित्य से किया जाता है जिसे शिष्ट साहित्य कहा गया है। लोक साहित्य के जीवंत रहने से समाज की जागरूकता और चेतना का मूल्यांकन अवश्य होता है लेकिन लिखित शिष्ट साहित्य की प्रस्तुति की अनिवार्यता से इंकार नहीं किया जा सकता। लिखित साहित्य से भाषाओं का संरक्षण, संग्रहण और सम्यक संवर्धन संभव है।"6

आदिवासी अस्मिता को लेकर शोधकर्ताओं ने दो दृष्टिकोण अपनाएँ हैः

पहला दृष्टिकोण इस बात पर ज़ोर देता है कि आदिवासियों को उन्हीं के पुश्तैनी ज़मीन पर रहने दिया जाए, उनकी सांस्कृतिक परंपराओं में हस्तक्षेप न किया जाए लेकिन इसके साथ ही उनके विकास पर भी बराबर ध्यान दिया जाए।

दूसरा दृष्टिकोण इस बात का पक्षधर है कि आदिवासियों को सरकारी नीतियों के तहत देश की मुख्य धारा से जोड़ने पर विशेष ध्यान देना चाहिए, तभी उनकी अस्मिता सुरक्षित रह पाएगी। मुख्य धारा का समाज जंगलों और पर्वतों से दूर दराज में ही बसता है पर आदिवासियों को इस धारा में शामिल होने के लाखों फायदे क्यों न गिना दिए जाएँ, वे अपने जंगलों और पर्वतों के बिना अपने अस्तित्व की कल्पना भी नहीं कर सकते।

इन दोनों दृष्टिकोणों में से किसका पालन कर आदिवासी अस्मिता सुरक्षित रह पाएगी, यह एक विचारणीय विषय है।

आदिवासी अस्मिता को और भी बेहतर तरीके से समझने के लिए हमें 'स्वायत्तता' को भी समझना होगा क्योंकि सामाजिक और सांस्कृतिक स्वायत्तता सीधे तौर पर आदिवासी अस्मिता से सम्बद्ध है। वर्तमान समय में स्वायत्तता के साथ आदिवासी समझौता करने को तैयार नहीं हैं, कई बार यह समझौता उनके लिए लाभदायक भी होता है पर बिना उनकी अनुमति के इसे उनके जीवन में लागू करना नामुमकिन है। यदि इसे ज़बरजस्ती उनके जीवन पर थोपने की कोशिश की जाएगी तो यह उनमें मानसिक तनाव और आपसी द्वंद्व की स्थिति को जन्म देगा। यह उनके विकास क्रम में एक अवरोधक का काम करेगा।

आज वैश्वीकरण आदिवासी अस्मिता के लिए वरदान से अधिक अभिशाप सिद्ध हो रहा हैः "वैश्वीकरण के दौर में भौतिक व तकनीकी स्तर पर विकसित राष्ट्रों तथा पूंजी की ताकत के आधार पर उनके वर्चस्व–विस्तार की संभावनाओं के आगे कम विकसित व विकासशील राष्ट्र–समाजों तथा विश्व की अन्य आंचलिक संस्कृतियों के लिए खतरा पैदा किया है।"7

संदर्भ सूचीः

1. जसिंता केरकेट्टाः जसिंता की डायरी य पृष्ठ संख्या 15
2. हरिराम मीणा रू आदिवासी दुनिया य पृष्ठ संख्या 169
3. उपरिवत
4. जसिंता केरकेट्टाः जसिंता की डायरी य पुरखों और प्रकृति की फिक्र करते लोग
5. हरिराम मीणा रू आदिवासी दुनिया य पृष्ठ संख्या 171
6. सुरेश कुमार (निराला) रू सुरभित सुमन (हिंदी त्रैमासिक) य पृष्ठ संख्या 14
7. हरिराम मीणाः आदिवासी दुनिया य पृष्ठ संख्या 175,176

शोधार्थी– कुमारी राजबाला

शोध निर्देशक– डॉ. संजय कुमार

(सहायक प्राध्यापक)

हिंदी विभाग, मानविकी संकाय

संत ज़ेवियर कॉलेज, राँची

16

"दलित साहित्य पर आंबेडकरवादी विचारधारा का प्रभाव "

शालू सिन्हा, डॉ. संजय कुमार

सारांश

किसी भी समाज के वैचारिक विकास में विचारधारा की अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। विचारधारा केवल विचारों का समूह नहीं होती, बल्कि वह एक ऐसी वैचारिक दृष्टि है जिसके माध्यम से व्यक्ति समाज, संस्कृति, इतिहास और जीवन–मूल्यों को समझता तथा उनका मूल्यांकन करता है। यह मनुष्य को यथास्थिति का समर्थन करने अथवा उसके विरुद्ध संघर्ष करने की चेतना प्रदान करती है। जब किसी समाज में लंबे समय तक अन्याय, असमानता, शोषण और दमन की परिस्थितियाँ बनी रहती हैं, तब उनके प्रतिरोध में नई विचारधाराओं का जन्म होता है। अंबेडकरवादी विचारधारा भी भारतीय समाज में व्याप्त जातिगत असमानता, अस्पृश्यता और सामाजिक विषमता के विरुद्ध विकसित हुई एक परिवर्तनकारी विचारधारा है।

अंबेडकरवादी विचारधारा का मूल स्रोत भारतीय संविधान के शिल्पकार, महान समाज–सुधारक एवं चिंतक डॉ. भीमराव रामजी अंबेडकर के सामाजिक, राजनीतिक तथा दार्शनिक विचार हैं। इस विचारधारा का केंद्रीय उद्देश्य एक ऐसे समाज की स्थापना करना है जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को जाति, धर्म, लिंग अथवा जन्म के आधार पर नहीं, बल्कि उसके मानवीय अस्तित्व के आधार पर सम्मान प्राप्त हो। स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व और न्यायकृये चार मूल मूल्य अंबेडकरवादी चिंतन की आधारशिला हैं। यही मूल्य आगे चलकर दलित साहित्य के भी प्रमुख जीवन–मूल्य बने।

डॉ. अंबेडकर का संपूर्ण जीवन सामाजिक भेदभाव के विरुद्ध संघर्ष का इतिहास है। उन्होंने बचपन से लेकर सार्वजनिक जीवन तक अस्पृश्यता, अपमान और सामाजिक बहिष्कार की पीड़ा को स्वयं अनुभव किया। विद्यालय में अलग बैठने की विवशता, सार्वजनिक जलस्रोतों के उपयोग पर प्रतिबंध तथा सामाजिक व्यवहार में निरंतर अपमान जैसे अनुभवों ने उनके व्यक्तित्व को गहराई से प्रभावित किया। उन्होंने केवल व्यक्तिगत स्तर पर इन कष्टों को नहीं झेला, बल्कि समूचे दलित समाज की सामूहिक पीड़ा को समझा और उसे सामाजिक परिवर्तन के आंदोलन में रूपांतरित किया। यही कारण है कि उनके विचारों में अनुभवजन्य सत्य, सामाजिक यथार्थ और परिवर्तन की तीव्र आकांक्षा स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

डॉ. अंबेडकर ने भारतीय समाज की संरचना का गहन अध्ययन करते हुए विशेष रूप से मनुस्मृति और वर्ण–व्यवस्था की आलोचनात्मक समीक्षा की। उनका मत था कि जन्म–आधारित सामाजिक विभाजन ने भारतीय समाज को अनेक स्तरों में बाँट दिया है और इसी व्यवस्था ने अस्पृश्यता, जातिगत भेदभाव तथा सामाजिक असमानता को वैधता प्रदान की। उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि मनुष्य की श्रेष्ठता या हीनता जन्म से नहीं, बल्कि उसके कर्म, योग्यता और नैतिक आचरण से निर्धारित होनी चाहिए। अंबेडकर धार्मिक आडंबरों, भाग्यवाद, कर्मफल, पुनर्जन्म तथा सामाजिक असमानता को उचित ठहराने वाली उन मान्यताओं के आलोचक थे जिनका उपयोग शोषणकारी व्यवस्था को बनाए रखने के लिए किया जाता था। उनका आग्रह था कि समाज को तर्क, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और मानवीय विवेक के आधार पर पुनर्गठित किया जाना चाहिए।

ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो प्रारंभिक वर्ण–व्यवस्था को कर्म–आधारित माना जाता है, किंतु समय के साथ यह जन्म–आधारित व्यवस्था में परिवर्तित हो गई। इसी परिवर्तन ने जाति–व्यवस्था को जन्म दिया और सामाजिक विषमता को स्थायी रूप प्रदान किया। डॉ. अंबेडकर ने अपनी प्रसिद्ध कृति श्जाति का विनाशश (Annihilation of Caste) में स्पष्ट रूप से कहा कि जब तक जाति–व्यवस्था समाप्त नहीं होगी, तब तक सामाजिक समानता और लोकतंत्र की स्थापना संभव नहीं है। उनके अनुसार अस्पृश्यता जाति–व्यवस्था की ही उपज हैय अतः दलितों की वास्तविक मुक्ति का मार्ग जातिगत विभाजन के समूल उन्मूलन में निहित है।

इसी वैचारिक संघर्ष की परिणिति उनके ऐतिहासिक निर्णयकृबौद्ध धर्म ग्रहण करने–में दिखाई देती है। डॉ. अंबेडकर ने 14 अक्टूबर 1956 को नागपुर में लाखों अनुयायियों के साथ बौद्ध धर्म स्वीकार किया। उनका विश्वास था कि बौद्ध धर्म समानता, करुणा, तर्कशीलता और मानव–मर्यादा पर आधारित है तथा उसमें जन्म–आधारित ऊँच–नीच का कोई स्थान नहीं है। उन्होंने दलित समाज को भी आत्मसम्मान और सामाजिक मुक्ति के लिए बौद्ध धर्म अपनाने की प्रेरणा दी। इससे पूर्व 25 दिसंबर 1927 को महाड़ सत्याग्रह के दौरान उन्होंने मनुस्मृति–दहन कर उस सामाजिक व्यवस्था का प्रतीकात्मक विरोध किया, जिसे वे जातिगत असमानता और अमानवीय व्यवहार का मूल कारण मानते थे।

अंबेडकरवादी विचारधारा का प्रभाव केवल सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उसने भारतीय साहित्य, विशेषकर दलित साहित्य को भी गहराई से प्रभावित किया। वास्तव में दलित साहित्य की वैचारिक चेतना का सबसे सशक्त आधार अंबेडकरवादी दर्शन ही है। इस विचारधारा ने दलित समाज

को अपनी पीड़ा, संघर्ष और अस्मिता को साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त करने का साहस प्रदान किया। यदि यह कहा जाए कि दलित साहित्य को जो वैचारिक दृढ़ता, आत्मविश्वास और प्रतिरोध की चेतना प्राप्त हुई, उसका मूल स्रोत डॉ. अंबेडकर का चिंतन है, तो यह अतिशयोक्ति नहीं होगी।

दलित साहित्य पर अंबेडकरवादी विचारधारा का प्रभाव अनेक स्तरों पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। सर्वप्रथम, इस विचारधारा ने दलित साहित्य को एक सुदृढ़ वैचारिक आधार प्रदान किया। दलित साहित्य केवल करुणा या सहानुभूति का साहित्य नहीं रह गया, बल्कि वह सामाजिक अन्याय के विरुद्ध प्रतिरोध और परिवर्तन का साहित्य बन गया। इसमें दलित समुदाय के अनुभव, संघर्ष, आत्मसम्मान और अधिकारों की माँग प्रमुख रूप से अभिव्यक्त हुई।

दूसरे, अंबेडकरवादी चिंतन ने दलित साहित्य को मनुवादी वर्ण–व्यवस्था, जातिगत भेदभाव और अस्पृश्यता के विरोध की स्पष्ट दिशा प्रदान की। दलित साहित्यकार सामाजिक संरचना की आलोचना करते हुए यह स्थापित करते हैं कि जाति–आधारित विभाजन मानवता और लोकतंत्र के विरुद्ध है। इस प्रकार दलित साहित्य सामाजिक परिवर्तन का वैचारिक दस्तावेज बनकर उभरता है।

तीसरे, अंबेडकरवादी विचारधारा ने दलित साहित्य में अस्मिता और आत्मसम्मान के प्रश्न को केंद्रीय स्थान दिया। दलित साहित्य केवल पीड़ा का वर्णन नहीं करता, बल्कि वह दलित समुदाय की पहचान, गरिमा और अधिकारों की स्थापना की माँग करता है। यह साहित्य व्यक्ति को अपने अस्तित्व पर गर्व करना तथा अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करना सिखाता है।

चौथे, इस विचारधारा ने दलित साहित्य को विद्रोह और प्रतिरोध की नई चेतना प्रदान की। यह साहित्य शोषण और अन्याय का केवल भावनात्मक चित्रण नहीं करता, बल्कि उन सामाजिक संरचनाओं को चुनौती देता है जो असमानता को जन्म देती हैं। इसलिए दलित साहित्य परिवर्तनकारी साहित्य के रूप में प्रतिष्ठित हुआ।

पाँचवें, अंबेडकरवादी चिंतन ने दलित साहित्य में भोगे हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति को विशेष महत्त्व प्रदान किया। दलित साहित्यकारों ने अपने जीवनानुभवों, संघर्षों, अपमान और प्रतिरोध को बिना किसी आडंबर के यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया। इससे दलित साहित्य में अनुभव की प्रामाणिकता और सामाजिक विश्वसनीयता का विकास हुआ।

छठे, इस विचारधारा ने दलित साहित्य को सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना से समृद्ध किया। इसमें मानवाधिकार, लोकतंत्र, समान अवसर, संवैधानिक अधिकार और सामाजिक न्याय जैसे विषय प्रमुखता से उभरकर सामने आए। दलित साहित्य सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बन गया और समाज के वंचित वर्गों को संगठित होने की प्रेरणा देने लगा।

सातवें, डॉ. अंबेडकर द्वारा प्रतिपादित शिक्षित बनो, संगठित हो, संघर्ष करोष का संदेश दलित साहित्य की मूल प्रेरणाओं में से एक है। दलित साहित्य शिक्षा को सामाजिक मुक्ति का सबसे प्रभावी साधन मानता है। यही कारण है कि अनेक दलित आत्मकथाओं और रचनाओं में शिक्षा को आत्मसम्मान और सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बताया गया है।

आठवें, अंबेडकरवादी विचारधारा के प्रभाव से दलित साहित्य में तर्कशीलता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और अंधविश्वास–विरोध को विशेष महत्त्व प्राप्त हुआ। बौद्ध दर्शन की मानवीय एवं तार्किक परंपरा ने दलित साहित्य को अंधविश्वास, भाग्यवाद और रूढ़ियों से मुक्त होकर विवेकपूर्ण चिंतन की दिशा प्रदान की।

नौवें, इस विचारधारा ने दलित साहित्य में मानवतावाद को सर्वोच्च मूल्य के रूप में स्थापित किया। जाति, धर्म और लिंग के आधार पर विभाजन की अपेक्षा प्रेम, करुणा, बंधुत्व और समानता को अधिक महत्त्व दिया गया। इस प्रकार दलित साहित्य सामाजिक न्याय के साथ–साथ मानवीय संवेदनाओं का भी साहित्य बनकर उभरता है।

समग्रतः कहा जा सकता है कि अंबेडकरवादी विचारधारा ने दलित साहित्य को केवल वैचारिक आधार ही नहीं दिया, बल्कि उसे सामाजिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम भी बनाया। इस विचारधारा ने दलित समाज को अपनी अस्मिता की पहचान, आत्मसम्मान की चेतना, अधिकारों के प्रति जागरूकता और संघर्ष की शक्ति प्रदान की। आधुनिक भारतीय साहित्य में दलित विमर्श की वैचारिक ऊर्जा का सबसे प्रमुख स्रोत डॉ. भीमराव अंबेडकर का चिंतन है। इसलिए यह कहना समीचीन होगा कि दलित साहित्य की आत्मा में अंबेडकरवादी दर्शन के मूल मूल्यकृस्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व और सामाजिक न्यायकृनिरंतर स्पंदित होते हैं। यही मूल्य इस साहित्य को सामाजिक परिवर्तन का सशक्त औजार बनाते हैं और एक समतामूलक, न्यायपूर्ण तथा मानवीय समाज की स्थापना की दिशा में प्रेरित करते हैं।

संदर्भ

1. अंबेडकर, भीमराव रामजी. जाति का विनाश। सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली
2. अंबेडकर, भीमराव रामजी. शूद्र कौन थे? सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली

3. दलित लेखन विशेषांक, शब्दयोग, सितंबर 2009
4. वाल्मीकि, ओमप्रकाश. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र। राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. लिंबाले, शरणकुमार. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र (हिंदी अनुवाद)। वाणी प्रकाशन।
6. भारती, कँवल. दलित साहित्य की अवधारणा। बोधिसत्व प्रकाशन।
7. नैमिशराय, मोहनदास. अपने–अपने पिंजरे। वाणी प्रकाशन।
8. बेचैन, श्यौराज सिंह. मेरा बचपन मेरे कंधों पर। वाणी प्रकाशन।

शोधार्थी– शालू सिन्हा
शोध निर्देशक – डॉ. संजय कुमार
(सहायक प्राध्यापक)
हिंदी विभाग,
मानविकी संकाय,
संत ज़ेवियर
कॉलेज, राँची।

17

उदय प्रकाश की कथन–शैली

नविन्ता कुमारी

सारांश

बीज शब्द – उदय प्रकाश, कथन–शैली, किस्सागोई, जादुई यथार्थवाद, प्रतीक, बिंब–विधान, व्यंग्य, मानवीय संवेदना।

शोध सारः प्रस्तुत शोध–आलेख में समकालीन हिन्दी कथा–साहित्य के महत्त्वपूर्ण कथाकार उदय प्रकाश की कथन –शैली का विश्लेषण किया गया है। इस अध्ययन में उनकी कथन –शैली की प्रमुख विशेषताओं, जैसेकृकिस्सागोई, व्यंग्यात्मकता, प्रतीकात्मकता, बिंब–विधान तथा यथार्थ और जादू के समन्वय का विवेचन किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि उदय प्रकाश की कथन–शैली अपनी मौलिकता, वैचारिक गहराई और कलात्मकता के कारण समकालीन हिन्दी कहानी को विशिष्ट पहचान प्रदान करती है।

किसी भी साहित्यकार की पहचान केवल उसके विषय–चयन से नहीं होती, बल्कि उसकी कथन –शैली से भी होती है। कथन –शैली वह माध्यम है जिसके द्वारा रचनाकार अपने अनुभवों, विचारों, संवेदनाओं तथा जीवन–दृष्टि को पाठकों तक प्रभावपूर्ण ढंग से पहुँचाता है। इसमें भाषा, कथानक, संवाद, चरित्र–चित्रण, दृष्टिकोण, प्रतीक, बिंब तथा शिल्पगत विशेषताएँ सम्मिलित रहती हैं। यही कारण है कि समान विषय पर लिखी गई दो रचनाएँ भी अपनी कथन –शैली के कारण एक–दूसरे से भिन्न और विशिष्ट होती हैं। प्रत्येक रचनाकार का कहानी कहने का अपना तरीका होता है।

हिन्दी कथा–साहित्य में समय–समय पर कथन–शैली में परिवर्तन होते रहे हैं। समकालीन हिन्दी कहानी में उदय प्रकाश का स्थान इसलिए विशिष्ट है कि उन्होंने कथन–शैली को नए अनुभवों, नए शिल्प और नवीन अभिव्यक्ति के माध्यम से समृद्ध किया। उदय प्रकाश ने कथन दृ शैली में नए प्रयोग किये। सत्यदेव मिश्र लिखते हैं– "इधर उदय प्रकाश ने कहानी की नई जमीन तोड़ी है।"1 उनकी कहानियाँ केवल घटनाओं का वर्णन नहीं करतीं, बल्कि सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक यथार्थ की जटिलताओं को कलात्मक ढंग से उद्घाटित करती हैं। उदय प्रकाश की कथन– शैली की तारीफ में संपादक अजमल कमाल लिखते हैं – " पाकिस्तान में वह सभी कुछ है, जो हिंदुस्तान में है... सिर्फ उदय प्रकाश जैसे अफ़सानानिगार को छोड़कर।"2

उदय प्रकाश की कथन–शैली अनेक दृष्टियों से विशिष्ट एवं बहुआयामी है। उनकी कहानियाँ केवल घटनाओं का क्रमबद्ध विवरण प्रस्तुत नहीं करतीं, बल्कि जीवन के विविध आयामों को कलात्मक ढंग से अभिव्यक्त करती हैं। उनकी कथन–शैली में यथार्थ, कल्पना, लोकजीवन, व्यंग्य, संस्मरण, प्रतीक तथा जादुई यथार्थवाद का ऐसा समन्वय दिखाई देता है, जो समकालीन हिन्दी कहानी को एक नया आयाम प्रदान करता है। स्व. सरबजीत उदय प्रकाश की कथन–शैली को लेकर लिखते हैं – " उदय प्रकाश ने कहानी के शिल्प के अंदरूनी ढांचे को बदला है और कहानी कहने के बने– बनाए फॉर्म को तोड़ा है। शिल्प के नए प्रयोगों के साथ नयी कथा जुगतों को आविष्कृत करते हुए जटिल संरचना वाले कुछ सरल एवं बहुआयामी कहानियाँ लिखी हैं । उनकी कहानियाँ प्रतीकों, चिह्नओं व संकेतों की जो नयी संरचना एवं सूझ – मॉडल निर्मित करती हैं, उससे कहानी जहाँ कलात्मक स्तर पर सघन व सौंदर्यवान बनती है, वहीं बहुअर्थी व दृष्टिसंपन्न भी बनती है।"3 उदय प्रकाश की कथन–शैली का सबसे विशिष्ट पक्ष यह है कि वे यथार्थ के भीतर जादुई तत्वों का ऐसा संयोजन करते हैं कि दोनों के बीच कोई कृत्रिम विभाजन दिखाई नहीं देता। जादुई यथार्थवाद का प्रयोग कर वह यथार्थ की गहराई में उतरते हैं। उनकी कहानियों में जादुई घटनाएँ चमत्कार उत्पन्न करने के लिए नहीं आतीं, बल्कि सामाजिक यथार्थ की गहराई को अधिक प्रभावी ढंग से व्यक्त करती हैं। साधारण घटनाएँ, प्रतीक और कल्पना मिलकर ऐसी संरचना निर्मित करते हैं, जिसमें यथार्थ और कल्पना एक–दूसरे के पूरक बन जाते हैं। यही कारण है कि उनकी कहानियाँ पाठक को केवल बाहरी घटनाओं तक सीमित नहीं रखतीं, बल्कि जीवन के गहरे सामाजिक और मनोवैज्ञानिक सत्य से परिचित कराती हैं। वे मिथक और लोकविश्वास का सहारा लेते हैं। उनकी कहानियों में जादुई घटनाएँ और यथार्थ ऐसे घुल दृ मिल जाती हैं कि कल्पना और यथार्थ के बीच की दिवार खत्म हो जाती है और हमें गहरे अर्थ की प्राप्ति होती है। जादुई यथार्थवाद की दृष्टि से 'तिरिछ' कहानी उनकी सबसे प्रमुख कहानी है। 'हीरालाल का भूत' में हीरालाल का भूत बनकर हवेली में आना, 'टेपचू' में टेपचू का बार – बार जीवित हो जाना, 'मौसाजी' कहानी में मौसाजी की स्मृतियाँ और वर्तमान का एक दूसरे में घुल मिल जाना, 'अरेबा परेबा' कहानी में अरेबा और परेबा का पत्थर में बदल जाना आदि जादुई यथार्थवादी शैली के उदाहरण हैं। उदय प्रकाश इसी तरह जादुई यथार्थवाद का प्रयोग करते हुए कहानी कहते हैं।

उदय प्रकाश की कथन–शैली की एक बड़ी और अनोखी विशेषता यह है कि उनकी कहानी के पात्रों के नाम से हम पहले से भिज्ञ होते हैं – 'मोहनदास' कहानी का केंद्रीय पात्र मोहनदास का नाम लेते ही सहज रूप से ध्यान मोहनदास करमचंद गाँधी की ओर जाता है, मोहनदास की पत्नी कस्तूरीबाई, पिता काबा दास, माँ पुतलीबाई, बेटा देवदास– इन सभी पात्रों के नाम गांधीजी के परिवार की याद दिलाते हैं। उदय प्रकाश स्वयं कहते हैं – " सच बताइये, कहीं आपको यह तो नहीं लगने लगता कि मैं आपको कोई

प्रतीकवादी कूटकथा सुनाने बैठ गया? इस कहानी के मुख्य पात्र का नाम मोहनदास, पत्नी का नाम कस्तूरीबाई, माँ का नाम पुतलीबाई और बेटे का नाम देव दास?"4 इसी कहानी में एक ईमानदार न्यायिक दण्डाधिकारी का नाम गजानन माधव मुक्तिबोध है। 'पीली छतरी वाली लड़की' के राहुल और अंजली 'कुछ –कुछ होता है' वाले राहुल और अंजली की याद दिलाते हैं। 'हिंदुस्तानी इवान दानिसोविच की जिन्दगी का एक दिन' का पात्र इवान दानिसोविच सोल्जेनित्सिन के एक पात्र की ओर हमारा ध्यान ले जाता है। 'वारेन हेस्टिंग्स का साँड़ ' कहानी का मुख्य पात्र वारेन हेस्टिंग्स ऐतिहासिक व्यक्ति है जिनके विषय में हम इतिहास के किताबों में पढ़ चुके हैं। उदय प्रकाश अपने पात्रों के नाम द्वारा न सिर्फ उसी नाम के दूसरे पात्रों और व्यक्तियों की याद दिलाते हैं बल्कि उनकी कथन–शैली ही ऐसी है की वे हमारे मस्तिष्क में उस एक ही नाम वाले अलग–अलग पात्र को एक साथ लेकर चलने के लिए विवश कर देते हैं।

उदय प्रकाश की प्रसिद्धि केवल कहानीकार और कवि के रूप में ही नहीं, बल्कि उन्होंने पटकथा लेखक, संवाद लेखक और डॉक्यूमेंट्री फि़ल्म निर्माता के रूप में भी काम किया है। उदय प्रकाश का फिल्मों और दृश्य – माध्यमों से गहरा रिश्ता रहा है। उनका यह रिश्ता उनकी कथन– शैली में हम साफ देख पाते हैं। जगह दृ जगह पर हमें फिल्मी अभिनेता दृ अभिनेत्री, गायक, निर्देशक के उल्लेख मिल जाते हैं। " यह उसी समय का ब्यौरा है जब विधु विनोद चोपड़ा की फिल्म 'मुन्ना भाई एम. बी. बी. एस बॉक्स ऑफिस में सुपरहिट हो गई थी।"5

कहानी कहते हुए उदय प्रकाश वर्त्तमान की घटनाओं को भी साथ लेकर चलते हैं और वर्त्तमान में हो रहे अनैतिक कार्यों पर कटाक्ष करते हैं। कुछ उदाहरण देखें –

"... यह वही समय था, जब लगातार पंद्रह साल से हिन्दी भाषा से सम्बन्धित पदों की चयन समिति का हर सदस्य, रिक्त पदों पर अपने दामाद, बेटा, बेटी समधी, चापलूस, कारिंदो को खुलेआम नियुक्त कर दिया जाता था और उस पर न कोई सी. बी. आई. इन्क्वायरी होती थी, न राज्यसभा या लोकसभा में कोई सवाल उठता था।"6

" वही समय था जब पटना का कलेक्टर बाढ़ राहत का करोड़ों रुपया मार कर चंपत हो गया था और नयी सरकार ने फिल्म सेंसर बोर्ड से पुराने अध्यक्ष को हटाकर जिसे नया अध्यक्ष बनाया था, वह बॉलीवुड की फिल्मों के बाहर दिखाई दे रहे उसे दृश्य पर सेंसर की कैंची नहीं चला पा रही थी, जिसमें एक खानदानी नवाब के जिप्सी से शिकार में मारे गए कालीया मृग, दो खरगोशों की लाश, सर्च लाइट और बंदूक की बारामती का शॉट था।"7

उदय प्रकाश अपनी कहानियों में प्रतीकों और बिंबों का अत्यंत प्रभावी प्रयोग करते हैं। उनके यहाँ प्रतीक केवल सौंदर्य–वृद्धि का साधन नहीं हैं, बल्कि सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक यथार्थ को गहन अर्थ प्रदान करते हैं। अनेक पात्र, वस्तुएँ और घटनाएँ अपने प्रत्यक्ष अर्थ से आगे बढ़कर व्यापक सामाजिक संकेत ग्रहण कर लेती हैं। यही कारण है कि उनकी कहानियों का अर्थ केवल कथानक तक सीमित नहीं रहता, बल्कि पाठक को अनेक स्तरों पर विचार करने के लिए प्रेरित करता है। उनकी प्रतीकात्मकता जादुई यथार्थवाद की अभिव्यक्ति को भी अधिक प्रभावशाली बनाती है। 'तिरिछ' में तिरिछ केवल एक जीव नहीं, बल्कि भय, हिंसा और अमानवीय व्यवस्था का प्रतीक बन जाता है। मुक्तिबोध हिन्दी साहित्य में सत्य, न्याय और जनपक्षधरता के कवि माने जाते हैं। 'मोहनदास' में उदय प्रकाश उन्हें वास्तविक न्यायलय के न्यायधीश के रूप में नहीं, बल्कि प्रतीकात्मक न्यायधीश के रूप में प्रस्तुत करते हैं।'वारेन हेस्टिंग्स का साँड़' में साँड़ का चरित्र एक साधारण पशु नहीं रह जाता, बल्कि इतिहास, सत्ता और औपनिवेशिक प्रभाव का प्रतीक बन जाता है। 'पॉल गोमरा का स्कूटर' में स्कूटर मध्यवर्गीय आकांक्षाओं, उपभोक्तावादी संस्कृति, सामाजिक प्रतिष्ठा तथा आधुनिक जीवन की विडंबनाओं का सशक्त प्रतीक है। टेपचू जिजीविषा और प्रतिरोध का प्रतीक है। इस तरह उदय प्रकाश के प्रतीक जादुई यथार्थवाद की अभिव्यक्ति को भी सशक्त बनाते हैं।

उदय प्रकाश अपनी कथन–शैली में तीक्ष्ण व्यंग्य का प्रभावी प्रयोग करते हैं। उनका व्यंग्य किसी व्यक्ति विशेष पर नहीं, बल्कि सामाजिक, राजनीतिक तथा प्रशासनिक व्यवस्था की विसंगतियों पर केन्द्रित होता है। वे बिना प्रत्यक्ष उपदेश दिए व्यवस्था की विफलताओं और सत्ता की अमानवीयता को उजागर करते हैं। 'मोहनदास' जैसी कहानी में भ्रष्ट प्रशासन, पहचान की चोरी और न्याय–व्यवस्था की विडंबना का चित्रण इसी व्यंग्यात्मक शैली के माध्यम से अत्यंत प्रभावशाली बन जाता है। उनका व्यंग्य पाठक को हँसाने के लिए नहीं, बल्कि सोचने के लिए विवश करता है। गोपाल राय "राम सजीवन की प्रेम कथा" के विषय में लिखते हैं – " इस कहानी में प्रेम के क्षेत्र में भी वर्ग दृ भेद की भूमिका रेखांकित की गयी है, जिसे गाँव से महानगर में आए लड़के नहीं समझ पाते। यह कहानी इस प्रकार के प्रेम पर व्यंग्य है। "8

उदय प्रकाश की कहानियों की एक अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषता उनकी किस्सागोई है। वे कहानी को किसी औपचारिक ढाँचे में बाँधने के बजाय सहज रूप से आगे बढ़ाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो कोई अनुभवी कथावाचक अपने जीवन का कोई संस्मरण या लोककथा सुना रहा हो। इस शैली के कारण पाठक कहानी से निरंतर जुड़ा रहता है तथा कथानक में स्वाभाविक प्रवाह बना रहता है। मोहनदास, पीली छतरी वाली लड़की तथा टेपचू जैसी कहानियों में यह प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

किस्सागोई उनकी कहानियों को रोचक बनाने के साथ–साथ सामाजिक यथार्थ को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने का माध्यम भी बनती है।

उदय प्रकाश की कथन–शैली का एक महत्त्वपूर्ण गुण उनकी आत्मकथात्मक एवं संस्मरणात्मक शैली है। उनकी अनेक कहानियों में ऐसा प्रतीत होता है कि कथाकार स्वयं घटनाओं का साक्षी है अथवा उन्हें प्रत्यक्ष रूप से अनुभव कर रहा है। इस कारण कथा में विश्वसनीयता और भावात्मक गहराई उत्पन्न होती है। संस्मरणात्मक शैली के माध्यम से वे व्यक्तिगत अनुभवों को व्यापक सामाजिक संदर्भों से जोड़ते हैं। उनकी यह शैली पाठक को केवल घटनाओं का दर्शक नहीं रहने देती, बल्कि उसे कथा के भाव–जगत का सहभागी बना देती है। व्यक्तिगत अनुभव और सामाजिक यथार्थ का यह संतुलन उनकी कहानियों को विशिष्ट बनाता है।

उदय प्रकाश की कथन शैली समय और कथानक की बहुस्तरीय संरचना विद्यमान है। उदय प्रकाश की कहानियों में समय का प्रवाह सदैव रैखिक नहीं होता। वे वर्तमान, अतीत और स्मृतियों के बीच सहज रूप से आवागमन करते हैं। इस कारण उनकी कथा एक ही समय में अनेक स्तरों पर विकसित होती है। कहीं स्मृतियाँ वर्तमान को प्रभावित करती हैं तो कहीं वर्तमान अतीत की पुनर्व्याख्या करता है। यह बहुस्तरीय संरचना उनकी कथन–शैली को अधिक सघन और कलात्मक बनाती है तथा पाठक को कथा के भीतर सक्रिय रूप से सोचने के लिए प्रेरित करती है।

उदय प्रकाश की कथन –शैली का मूल आधार मानवीय संवेदना है। उनकी कहानियों में समाज के हाशिए पर स्थित व्यक्ति, दलित, आदिवासी, श्रमिक, बेरोज़गार तथा शोषित वर्ग की पीड़ा अत्यंत मार्मिक रूप में अभिव्यक्त होती है। वे इन पात्रों के माध्यम से केवल करुणा उत्पन्न नहीं करते, बल्कि सामाजिक अन्याय, असमानता और सत्ता की अमानवीयता पर भी प्रश्न उठाते हैं। उनकी कथन–शैली में संवेदना और प्रतिरोध साथ–साथ चलते हैं। इसी कारण उनकी कहानियाँ सामाजिक चेतना का सशक्त माध्यम बन जाती हैं ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि उदय प्रकाश की कथन–शैली समकालीन हिन्दी कहानी की एक विशिष्ट उपलब्धि है। उनकी शैली में किस्सागोई, यथार्थ और जादुई यथार्थवाद का समन्वय, व्यंग्य, लोकभाषा, प्रतीकात्मकता, संस्मरणात्मकता तथा मानवीय संवेदना का अद्‌भुत संतुलन दिखाई देता है। वे अपनी कथाओं के माध्यम से केवल घटनाओं का चित्रण नहीं करते, बल्कि सामाजिक यथार्थ की जटिलताओं, सत्ता की विसंगतियों तथा मनुष्य के अस्तित्वगत संकट को भी गहन कलात्मकता के साथ अभिव्यक्त करते हैं। विशेष रूप से जादुई यथार्थवाद के संदर्भ में उनकी कथन–शैली अत्यंत महत्त्वपूर्ण सिद्ध होती है। वे यथार्थ और कल्पना के बीच ऐसा रचनात्मक सामंजस्य स्थापित करते हैं कि दोनों एक–दूसरे के पूरक बन जाते हैं। यही कारण है कि उनकी कहानियाँ पाठक को केवल मनोरंजन नहीं देतीं, बल्कि उसे सामाजिक यथार्थ के गहरे स्तरों से परिचित कराती हैं। समकालीन हिन्दी कथा–साहित्य में उदय प्रकाश की कथन–शैली अपनी मौलिकता, वैचारिक गहराई और कलात्मक प्रभाव के कारण एक विशिष्ट पहचान रखती है तथा हिन्दी कहानी की विकास–यात्रा में महत्त्वपूर्ण स्थान ग्रहण करती है।

ग्रन्थ – सूची

1. प्रकाश,उदय – मोहनदास द्य वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2006, बैक कवर
2. मिश्र, सत्यदेव – हिन्दी साहित्य का उत्तरवर्ती काल द्य लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज,2018,पृ. 236
3. प्रकाश, उदय – पॉल गोमरा का स्कूटर – वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2004, बैक कवर
4. प्रकाश,उदय – मोहनदास – वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2006,पृ. 14
5. प्रकाश,उदय – मोहनदास – वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2006,पृ. 81
6. प्रकाश,उदय – मोहनदास – वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2006, पृ. 82
7. प्रकाश,उदय – मोहनदास – वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2006, पृ. 82
8. राय, गोपाल – भाग – 3, हिन्दी कहानी का इतिहास 1976–2000 – राजकमल प्रकाशन,नयी दिल्ली,2014, पृ. 228–229

नविन्ता कुमारी
शोधार्थी
हिन्दी विभाग
संत जेवियर कॉलेज, राँची

18

'जूठन' और 'धरती धन न अपना' में दलित जीवन का यथार्थ

जागृति मिश्रा, डॉ. सुनील कुमार भाटिया

सारांश

दलित जीवन का यथार्थ भारतीय समाज की उस कठोर और कड़वी सच्चाई को सामने लाता है, जिसे सदियों तक दबाने, छिपाने और सामान्य बनाने का प्रयास किया जाता रहा। यह केवल गरीबी, अभाव या सामाजिक पिछड़ेपन की कहानी नहीं है, बल्कि यह उस पूरे जीवन–संघर्ष का दस्तावेज है जिसमें मनुष्य जन्म लेते ही अपनी योग्यता, मेहनत और व्यक्तित्व से पहले अपनी जाति से पहचाना जाता है। दलित साहित्य इसी भोगे हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति है। जब हम 'जूठन' तथा 'धरती धन न अपना' का अध्ययन करते हैं, तब स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि दलित जीवन केवल सामाजिक अपमान का ही नहीं, बल्कि आर्थिक पराधीनता, सांस्कृतिक बहिष्कार, स्त्री शोषण, शिक्षा से वंचितता, श्रम के अवमूल्यन और अस्तित्व की लड़ाई का जीवन है। इन दोनों कृतियों में दलित जीवन का जो यथार्थ सामने आता है, वह इतना मार्मिक, इतना जीवंत और इतना प्रामाणिक है कि पाठक केवल पढ़ता नहीं, बल्कि उसे महसूस करने लगता है।

'धरती धन न अपना' का मुख्य पात्र काली पूरे दलित समाज का प्रतिनिधि पात्र बनकर सामने आता है। काली कई वर्षों तक शहर में रहने के बाद जब अपने गाँव लौटता है, तब उसे गाँव की वास्तविकता पहले से भी अधिक भयावह दिखाई देती है। शहर में रहते हुए उसने जीवन का एक अलग रूप देखा था, जहाँ मनुष्य को कम से कम काम और श्रम के आधार पर पहचाना जा सकता था, लेकिन गाँव में लौटते ही उसे यह अहसास होता है कि यहाँ उसकी पहचान केवल उसकी जाति है। गाँव का वातावरण, लोगों का व्यवहार, सामाजिक संबंध और जीवन की परिस्थितियाँ उसे भीतर तक तोड़ देती हैं। उसे महसूस होता है कि वह जिस समाज में लौटा है, वहाँ मनुष्य की कीमत उसकी मेहनत से नहीं, बल्कि उसकी जाति से तय होती है।

काली की सबसे बड़ी इच्छा अपना घर बनाने की होती है। एक अपना घर–जहाँ वह सम्मान से जी सके, जहाँ उसे किसी के सामने झुकना न पड़े, जहाँ वह अपने अस्तित्व को महसूस कर सके। लेकिन दलित के लिए सपने देखना भी आसान नहीं होता। घर बनाना उसके लिए केवल निर्माण का कार्य नहीं, बल्कि आत्मसम्मान की लड़ाई बन जाता है। उसे हर कदम पर बाधाओं का सामना करना पड़ता है। आर्थिक अभाव तो है ही, उससे भी बड़ी बाधा सामाजिक व्यवस्था है, जो नहीं चाहती कि दलित आत्मनिर्भर बने। चौधरी और ऊँची जाति के लोग नहीं चाहते कि काली अपने पैरों पर खड़ा हो। परिणाम यह होता है कि अंत तक काली अपना घर नहीं बना पाता। उसका सपना अधूरा रह जाता है। यह अधूरा घर वास्तव में दलित समाज के अधूरे सपनों का प्रतीक बन जाता है।

काली केवल व्यक्तिगत स्तर पर संघर्ष नहीं कर रहा होता, बल्कि जिस चमादड़ी बस्ती में वह रहता है, वहाँ पूरा दलित समुदाय उसी पीड़ा को जी रहा होता है। उस पूरी बस्ती में किसी के पास अपनी जमीन नहीं है। जमीन के बिना जीवन केवल दूसरों पर निर्भर होकर जीने का नाम बन जाता है। वे खेती नहीं कर सकते, अपना अन्न नहीं उगा सकते, अपना भविष्य नहीं बना सकते। उनका पूरा जीवन चौधरियों पर निर्भर है। काम भी वही देंगे, मजदूरी भी वही तय करेंगे, सम्मान भी वही छीनेंगे। यदि चौधरी काम न दें तो उनके पास भूखों मरने के अलावा कोई विकल्प नहीं बचता। यही कारण है कि जब दलित समुदाय शोषण के विरुद्ध बहिष्कार करने का प्रयास करता है, तब भी वे अधिक समय तक टिक नहीं पाते। भूख उन्हें फिर उसी व्यवस्था के सामने झुकने को मजबूर कर देती है। यह स्थिति बताती है कि आर्थिक गुलामी किस प्रकार सामाजिक गुलामी को और मजबूत करती है।

काली का जीवन केवल आर्थिक संघर्ष तक सीमित नहीं है। उसे लगातार अपमान सहना पड़ता है। बिना किसी गलती के मारपीट, गालियाँ और अमानवीय व्यवहार उसके जीवन का हिस्सा बन जाते हैं। उसके साथ ऐसा व्यवहार किया जाता है जैसे वह इंसान नहीं, बल्कि पशु हो। दलित होने का अर्थ वहाँ केवल मेहनत करना नहीं, बल्कि अपमान को भी जीवन का हिस्सा मान लेना है। लेकिन काली के भीतर कहीं न कहीं आत्मसम्मान जीवित है, इसलिए वह भीतर ही भीतर टूटता भी है और संघर्ष भी करता है।

गाँव की चमादड़ी बस्ती का चित्रण दलित जीवन की भयावह सच्चाई को उजागर करता है। बस्ती इतनी गंदी है कि वहाँ रहना भी कठिन है। चारों ओर गंदगी, बदबू, अस्वास्थ्यकर वातावरण और जीवन की मूल सुविधाओं का अभाव है। बरसात के दिनों में यह स्थिति और भी भयानक हो जाती है। पानी घरों में भर जाता है, दीवारें गिरने लगती हैं, छप्पर टपकने लगते हैं, घर टूटने लगते हैं। लोगों के पास न तो सुरक्षित घर हैं और न ही कहीं और जाने का विकल्प। पीने के पानी की समस्या अलग है। जब गाँव के कुएँ से पानी लेने की बात आती है, तब दलितों को यह कहकर रोक दिया जाता है कि उनके छू लेने से कुआँ अशुद्ध हो जाएगा। यह केवल पानी से वंचित करना नहीं, बल्कि मनुष्य की गरिमा को नकार देना है। जब नल के पास बच्चे ने गंदगी फैलाई तब गुस्से में पादरानी ने कहा ष्अब मैं किसी को पानी

नहीं भरने दूंगी।ष्1 प्यास से तड़पते हुए भी उन्हें यह एहसास कराया जाता है कि वे इस समाज के बराबर सदस्य नहीं हैं। जब दलित महिलाएं पंडित संतराम के कुएं से पानी लेने गई और उस से विनती की तब उसने कहा कि – ष्तो तुम मंदिर के कुएं पर चढ़ना चाहती हो ? ष्2 उसे डर था कि कुआँ अशुद्ध न हो जाए ।

दलित स्त्रियों की स्थिति इस पूरे परिदृश्य में और भी अधिक पीड़ादायक है। वे केवल जातिगत शोषण ही नहीं, बल्कि लैंगिक शोषण का भी शिकार होती हैं। प्रीतो का जीवन शुरू से ही शोषण से भरा हुआ है। उसने जो अपमान और पीड़ा झेली, वही उसकी बेटी के हिस्से भी आती है।

यह बताता है कि दलित स्त्रियों का शोषण केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि पीढ़ी दर पीढ़ी चलता हुआ सामाजिक सच है। गाँव में स्त्रियों को सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता। ऊँची जाति के पुरुष उनकी देह को अपनी संपत्ति समझते हैं। सबसे दुखद बात यह है कि इतने अत्याचारों के बाद भी समाज इसे सामान्य मान चुका है। कई स्त्रियाँ इन घटनाओं को हँसी–मज़ाक में बताती दिखाई देती हैं, मानो यह जीवन का सामान्य हिस्सा हो। प्रसिन्नी पंडित संतराम और बग्गे की माँ रक्खी का किस्सा लहक–लहक कर सुनाने लगी तो स्त्रियां हंसी के मारे लोटपोट हो गयी।3

यह स्थिति बताती है कि शोषण जब बहुत पुराना हो जाए, तो वह सामान्य लगने लगता है।

ज्ञानों का चरित्र इस संदर्भ में विशेष महत्व रखता है। ज्ञानों के भीतर विद्रोह है। वह अन्याय को सहज स्वीकार नहीं करती। उसके भीतर अस्वीकार की भावना है। जब वह काली से प्रेम करती है और गर्भवती हो जाती है, तब उसका प्रेम उसके जीवन के लिए खतरा बन जाता है। अंततः उसकी अपनी माँ ही उसे ज़हर दे देती है। ज्ञानो की मां जस्सो को जब ज्ञानो के गर्भवती होने की खबर मिली तब उसने मंगू से कहा कि – ष्तू कहीं से मुझे संखिया (जहर) ला दे , मैं उसको दे दूंगी। यह मर गई तो सारी बात खत्म हो जाएगी । अगर इस हाल में जिंदा रही तो तुम्हें भी कोई लड़की नहीं देगा ।''4

यह घटना केवल एक पात्र की मृत्यु नहीं है, बल्कि उस समाज की क्रूरता का प्रतीक है जहाँ जाति प्रेम, मातृत्व और मानवीय संबंधों से भी बड़ी हो जाती है।

नंदसिंह का चरित्र दलित चेतना के दूसरे आयाम को सामने लाता है। वह अपनी जातिगत पहचान से संतुष्ट नहीं है। वह समझता है कि जिस समाज में जन्म के आधार पर सम्मान छीना जाता है, वहाँ बदलाव जरूरी है। इसी कारण वह धर्म परिवर्तन का निर्णय लेता है और ईसाई धर्म अपनाता है। उसका यह निर्णय केवल धर्म परिवर्तन नहीं, बल्कि सामाजिक मुक्ति की तलाश है। वह वह सब पाना चाहता है जो एक इंसान होने के नाते उसका अधिकार है, लेकिन जो उसकी जाति के कारण उससे छीन लिया गया है। नंदसिंह के ईसाई बनने की बात पर संतराम ने कहा कि –नंदसिंह पहले सिख बना लेकिन ऊंची जात के किसी सिख ने उसे मुंह नहीं लगाया। अब वह क्रिस्तान बनकर भी चमार का चमार ही रहेगा य बल्कि कुछ नीचे ही गिर जाएगा । चमारों की बिरादरी से निकलकर चूड़ो–भंगिया में जा मिलेगा।5

दूसरी ओर 'जूठन' में ओमप्रकाश वाल्मीकि अपने जीवन के माध्यम से दलित जीवन की ऐसी सच्चाइयों को सामने लाते हैं, जो भीतर तक झकझोर देती हैं। बचपन से ही उन्हें जातिगत गालियाँ सुननी पड़ती हैं। उन्हें यह एहसास बार–बार कराया जाता है कि वे दूसरे बच्चों जैसे नहीं हैं। विद्यालय में शिक्षा पाने का अधिकार भी उनके लिए आसान नहीं है। पढ़ने के बजाय उन्हें सफाई करने के लिए मजबूर किया जाता है। स्कूल के मैदान में झाड़ू लगाना, गंदगी साफ करनाकृये सब उनके हिस्से इसलिए आते हैं क्योंकि वे दलित हैं। अन्य बच्चों के साथ ऐसा नहीं होता। यह शिक्षा व्यवस्था के भीतर मौजूद जातिवाद को उजागर करता है।

उनका बचपन अभावों से भरा है। खाने के लिए पर्याप्त भोजन नहीं। परिवार कई बार दूसरों के बचे हुए भोजन, अर्थात जूठन, पर जीवन बिताने को मजबूर होता है। यही 'जूठन' केवल भोजन नहीं, बल्कि पूरे दलित जीवन की विडंबना का प्रतीक बन जाती है। जो समाज अपने बचे हुए भोजन को भी सम्मान से नहीं देता, उसी भोजन पर एक पूरा समुदाय जीवित रहने को मजबूर है। इस अनुभव का वर्णन इतना मार्मिक है कि पाठक भीतर तक हिल जाता है। लेखक ने अपने समाज की दयनीय आर्थिक स्थिति का वर्णन करते हुए कहा है कि –जूठन चटखारे लेकर खाई जाती थी।6

ओमप्रकाश वाल्मीकि को केवल भूख और गरीबी ही नहीं, बल्कि जाति के नाम पर अपमानजनक कार्य भी करने पड़ते हैं। बैल की खाल उतारना, सुअर के बच्चे को काटना जैसे कार्य उनकी पसंद नहीं, बल्कि सामाजिक मजबूरी हैं। समाज ने कुछ कार्यों को जातियों के आधार पर बाँट दिया है और दलितों को उन्हीं कार्यों में बाँध दिया गया है। मेहनत करने के बावजूद उन्हें सम्मान नहीं मिलता। उनकी पहचान उनकी योग्यता से नहीं, बल्कि जाति से होती है।

जीवन में आगे बढ़ने के बाद, नौकरी मिलने के बाद और सामाजिक रूप से स्थापित होने के बाद भी यह स्थिति पूरी तरह

नहीं बदलती। कार्यालयों में जब लोगों को पता चलता है कि वे दलित वर्ग से आते हैं, तो व्यवहार बदल जाता है। जातिगत टिप्पणियाँ, दूरी और अपमान वहाँ भी उनका पीछा नहीं छोड़ते। कई लोगों ने उन्हें सलाह दी कि वे अपना उपनाम बदल लें ताकि लोग उनकी जाति न पहचान सकें, लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया। लेखक को कई लोगों ने सरनेम बदलने का सुझाव दिया परंतु उन्होंने अपनी पहचान को बरकरार रखा और सरनेम नहीं बदला ,वे कहते हैं कि– इस सरनेम के कारण जो दंश मुझे मिले हैं उसको बयां करना कठिन है। परायों की बात तो छोड़िए अपनों ने जो पीड़ा दी है वह अकथनीय है।7

उन्होंने अपनी पहचान को स्वीकार किया और उसके साथ डटे रहे। यह उनके आत्मसम्मान और दलित अस्मिता का सबसे सशक्त उदाहरण है।

उनकी बस्ती का वर्णन भी दलित जीवन की भयावह सच्चाई को सामने लाता है। इतनी गंदगी, इतनी बदबू, इतनी अव्यवस्था कि कोई बाहरी व्यक्ति एक पल भी वहाँ न रुक सके, लेकिन वहीं एक पूरा समुदाय पीढ़ियों से जी रहा है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी बस्ती का वर्णन करते हुए कहा है कि–ृ इस माहौल में यदि वर्ण व्यवस्था को आदर्श व्यवस्था कहने वालों को दो–चार दिन रहना पड़ जाए तो उनकी राय बदल जाएगी ।8

यह गंदगी उनकी पसंद नहीं, बल्कि सामाजिक उपेक्षा का परिणाम है। जिन लोगों को समाज ने किनारे धकेल दिया, उनके हिस्से यही बस्तियाँ आईं।

इन दोनों कृतियों का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि दलित जीवन का यथार्थ केवल व्यक्तिगत पीड़ा की कहानी नहीं है। यह सामूहिक अनुभव है। यह भूख का अनुभव है, अपमान का अनुभव है, श्रम के शोषण का अनुभव है, स्त्री की असुरक्षा का अनुभव है, शिक्षा से वंचित किए जाने का अनुभव है, प्रेम के कुचल दिए जाने का अनुभव है, और सबसे बढ़कर मनुष्य होकर भी मनुष्य न माने जाने का अनुभव है। काली और ओमप्रकाश वाल्मीकि दो अलग पात्र नहीं हैं, बल्कि भारतीय दलित समाज के दो जीवंत चेहरे हैं। एक उपन्यास का पात्र होकर भी वास्तविक लगता है, और दूसरा वास्तविक होकर पूरे समाज का प्रतिनिधि बन जाता है।

इन दोनों कृतियों में दलित जीवन का यथार्थ केवल पीड़ा तक सीमित नहीं है, बल्कि उसके भीतर प्रतिरोध, अस्मिता, संघर्ष और बदलाव की चेतना भी मौजूद है। यही चेतना दलित साहित्य को केवल साहित्य नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का दस्तावेज बनाती है।

संदर्भ सूची

1. जगदीश चंद्र, धरती धन न अपना, पृष्ठ सं. 134
2. वही, पृष्ठ सं. 135
3. वही, पृष्ठ सं. 130
4. वही, पृष्ठ सं. 207
5. वही, पृष्ठ सं. 87
6. ओमप्रकाश वाल्मीकि, जूठन, पृष्ठ सं. 19
7. वही, पृष्ठ सं. 158
8. वही, पृष्ठ सं. 11

शोधार्थी– जागृति मिश्रा

शोध निर्देशक–

डॉ. सुनील कुमार भाटिया

(विभागाध्यक्ष)

हिंदी विभाग, मानविकी संकाय

संत जेवियर कॉलेज, राँची

19

'मनीषा कुलश्रेष्ठ के कहानी संग्रह 'गंधर्व–गाथा' की कहानियों के पात्रों का विश्लेषणात्मक अध्ययन'

चंचल शर्मा, डॉ. सुमन शर्मा

सारांश

कहानी में चरित्र एवं पात्र एक मूल उपकरण है। इससे कहानी को चित्रात्मक अभिव्यक्ति मिल जाती है। मनीषा कुलश्रेष्ठ एक सफल रचनाकार हैं। उनका गंधर्व गाथा कहानी संग्रह अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। क्योंकि उन्होंने अपनी कहानियों की माध्यम से समस्याओं को उठाया है। उन्होंने अपनी कहानियों में मानव जीवन के विविध पहलुओं को प्रस्तुत किया है। कहानी में चरित्र – विधान ही वह मुख्य क्रिया है, जिससे कहानी को गहराई और सूक्ष्मता मिलती है। कहानीकार अपने आस–पास बिखरे चरित्रों को देखता, समझता व पहचानता है। इसी कारण धीरे–धीरे कहानी में लघुमानव की अभिव्यक्ति होने लगी और अनुभव तथा अनुभूतियों की प्रामाणिकता के लिए ऐसे चरित्र उभरने लगे जो जीवन को और अधिक सही ढंग से उजागर करने में सफल रहे। नट्यशास्त्र में नायक को किसी उच्च कुल से संबंधित होना चाहिए, ऐसा माना गया। लेकिन वर्तमान में कहानी में चरित्रों की इस परिपाटी को बदला है और एक आम जन की अभिव्यक्ति को महत्व दिया है। वहीं नायिका के लिए भी रूपवती, गुण, शील आदि को महत्वपूर्ण माना जाता था, परंतु आज की कहानियों में संघर्ष करती हुई स्त्रियों का चित्रण मिलता है, जैसा कि मनीषा जी अनेक कहानियों के उदाहरण से समझ सकते हैं है– 'कुरजां','कालिन्दी' आदि। कहानियाँ ऐसी ही स्त्रियों का चित्रण करने में सफल रही हैं। इनकी कहानियों में स्त्री पात्र ही नहीं, बल्कि पुरुष पात्र भी एक लघुमानव के संघर्ष को दर्शाते है, न केवल लघुमानव बल्कि एक सैनिक पुरुष पात्र के भी राष्ट्र के प्रति प्रेम को अभिव्यक्त करती है जैसेरू स्वांग कहानी के नायक 'गफ्फार ख़ां', एडोनिश का रक्त और लिली के फूल कहानी का नायक 'लेफ्टीनेंट' आदि।

बीज शब्द – कहानी, आधुनिकता, स्त्री–जीवन, यथार्थबोध, लोक–जीवन, पात्र।

प्रस्तावना

कहानी में कथानक के बाद सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष है पात्र–योजना, पात्र–सृष्टि या चित्रण–चित्रण का होता है। कहानियों की मूल संवेदना उसके चरित्रों के माध्यम से ही प्रकट होती है। वस्तुतः कहानी की कथावस्तु को गति प्रदान करना यह चरित्रों का ही कार्य होता है। सरजूप्रसाद मिश्र कहते हैं–"आज कहानियों में कथानक से अधिक महत्वपूर्ण चरित्रध्पात्र है।"1 कहानी में कथानक शरीर रूपी का है तो चरित्र चित्रण उसका प्राण है। कहानियां मनुष्य के यथार्थताओं से बना एक घर है। इसी कारण प्रत्येक कहानियों में पात्रों का होना अनिवार्य हो गया है। चाहे वे कम हो या जादा हो, धनी हो या निर्धन हो, बुद्धिमान हो या मुर्ख, स्थिर हो या गतिमान हो, सम हो या विषम हो, बिना पात्रों के कहानी की कल्पना करना व्यर्थ है। गद्य प्रबन्ध का दूसरा रूप कहानी है, जिसमें उपन्यास के तत्त्व विद्यमान हैं, पर यह उपन्यास का अंग नहीं, अलग स्वच्छन्द रूप है। इसमें आधुनिक युग में अधिक कलात्मक प्रयोग हुए हैं जिनके परिणामस्वरूप यह एक स्वतन्त्र रूप है। आज की कहानी और प्राचीन कहानी में अन्तर है। आज की कहानी साहित्य का एक लिखित रूप है। अतः अधिक कलात्मक है, प्राचीन कहानी प्रमुखतः मौखिक थी अतः कुतूहल और घटना–प्रधान थी। कथा और चरित्र का वैचित्र्य उसकी विशेषता थी, जबकि स्वाभाविक सूक्ष्म कला और मनोविश्लेषण आज की कहानी का गुण है।

मूल आलेख

भारतीय साहित्य में कहानियों का इतिहास पुराना है, परन्तु प्रश्न यह उठता है कि कहानी वास्तव में क्या है? इसका उत्तर देते हुए हिन्दी के ख्यातिलब्ध कहानीकार श्री भगवती प्रसाद वाजपेयी ने एक स्थान पर लिखा है कि "कहानी की सर्वसम्मत परिभाषा लिखना दुष्कर है। यों तो साधारण रूप से यह समस्त जगत ही भिन्न रुचियों से निर्मित हुआ हैय किन्तु जीवन की आधारभूत वृत्तियों में इतनी रुचि–भिन्नता प्रायः कम ही देखने को मिलती है जितनी कला के क्षेत्र में।" कहानी को किसी परिभाषा में समेटना बड़ा दुष्कर कार्य है।

अज्ञेय के अनुसार "कहानी जीवन की प्रतिछाया है और जीवन स्वयं एक अधूरी कहानी है, एक शिला है जो उम्र भर मिलती है और समाप्त नहीं होती।"3 परिभाषा का निर्माण विशेषताओं और आकार स्वरूपों की निश्चित उपलब्धि से ही सम्भव है। कहानी कला अभी तरुणाई पर है। अतः निश्चय ही कहानी की कोई सटीक परिभाषा कर पाना कठिन है। कहानी के तत्त्वों के माध्यम से यह कहा जा सकता है कि कहानी एक ऐसी विद्या के रूप में उभरी है जो कम शब्दों में अपने संदेश को जन–जन तक पहुंचाने में सफल होती रही है। इस सफल प्रयोग में कहानी के पात्रों का विशेष योगदान रहा है। कहानी में पात्रों के होने से कहानी के संदेश को आसानी से संवाद के माध्यम से प्रसारित किया जा सकता है। पात्र कहानी के महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। पात्रों के माध्यम से ही वास्तविकता को दर्शाया जाता है। जैसेः कोई राजनीतिक वातावरण में काम करने वाले पुरुष पात्र के माध्यम से कहानी में भ्रष्टाचार को दर्शाना या किसी स्त्री पात्र के माध्यम से स्त्री जीवन की विषमताओं को दर्शाया गया है। वस्तुतः

कहानी के पात्र यथार्थ जीवन की स्थिति को उजागर करने में अधिक सक्षम हो पाते है, इसलिए कहानी में पात्रों का महत्व अधिक बड़ जाता है।

मनीषा कुलश्रेष्ठ जिनका जन्म राजस्थान राज्य के जोधपुर जिले में 26 अगस्त, 1967 को हुआ। मनीषा जी ने अपने सामयिक संदर्भों को अपने साहित्य शिल्प में साकार किया हैं। एक कहानीकार के रूप में मनीषा कुलश्रेष्ठ आधुनिक युवा पीढ़ी की बहुप्रशंसित कथाकार में से एक है। उनकी कहानियां आधुनिकता की विषमताओं को दर्शाती हैं कि किस प्रकार समाज में विज्ञान, तकनीक एवं औद्योगीकरण का तो विकास हुआ है परन्तु सामाजिक के विचारों का विकास अभी–भी कही दूर है। गंदर्भ गाथा कहानी संग्रह व्यक्ति के जीवन के संघर्षों को दर्शाने में सफल रहा है। अतः मनीषा जी की कहानियों में प्रस्तुत पात्र ऐसे ही विचारों को उजागर करते दिखते हैं। उनके कहानी संग्रह गंधर्व–गाथा में मुख्य पात्रों को इन्हीं संकुचित विचार वाले व्यक्तियों से जीवन में समस्याओं को सहना पड़ता है। जैसे कि इस संग्रह की स्वांग कहानी के पात्र गफ्फार ख़ां को राजनीति और समाज दोनों जगह संकुचित मानसिकता वाले लोगों को झेलना पड़ता है।

गफ्फार ख़ां इस कहानी में एक संघर्षरत बहरूपिया कलाकार की भूमिका निभाता है। मनीषा जी का यह पात्र एक कलाकार के जीवन की वास्तविकता एवं उसके कला के प्रति प्रेम को दर्शाता है, कि कैसे वह बुजुर्ग हो जाने पर भी इस कला को नहीं छोड़ पा रहा है और बहरूपिया कला के लुप्त हो जाने की समस्या से भी वह स्वयं को दुःखी पाता है। गफ्फार ख़ां को कलेक्टर द्वारा पेंशन न देने की चिंता को दिखाया है साथ ही एक भ्रष्ट अधिकारी और भ्रष्ट प्रशासन व्यवस्था की पोल भी खोल दी है। नायक अपने समुदाय सहित सभी उपेक्षित लोक कलाकारों की विडम्बना का प्रतीक है कलेक्टर द्वारा ये कहना कि– "ऐसे कलाकार, जिनकी बूढी, मरती हुई कलाओं का कोई नामलेवा तक नही जिनके बच्चों तक ने उनकी कला को बेकार समझ कर छोड़ रखा है"4 तो एक तरह से गफूरिया को 'बहुरूपिया' लोक कला के प्रति समाज परिवार के लोगों द्वारा मिला नकारात्मक रवैया उनकी लोककला को क्षतिग्रस्त करते है। इसी तरह से लेखिका ने इस कहानी में गफूरिया और एक रिक्शे वाला के माध्यम से हिन्दू मुस्लिम के मन्दिर मस्जिद के आपसी वैरभाव के धार्मिक कट्टरता का वर्णन किया है कि अगर हिन्दू मुसलमानों के मस्जिद वाले इलाके में और मुसलमान हिन्दुओं के इलाके में चले जाते है तो कैसे ईंट भाटे बरसने लगते है रिक्शे वाले का गफूरिया को ये बताना कि "मैंने तो कोई जनेउ नही लगा रखी, न गेरू टीका, मैं ठहरा गरीब नीच जात का मजदूर, फिर वो मुझे कैसे हिन्दू समझ जाते है?"5 पिछली बार जब मैं इस इलाके में आया तो मेरे सिर पर एक ईंट आ पड़ी थी कहानी में प्रदर्शित एक ऐसी धार्मिक कट्टरता जो साधारण आम गरीब जनता का जिसमें सबसे ज्यादा शोषण होता है। अतः इस कहानी का नायक एक मध्यमवर्गीय व्यक्ति की परिस्थितियों और साथ ही एक कलाकार के अपनी कला के समाप्त होते जाने की चिंता को दर्शा रहा है। इस कहानी के नायक एक बहुत ही सरल व्यक्ति जो किसी जाति, धर्म को नहीं मानता वह मनुष्यता को सबसे बड़ा धर्म मानता है। अतः यहां मनीषा जी ने एक वृद्ध पुरुष पात्र की सृष्टि करके अनेक वृद्ध लोगों की वास्तविक स्थिति को दर्शाया है।

मनीषा कुलश्रेष्ठ की अधिकतम कहानियों में स्त्री जीवन की समस्याओं को उठाया गया है। वे एक स्त्री होने के नाते स्त्री की पीड़ा को बखूबी समझती हैं। मनीषा की कहानियों में स्त्री मुख्य पात्र के रूप में हमारे समकक्ष आती है जिनके माध्यम से उन्होंने अनेक स्त्रियों की पीड़ाओं को दर्शाने का प्रयास किया है। उदाहरण के लिएरू 'कालिंदी' कहानी, जिसमें मुख्य पात्र एक 'जमना' नाम की ही महिला है। इस कहानी की यह मुख्य पात्र है, कालिंदी एक ऐसे साहसी महिला है जो अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ती है। वह अपना जीवन स्वाभिमान से व्यतीत करने के लिए किसी भी काम को करने के लिए तैयार हो जाती है। वह इस कहानी में एक जागरूक मां होने का किरदार भी निभाती है। 'कालिंदी' नारी जीवन की कटु यथार्थ का कच्चा चिट्ठा पेश करती है। जीवन चलाने की मजबूरी के खातिर देह व्यापार में लगी औरतों के जीवन के मार्मिक प्रसंगों को कहानी बेहतरीन तरीके से बयाँ करती है। यह समाज के एक ऐसी औरत की स्थिति को दर्शाती है, जहाँ कस्टमर का आना भी डरावना है और न आना भी। लेखिका लिखती है कि–"कस्टमर शब्द उस गली के हम उम्र बच्चों के बीच एक डरावना शब्द था। एक पिशाच जो औरतों का गला दबाया करता था। औरतें उसकी गिरफ्त में कराहतीं थीं। एक पिशाच जिसके आने से.... कभी कटोरदान में रोटी कम पड़ जाती थीं या फिर.... बस्ती तां सब्जी या शोरबे के बिना ही खानी होती थीं।"6 यहाँ हम उस मजबूरी को स्पष्टतः समझ सकते हैं कि पेट की आग के आगे मनुष्य को और यहाँ खा स्त्री को कितने कड़वे घूँट पीने पड़ रहे हैं। इस प्रकार 'कालिंदी' कहानी जमुना की व्यथा–कथा के माध्यम से स्त्री जाति के एक विशेष वर्ग की पड़ताल का चरित्र उजागर करती है।

'कुरजां' कहानी की पात्र 'कुरजां' एक ऐसी स्त्री पात्र है, जो समाज के लिए अभिशाप है। समाज उसे 'डायन' मानता है। लोगों का मानना है कि उसके कारण गाँव में अशुभ घटनाएँ

घटती है, इसलिए उसे गांव से निकाल दिया जाता है। समाज की स्त्री के प्रति दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए महादेवी वर्मा लिखती हैं "हम देवता की भूख तो समझते हैं पर मानवी की नहीं।"7 अतः स्त्री की पीड़ा को समाज ने हमेशा नजरअंदाज किया है, जब समाज स्त्री को बढ़ते हुए या कष्ट में देखता है तो उसका जिम्मेदार वह स्त्री को ही ठहराता है। उसका एक बेटा भी है जो इस कहानी के मुख्य पात्र में से है गाँव में एक नए मास्टर भी इस कहानी के मुख्य पात्र है। कुरजां एक बहुत ही बहादुर महिला पात्र में से एक है। वह अपने बालक के लिए समाज से लड़ जाती है, क्योंकि लोग उसके बेटे को स्कूल में जाने से रोकते हैं। परन्तु वह अपने बेटे को स्कूल भेजती है। और मास्टर जी बहुत ही आधुनिक विचार वाले व्यक्ति है, उसके बेटे को उसके घर जाकर भी पढ़ाते हैं। लोग उनसे कहते हैं कि आप वहां मत करें जाइए वह डायन है, लेकिन वह मानते हैं कि ऐसा कुछ नहीं है। यह सब अंधविश्वास है। कुरजां सशक्त स्त्री पात्र के रूप इस कहानी में दर्शानी गई है। वह स्वयं की अस्मिता के लिए और अपने बेटे के उज्जवल भविष्य के लिए गाँव तक को छोड़ देती है। क्योंकि वह जानती है कि गांव के लोग उसके बेटे को जीने नहीं देंगे। ऐसा करके वह एक मां की ममता को सर्वोपरि रखती है। किसी भी मां के लिए उसके बालक का सुख महत्वपूर्ण है और उस सुख के लिए वह किसी से भी लड़ सकती है, यहां तक कि समाज से भी ऐसा ही इस कहानी की मुख्य पात्र कुरजां करती है।

इस संग्रह की 'फांस' कहानी है। जिसकी नायिका एक अंतिमा नाम की युवती है। अंतिमा एक मातृविहीन पुत्री है। वह अपने पिता के साथ रहती है। उसकी दो बड़ी बहने हैं, जिनका विवाह, हो चुका है। उसके पिता उसे स्वीकारते नहीं है। क्योंकि वह एक बेटा चाहते थे, उनके तीनों बेटियाँ ही हुई। अंतिमा अपने पिता द्वारा यौन शोषण का शिकार होती है। उसका पिता बहुत ही निर्दयी और घिनौना किस्म का इंसान है। वह अपनी स्वयं की बेटी के साथ यौन शोषण करता है। वह अक्सर नशे में अपनी बेटी के साथ ऐसा करता है। वहीं अंतिमा एक ऐसी पात्र है, जो पिता कि हरकतों का जबाव देना चाहती है, लेकिन ऐसा कर नहीं पाती "उसने सोच रखा था कि अगली बार शराब के नशे में पिता ने ऐसी–वैसी कोई हरकत की तो उसका सिर दीवार से फोड़ देगी।"8 अंतिमा एक बहादुर पुत्री की तरह अपने पिता की इन हरकतों का जवान तो देना चाहती है , परन्तु खून के रिश्ते की भावना उसे ऐसा करने से रोक लेती है। वह एक ओर तो उसे मारना चाहती है,तो वहीं दूसरी ओर यह ख्याल भी आता है कि वह उसका जन्मदाता है, यही बात फांस की तरह उसे चुभती रहती है। वह इस फांस को निकाल फेंकना चाहती है। महादेवी वर्मा लिखती हैं "पुरुष का जीवन एक संघर्ष से आरंभ होता है और स्त्री का आत्मसमर्पण से।"9 एक दिन अंतिमा पिता की मृत्यु हो जाती है और इसका वह बिल्कुल शोक नहीं मानती बल्कि स्वयं अपने पिता की अर्थी को कंधा देती है और समाज को यह दिखाती है कि एक पुत्री का होना भी आवश्यक है। वह एक क्रूर पिता की बहादुर पुत्री के रूप में हमारे समकक्ष आती है। अतः ऐसा करके वह समाज में व्याप्त इस रूढ़ी को समाप्त करती है कि बेटा ही पिता की अर्थी को कंधा देगा, जबकि वह बेटी होते हुए भी अपने शोषणकारी पिता की अर्थी को कंधा देती है।

मनीषा वृद्ध, स्त्री के अलावा आधुनिक युवा और वयस्क महिला के माध्यम से पुरानी एवं नई पीढ़ी के विचारों का तो अंतर दिखाया ही है साथ ही संस्कारों की एकता को भी दर्शाया है। व्यक्ति अपने विचारों को जल्दी बदल लेता है, लेकिन अपने संस्कारों को जल्दी नहीं बदल पाता और यही कारण है कि इस कहानी के बिगड़ैल बच्चे अंत में उस वयस्क महिला के संकट के समय उसके लिए फरिश्ते बन जाते हैं। उदाहरण के लिएरूदृइस संग्रह की 'बिगड़ैल बच्चे' कहानी, जो कि तीन युवा पत्रों और एक महिला पात्र के इर्द गिर्द घूमती है। इस कहानी के तीनों पात्र आधुनिक युवा पीढ़ी के दृष्टिकोण को दर्शाते है, वहीं महिला एक पुराने जमाने की सोच रखने वाली है। वह उन युवाओं के प्रति संस्कारहीनता और मूल्यहीनता की धारणा बना लेती है। जबकि वे तीनों युवा पहनावे और खानपीन से आधुनिक है लेकिन उनके भीतर विनम्रता और संवेदना भरपूर है। तीनों युवा उस महिला को चोट लगने पर उसकी मदद करते है। यह दर्शाता है कि वे एक जागरूक युवा है। इस कहानी के तीन युवा पात्र की वजह से उस वृद्ध महिला की जान बचती है। इस प्रकार ये युवा अपनी सजगता का परिचय भी देते है। इस कहानी का शीर्षक भले ही बिगड़ैल बच्चे हों, लेकिन वे बच्चे पुरानी और नई पीढ़ी के मध्य सामंजस्य को दर्शाते हैं। किस प्रकार आधुनिक होने के बावजूद भी वे अपने बड़ों के प्रति अपने कर्तव्य को निभाते है और उस महिला की उनके प्रति धारणा को गलत साबित करते हैं। हमें कभी भी किसी को जाने बगैर उसके प्रति अनुचित धारणा नहीं बनानी चाहिए, क्योंकि हो सकता है कि वह व्यक्ति वैसा न हो जैसा हम सोच रहे हैं। वह महिला कहती है"उन युवा बिगड़ैल फरिश्तों ने मुझे पूरी तरह संभाल रखा है।"10

उपर्युक्त कहानियों के मुख्य पात्र यथार्थ की अभिव्यक्ति कर रहे है। चाहे वह स्त्री पात्र हो या पुरुष पात्र उनके प्रमुख पात्रों का विश्लेषण करने पर हम यह कह सकते है कि उनकी कहानियों में अधिकांशतः स्त्री स्वर को महत्व दिया गया है वे स्त्री के जीवन की विडंबनाओं को अपनी कहानियों के माध्यम से

सफलता से चित्रित कर पाई हैं। वहीं इस संग्रह की कहानियों गौण पात्र भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितने कि मुख्य भले ही कहानी उनके इर्द गिर्द न घूमती हो लेकिन वे मुख्य पात्र के साथ–साथ चलकर कहानी को विस्तार देने में सहायता अवश्य करते हैं।

सहायक पात्र, जिन्हें गौण पात्र भी कहा जाता है, कथा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, लेकिन प्राथमिक भूमिका नहीं। वे कथा को गहराई, रंग और हास्य प्रदान करते हैं और कथानक तथा मुख्य पात्र के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। गौण पत्र मुख्य पात्र की तरह महत्वपूर्ण तो नहीं होते लेकिन मुख्य पात्रों से साथ–साथ में चलती हूं और कहानी को विस्तार देते है। इस संग्रह की ग्यारह कहानियों में अनेक गौण पात्र है जैसे स्वांग कहानी में गफ्फार ख़ां की पत्नी, कालिंदी कहानी में कालिंदी की सहेली जॉली, एडोनिश का रक्त और लिली के फूल में मेजर, खरपतवार कहानी में डेनियल का दोस्त पिंटो, बिगड़ैल बच्चे में दो वृद्ध पति पत्नी, कुरजां कहानी में मास्टर और रावले, फांस कहानी में अंतिमा का मित्र जयदीप और उसकी अम्मा, वही गंधर्व गाथा में नायिका का डॉक्टर। इस संग्रह के प्रमुख गौण पात्र है जो कहानियों के विस्तार में सहायता करते है और मुख्य पात्र के साथ चलते हैं। मनीषा की कहानियों में गौण पात्र उतने ही महत्वपूर्ण है जितने कि मुख्य, क्योंकि कहानी पात्रों के द्वारा ही विस्तार पाती है। कहानी में सभी पात्र अपने–अपने समय पर महत्वपूर्ण होते है। मुख्य पात्रों के भाई बहन सभी संबंधी सभी कहानी को विस्तार देने में सहायता करते हैं तथा मुख्य पात्रों के किरदार को भी विस्तृत करते हैं। वह स्थाई तो नहीं होते परंतु कहानी में विचरण करते रहते हैं। कहानी में अनेक छिट पुट पात्र भी होते हैं जो केवल एक या दो बार ही कहानी में नजर आते हैं। अतः पात्र कहानी के सबसे महत्वपूर्ण तत्त्व में से है। पात्रों के द्वारा ही कहानी की कथा को कहा जा सकता है। इसलिए कहानीकार पहले पात्रों का सृजन करता है, ताकि कहानी को बड़ा सके। अतः इस संग्रह के सभी गौण पात्र अपना अलग अस्तित्व रखते है। वे मुख्य पात्रों जितने ही महत्वपूर्ण हैं। इसलिए इस संग्रह के प्रत्येक पात्र की समीक्षा करना महत्त्वपूर्ण हो जाता है। अतः कहानी में मुख्य और गौण पात्र दोनों ही आवश्यक हैं। इनके बिना कहानी की कलात्मकता अधूरी है।

गफ्फार ख़ां की पत्नी एक बहुत ही नेक दिल की महिला है। वे अपने पति के संकटों उनके साथ हमेशा खड़ी रही हैं। उन्होंने कभी गफ्फार ख़ां को उनके कलाकार होने के लिए हीनता अनुभव नहीं किया, बल्कि वे उनकी कला पर हमेशा गौरवान्वित अनुभव करती रही हैं। जहां गफ्फार ख़ां की बेटी उनकी बहरूपिया कला को लेकर नाखुश रहती है, वहीं उनकी पत्नी बुढ़ापे तक उनका सहयोग करती हैं। वे एक अच्छी जीवन साथी के रूप में हमारे समकक्ष आती हैं। कालिंदी कहानी की पात्र कालिंदी की सहेली एक बहुत ही मददगार सहेली है। जब कालिंदी अपने वैश्यावृति के काम में थी, उसने ही उसे वहां से बाहर निकलने में मदद की और सेल्सगर्ल का काम में लगवाया और बाद में न्यूड मॉडल के। जब कालिंदी काम पर जाती थी तो उसकी सहेली जॉली उसके बेटे का ध्यान रखती और उसकी पढ़ाई में भी अपना पूरा सहयोग करती। जॉली एक अच्छी सहेली भूमिका इस कहानी में निभाती है और दूसरों को सीख भी देती है कि हमें हमेशा अपने मित्रों की संकट में सहायता करनी चाहिए,नाकि अपने फायदे के लिए उनका उपयोग करना चाहिए। ऐसी ही खरपतवार कहानी में नायक का मित्र, मित्रता की मिशाल कायम करता है।

खरपतवार कहानी के नायक का मित्र पिंटो भी है, जो उसके जीवन से जुड़े सभी प्रश्नों को हल करने में मदद करता है पर नायक अपने मित्र की सलाहों को गंभीरता से कम लेता है। पिंटो एक समझदार और सुलझा हुआ व्यक्ति है। वह चीजों को सीधा हल करना जनता है। वह अपनी समझदारी का उपयोग करके अपने मित्र को भी सलाह देता है पर मित्र उसकी सलाहों को नजरअंदाज करता है। अतः वह एक समझदार मित्र की भूमिका निभाता है। इस संग्रह के सबसे प्रमुख गौण पात्र हैं दो वृद्ध दंपत्ति जो अपनी रूढ़िवादी सोच को दर्शाते है। वे अपने से आगे वाली पीढ़ी के प्रति यह सोच रखते है कि उनमें संस्कार नहीं होते वे हमेशा अपने से बड़ों का निरादर करते है। वर्तमान युवा पीढ़ी एक बिगड़ी हुई पीढ़ी है, ऐसी उनकी विचारधारा है। प्रत्येक व्यक्ति को यह समझना चाहिए जो हमारे साथ होता था, वह आगे भी हो ऐसा आवश्यक नहीं। प्रत्येक पीढ़ी अपने समयानुकल परिवर्तन करती है, लेकिन महत्वपूर्ण यह है के वह अपने मूल्यों को ना भूले बल्कि उनके उचित मूल्यों की वृद्धि अवश्य कर ले और जो अनैतिक है उसे छोड़ दे। लेकिन इस बिगड़ैल बच्चे कहानी के गौण पात्र ये वृद्ध दंपत्ति तीन युवाओं को सिर्फ देखने मात्र से उनके प्रति अपने मन में धारणा विकसित कर लेते हैं। युवा पीढ़ी को लेकर वह कहते है"यह युवा पीढ़ी कुछ ज्यादा ही लापरवाह है।३३. ये युवा हमें वृद्धाश्रम के अलावा क्या देंगे? महास्वार्थी है यह पीढ़ी।"11

कुरजां कहानी के पात्र मास्टर और रावले ऐसे पात्र है जो दोनों एक दूसरे के विपरीत हैं। मास्टर जहां एक आधुनिक विचारों वाले व्यक्ति है तो वहीं रावले एक अंधविश्वासी सोच रखने वाले है। मास्टर अपने काम को सेवा की तरह करता है। वह कम

पैसों में या बिना पैसों के भी बालकों को पढ़ता है। वह एक सेवा भाव वाला व्यक्ति है जो समाज के भले के लिए काम करता है। वह समाज को बदलने की भावना रखता है। उसका मानना है कि समाज को अंधविश्वास से बाहर निकालना चाहिए। वहीं रावले ऐसे अंधविश्वासों में फंसे है। उनके यहां बेटी का होना अशुभ माना जाता है। वे देवी मांग से बेटा मांगने गए पर बेटी हो गई, तो उन्हें लगता है देवी मां नाराज हो गई हैं। वे अपने भीतर वैज्ञानिक विचारों को विकसित नहीं कर पाए है। गांव में किसी शादी में किसी की मृत्यु हो गई या कोई भी घटना घट गई तो उसका जिम्मेदार एक मासूम महिला को बना देते है। ताकि उनसे कोई सवाल न कर सके, कोई भी घटना हुई है, वह उनकी लापरवाही से हुई है। वहीं मास्टर एक ऐसा पात्र है जो गांव के लोगों को समझाता है, कि अन्धविश्वास से केवल समाज में अशांति फैलती है। मास्टर का व्यक्तित्व बहुत ही सहज एवं सरल है। वह उस महिला की मदद करना चाहता है, जिसे लोगों ने डायन मान लिया है या कहे कि बना दिया है। मास्टर जैसा पात्र इस कहानी में एक उम्मीद की किरण की तरह है जिसके सहारे कहानी रोचक बनती है। लेकिन इस उम्मीद की किरण को कोई देख नहीं पाता और वह आकर चली जाती है। मास्टर का चरित्र भी ऐसा ही है वह कहानी में होते हुए भी, कहानी के अन्य पात्र उसे नजरंदाज करते हुए मालूम होते हैं। वह एक सच्चा व्यक्ति है जो सारे लोगों का भला चाहता है। अतः मास्टर का चरित्र पाठकों को प्रेरित करता है। वे भी उसकी तरह समाज को अन्धविश्वास के चंगुल से बाहर निकाल सकें।

फांस कहानी की नायिका का मित्र जयदीप बहुत ही बढ़िया और सहयोगी व्यक्तित्व का लड़का है। वह हमेशा अंतिमा के साथ खड़ा रहा है। जयदीप सदैव अन्तिमा के मानसिक दुखों का साथी रहा है। जब भी अंतिमा उदास होती वह जयदीप से अपने दुखों को बांटती। और जयदीप हमेशा उस प्रसन्न रखने की कोशिश करता रहता। जयदीप ऐसा पुरुष मित्र है जो मित्र भी है और नायिका का पड़ोसी भी। वह एक अच्छा पड़ोसी और मित्र दोनों है। वहीं नायिका की अम्मा एक ऐसी पात्र है जो बेटी के होने से घर का नाश हो जाता है, ऐसा विचार रखती हैं, जबकि स्वयं वे एक महिला है और उन्होंने जीवन के हर पड़ाव को देखा है, फिर भी वह नायिका की परेशानी को नहीं भाप पाती। वह इस कहानी की ऐसी पात्र है जो मुख्य पात्र को नीचे की ओर खींचती हैं। वहीं नायिका का मित्र जयदीप यह आश्वासन देता है कि वह हर परिस्थिति में उसके साथ है, वह कहता है "मैं जीवन भर तुम्हारी परवाह करूंगा, जब भी, पुकारोगी, उपस्थित होऊंगा।"12 अतः जयदीप बहुत ही परवाह करने वाले पुरुष की भूमिका को दर्शाती है। वह अपनी मित्र को हर संकट से बाहर निकालना चाहता है और हमेशा उसके साथ रहने की भी अभिलाषा रखता है। अतः वह वर्तमान के साथ–साथ भविष्य की सोच रखने वाला व्यक्ति है। अतः उसका चरित्र यह प्रेरणा देता है कि एक पुरुष को स्त्री समझकर नहीं वरन एक मनुष्य के रूप में देखना चाहिए, तभी वह एक महिला की समस्याओं को समझ सकता है।

अतः मनीषा कुलश्रेष्ठ की अधिकतम कहानियों के पात्रों से कुछ मुख्य बातें निकलकर आती है, जैसेः सशक्त स्त्री चरित्र, प्रेम में हारे हुए स्त्री और पुरुष पात्र, आधुनिक विचारधारा वाले पात्र, कहीं रूढ़िवादी पात्र भी हमारे सामने आते हैं। इनकी इन कहानियों में कुछ पात्र ऐसे भी है जो एक दो जगह ही आकर रह गए हैं। उदाहरण के लिए, स्वांग कहानी में कलेक्टर जो केवल कहानी की शुरुआत में ही है, कालबेलिया नृतकाएं, कालिंदी कहानी में कॉलेज के प्रोफेसर और बच्चे जिनका जिक्र लेखिका ने एक जगह ही किया है, कुरजां कहानी में कालू को रावलों का चमचा है। ऐसे कुछ पात्र है जो कहानियों में संचरण करते है। अतः इस मनीषा जी की कहानियों में इन छोटे पात्रों की भी बड़ी भूमिका रही है। इन पात्रों की सहायता से कहानियों के कथानक में भरपूर मदद मिली है। मनीषा जी ने इन छोटे पात्रों का भी चयन बहुत ही गंभीरता से किया है। किस मुख्य पात्र के साथ किस गौण पात्र की आवश्यकता को उन्होंने ध्यान से परखा और उन्हें कहानियों में शामिल किया है। चरित्र चित्रण में रचनाकार चारित्रिक अभिव्यंजना की ओर तब सजग माना जाता है, जब वह किसी चरित्र की अधिक स्वाभाविक,सहज और विश्वसनीय बनाने के लिए मनुष्य की कमज़ोरियों को उद्घाघाटित करता चलता है। मानसिक अंतर्द्वंद्व और व्यक्ति जीवन के अंतर्विरोधों से उत्पन्न संघर्ष प्रक्रिया पर आधारित चरित्र चित्रण ही अपनी पूरी अभिव्यंजनापरक और संवेदनशीलता के साथ उभरता है। अतः कहानियों के चरित्र ऐसे होने चाहिए जिन्हें पढ़कर पाठक स्वयं को कहानी के पात्र के रूप में अनुभव कर सके। अतः वास्तविक चरित्र ही वास्तविक अनुभूति देते हैं।

छविनाथ त्रिपाठी के अनुसार "पात्र कथावस्तु के संचालक हैं,अतः निजी व्यक्तित्व रखते हुए भी इन्हें कथानक में घुला मिला रहना चाहिये। पात्रों के निर्माण में कल्पना की अपेक्षा कलाकार की अनुभूति अधिक सजग रहती है। पात्र, अतीत, वर्तमान या युग विशेष के हों, उनका पार्थिव एवं सप्राण होना आवश्यक है। कहानी के लिये पात्रों की संख्या निश्चित न होने पर भी कम से कम पात्रों का ही समावेश उचित है, क्योंकि अपनी लघु सीमा मैं वह बहुसंख्यक पात्रों के चरित्र को स्पष्ट नहीं कर सकती। उत्तम श्रेणी की कहानियों में दो से अधिक पात्रों के लिये

स्थान बनाना कठिन है। कभी–कभी पात्रों के सूजन का उद्देश्य एक हो श्भावनाश को दो दृष्टि कोणों से निरूपित करना, होता है, पर ऐसे स्थलों पर पात्र गौण बन जाते है। प्रारम्भ में पत्र, दृश्य रहते हुये भी अदृश्य, प्रस्तुत रहते हुये भी अप्रस्तुत रहें. तभी कहानी में रहस्य की सृष्टि होती है, यही रहस्य आनन्द बनता है तथा पात्र के चरित्र की विशेषता एक बार ही झलका देता है।"13 वस्तुतः मनीषा कुलश्रेष्ठ की कहानी के पात्र मानवीय संवेदनशीलता के यथार्थ को अभिव्यक्त करते हैं। उन्होंने अपने उद्देश्यों को अपने पात्रों के माध्यम से सशक्त पद्धति से प्रस्तुत किया है। प्रेमचंद जी के अनुसार"जब हमारे चरित्र इतने सजीव और आकर्षक होते हैं, कि पाठक अपने को उनके स्थान पर समझ लेता है, तभी उस कहानी में आनंद प्राप्त होता है। अगर लेखक ने अपने पात्रों के प्रति पाठकों में यह सहानुभूति नहीं उत्पन्न की, तो वह अपने उद्देश्य में असफल है।"14 मनीषा जी के चरित्र सीधा पाठकों के अंतःकरण को छू लेते हैं। लेखिका ने पात्रों की मूल स्थिति और मानसिकता को प्रस्तुत किया है। लेखिका ने अपने चरित्रों के माध्यम से वैश्या जीवन की विडम्बनाओं, आधुनिक युवा पीढ़ी के दृष्टिकोण,यौन शोषण, प्रेम आदि से उत्पन्न समस्यायों पर आधारित घटनाओं का वर्णन हुआ है। इसमें लेखिका ने 'फ्रीकश चरित्रों को दिखाया है जो, दुनिया से बेहद अलग है और यह संग्रह लेखिका के अपने विचार और दृष्टिकोण को भी दिखाता है इसलिए यह अन्य विधाओं से अलग और महत्वपूर्ण है। मनीषा जी को चरित्र के माध्यम से समस्याओं और आंतरिक द्वंद का चित्रण करने में काफी सफलता मिली है। इसलिए इनकी कहानियाँ कम समय में काफी उच्च कोटि पर पहुंच गई हैं। मनीषा जी ने पात्रों को साकार रूप देने के लिए अपनी कहानियों में ऐसे पात्र की सृष्टि कर दी, जिससे पाठक का मन उनके पात्रों के प्रति संवेदना अनुभव कर सके। उनके लगभग सभी पात्र सशक्त हैं। हमें यहां चरित्र के माध्यम से मनीषा जी के पात्रों का चयन, पात्रों की सजीवता तथा नारी और पुरुष पात्र आदि संदर्भ में विशेष रूप से अध्ययन करना उचित लगता है। मनीषा जी की पात्र चयन दृष्टि सुसंगत दिखाई देती है। उनकी कहानियों में स्थिति के अनुसार पात्रों का आगमन होता है। मनीषा जी ने यथार्थ से चुने गए पात्रों को अपने अभिप्राय सहित प्रस्तुत करने की सफल कोशिश की है। उनकी कहानियों में पात्रों की भरमार नहीं है, उन्हें चुनिंदा पात्रों को ही अपनी कहानियों में स्थान दिया है। मनीषा जी द्वारा चित्रित किए गए पात्रों के संवेग और भाव, स्थिति द्वारा पाठक के मन में तादात्म्य स्थापित हो जाता है, इसलिए इनकी पात्र योजना इतनी सफल हो सकी है। उनके पात्रों के आंतरिक और बाह्य भावों के साक्ष्य हमारे सामने स्पष्ट होते हैं। मनीषा जी ने अपने पात्रों की मनोदशा, व्यथा और पीड़ा को अपने भाव और शब्दों के माध्यम इतना स्पष्ट किया है कि पाठक उनकी ओर खींचा चला जाता है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मनीषा जी का पात्र चयन सहज एवं स्वाभाविक है, जिससे कहानियों की कथावस्तु समझने में मदद मिलती है तथा मानवीय संवेदनाओं को भी इनकी कहानी सफलता के साथ दर्शाती हैं।

संदर्भ सूची

1. हिंदी कहानी के आधार स्तंभ, सरजूप्रसाद मिश्र, अतुल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2002 , पृ. सं.10
2. हिंदी कहानियाँ एक अनुशीलन, प्रज्ञाचक्षु, एजुकेशनल बुक सिंडिकेट, बनारस, वर्ष 1959, पृ. सं. 3
3. वहीं पृ. सं. 3
4. गंधर्व गाथा, मनीषा कुलश्रेष्ठ, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2022, पृ. सं.13
5. वहीं पृ. सं. 27
6. वहीं पृ.सं. 30
7. श्रृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष 2012, पृ. सं. 15
8. गंधर्व गाथा, मनीषा कुलश्रेष्ठ, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2022, पृ. सं.145
9. श्रृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष 2012, पृ. सं.27
10. गंधर्व गाथा, मनीषा कुलश्रेष्ठ, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2022, पृ. सं.113
11. वहीं पृ. सं. 106
12. वहीं पृ. सं. 140
13. कहानी कला और उसका विकास, हिंदी विद्याभवन प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष 1951, पृ. सं. 31
14. कुछ विचार भाग–1, प्रेमचंद , सरस्वती प्रेस, बनारस, वर्ष 1945, पृ. सं 30

चंचल शर्मा
(शोधार्थी),
डॉ. सुमन शर्मा
हिंदी विभाग, कला संकाय
दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट
(डीम्ड टू बी यूनिवर्सिटी)
आगरा

20

औपनिवेशिक काल में अकाल तथा भारतीय समाज पर उनका विनाशकारी प्रभावः एक संक्षिप्त अध्ययन

विदित वीर यादव, डॉ यशपाल सिंह

सारांश :–

यह शोध पत्र ब्रिटिश ओपनिवेशिक काल के दौरान भारत में आये अकालों के बहुआयमी प्रभावों का विश्लेशण करता है। ब्रिटिश ओपनिवेशिक काल भारत के इतिहास का ऐसा अंधकारमय अध्याय है जिसमें इस महाद्वीप के सामाजिक ताने–बाने को पूरी तरह से खण्डित कर दिया। भारत में अकाल तो पहले भी पड़ते थे, परन्तु वे प्राकृतिक आपदाओं जैसे बरसात की कमी, अत्याधिक बाढ़ तक ही सीमित रहते थे। उस समय स्थानीय शासक जनता को एक सुरक्षा कवच प्रदान करते थे जिससे संकट गहरा नहीं बनता था। लेकिन ब्रिटिश काल के अकाल केवल प्राकृतिक आपदा ही नहीं थे बल्कि वे पूरी तरह से ब्रिटिश नीतियों से प्रेरित थे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी और ब्रिटिश आर्थिक शासन की गलत व लालच से परिपूर्ण आर्थिक नीतियों ने इन अकालों की भयावता को कई गुणा बढा दिया। इस शोध पत्र के माध्यम से अकालों का पारम्परिक ग्रामीण समाज की संरचना को कैसे हमेशा के लिए बदल कर रख दिया, यह विश्लेशण करने के की कोशिश की गई है।

ब्रिटिश शासन के दौरान भारत ने असंख्य भीशण अकालों का सामना किया। सबसे पहले 1770 में आए बंगाल के भीशण अकाल से शुरूआत हुई। प्लासी और बक्सर के युद्धों के बाद आई इस त्रासदी ने लाखों लोगों को असमय ही मौत के मुँह में धकेल दिया। जबकि कम्पनी प्रशासन कर वसूलने में व्यस्त रहा। प्रशासन की सही समय पर अनाज वितरण प्रणाली पूरी तरह से ध्वस्त हो गई। इसके बाद 1876 से 1878 के बीच दक्षिण और मध्य भारत में आया महान अकाल औपनिवेशिक क्रुरता का चरम बिन्दु बन गया। इतिहासकार माइक डेविस के अध्ययन के अनुसार तत्कालीन वायसराय लॉर्ड लिटन की रूढिवादी और बाजारवादी नीतियों के कारण लाखों लोग मारे गये। इसका प्रभाव द्वितीय विश्व युद्ध के बाद तक पड़ता रहा। ब्रिटिश प्रधानमन्त्री विस्टंन चर्चिल की साम्राज्यवादी नीतियों के कारण लाखों निर्दोश भारतीय भुखमरी का शिकार हो गये।

ब्रिटिश काल में जानलेवा अकाल कोई प्राकृतिक संयोग नहीं थे बल्कि ब्रिटिश साम्राज्य की सुनियोजित आर्थिक और व्यापारिक नीतियाँ थी, जैसे :– कृशि का अंधाधुंध व्यवसायीकरण, पारम्परिक खाद्यान्नों के स्थान पर नील, अफीम, जूट और चाय की खेती थोपे जाने के कारण लोगों के पास आपातकालीन स्थिति का सामना करने का कोई साधन नहीं था। साथ ही स्थायी बन्दोबस्त व रैयतवाड़ी जैसी क्रुर कर–प्रणालियों ने लोगों की बुरी तरह से कमर तोड दी। मुक्त बाजार प्रणाली से ब्रिटिश सरकार ने अकाल के चरम दौर में ही खाद्यान्न के निर्यात पर प्रतिबन्ध नहीं लगाया, जब भारतीय लोग सडकों पर दम तोड रहे थें तब लोगों टन भारतीय गेहूँ और चावल लंदन के बाजारों में पहुचाये जा रहे थे।

औपनिवेशिक भारत में अकाल और उनके विनाशकारी प्रभावों का अध्ययन हमें उस दर्दनाक सत्य से रूबरू कराता है, जहाँ एक समृद्ध कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था को साम्राज्यवादी नीतियों के अधीन होकर भुखमरी और गरीबी के दलदल में धकेल दिया गया था। अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध से लेकर बीसवीं सदी के मध्य तक, भारत में पड़ने वाले अकाल केवल वर्षा की कमी या प्राकृतिक कारणों से नहीं आए थे, बल्कि उनके मूल में ब्रिटिश सरकार की मुक्त बाजार (Laissez & faire) वाली नीति और अत्यधिक राजस्व वसूली का बड़ा हाथ था। जब भी फसलें विफल होती थीं, ब्रिटिश प्रशासन किसानों से राजस्व की मांग कम करने के बजाय अपनी तिजोरी भरने पर अधिक ध्यान देता था। इसके परिणामस्वरूप, जो किसान एक सामान्य वर्ष में अपना भरण–पोषण करने में सक्षम थे, वे एक खराब फसल के बाद ही पूरी तरह से टूट जाते थे और उन्हें अपनी जमीनें साहूकारों के पास गिरवी रखने के लिए मजबूर होना पड़ता था। इस प्रक्रिया ने भारत में 'ग्रामीण ऋणग्रस्तता' के उस दुष्चक्र को जन्म दिया, जिसने पीढ़ी–दर–पीढ़ी भारतीय किसानों को अपनी ही जमीन पर मजदूर बनने के लिए अभिशप्त कर दिया। इसके अतिरिक्त, रेलवे के विस्तार और आधुनिक संचार के साधनों का उपयोग भी स्थानीय निवासियों तक अनाज पहुँचाने के बजाय दूर–दराज के क्षेत्रों से खाद्यान्न को बंदरगाहों तक पहुँचाने और उसे विदेशों में निर्यात करने के लिए किया गया, जिससे अकाल प्रभावित क्षेत्रों में भी अनाज का कृत्रिम अभाव पैदा हो गया। सामाजिक रूप से, इन अकालों ने केवल करोड़ों लोगों की जान ही नहीं ली, बल्कि भारतीय समाज की पारिवारिक और सांस्कृतिक संरचना को भी बुरी तरह क्षतिग्रस्त कर दिया बड़े पैमाने पर पलायन, अनाथ बच्चों की बढ़ती संख्या, और महिलाओं के शोषण के मामलों ने समाज को नैतिक और आर्थिक रूप से खोखला कर दिया। इस त्रासदी ने भारतीयों के मन में ब्रिटिश 'न्याय और मानवता' के दावों के प्रति गंभीर अविश्वास पैदा किया, जिससे राष्ट्रवाद की वह लहर तीव्र हुई जिसने अंततः औपनिवेशिक जड़ों को हिलाकर रख दिया। अकालों के दौरान घटित यह मानवीय विभीषिका आज भी हमें याद दिलाती है कि जब शासन का एकमात्र उद्देश्य लाभ कमाना होता है, तो वह जनता के अस्तित्व के लिए कितना खतरनाक हो सकता है।

प्रस्तावना :–

औपनिवेशिक भारत के इतिहास में 1876–78 का 'महान अकाल' और 1943 का 'बंगाल अकाल' दो ऐसी वीभत्स और हृदयविदारक घटनाएं हैं, जिन्होंने न केवल करोड़ों लोगों का जीवन छीना, बल्कि ब्रिटिश साम्राज्य के कुकथित 'सुशासन' और मानवीय दावों की पोल खोलकर रख दी। इन दोनों महा–त्रासदियों का विस्तृत अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि कैसे ब्रिटिश औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों, व्यापारिक स्वार्थों और प्रशासनिक संवेदनहीनता ने एक प्राकृतिक चुनौती को जनसांख्यिकीय विनाश में बदल दिया।

अकाल के दौरान ब्रिटिश प्रशासन का रुख अत्यंत कठोर और लाभ–उन्मुख रहा। वे अनाज की कमी के बावजूद खाद्यान्न का निर्यात जारी रखते थे, ताकि वे अपने आर्थिक हितों और सैन्य अभियानों का वित्तपोषण कर सकें। इस नीति ने स्थानीय बाजारों में अनाज की कीमतों को आसमान पर पहुंचा दिया, जिससे सामान्य भारतीयों की क्रय क्षमता समाप्त हो गई। रेलमार्गों का जाल बिछाने का मुख्य उद्देश्य भी भारतीय संसाधनों और अनाज का तेजी से निर्यात करना था, न कि अकाल प्रभावित क्षेत्रों तक राहत सामग्री पहुँचाना। अकाल राहत केंद्रों की स्थिति भी दयनीय थी, जिन्हें अक्सर विनाशकारी शिविरों की संज्ञा दी जाती थी, जहाँ अव्यवस्था और भुखमरी के कारण मृत्यु दर अत्यधिक थी। 1880 के अकाल आयोग ने कुछ सुधारों की बात तो की, लेकिन औपनिवेशिक प्रशासन ने उन्हें बहुत धीमी गति से और आधे–अधूरे मन से लागू किया, क्योंकि उनका मुख्य लक्ष्य मानवीय राहत के बजाय अपनी सत्ता और राजस्व की सुरक्षा करना था।

1876–78 के महान अकाल ने मुख्य रूप से दक्कन के पठार, मद्रास, मैसूर, हैदराबाद और बॉम्बे प्रेसीडेंसी के विशाल क्षेत्रों को अपनी चपेट में ले लिया था। इस अकाल का मूल कारण 1876 में मानसून की भारी विफलता और उसके बाद की फसल बर्बादी थी, लेकिन इसे एक आपदा में बदलने का असली श्रेय ब्रिटिश प्रशासन की 'लाइसे–फेयर' (मुक्त बाजार) नीति को जाता है। उस समय के वायसराय लॉर्ड लिटन का यह मानना था कि बाजार की शक्तियां अकाल जैसी स्थिति को नियंत्रित कर लेंगी, इसलिए सरकार को हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है। इस अमानवीय नीति के कारण, देश के अन्य हिस्सों में अनाज उपलब्ध होने के बावजूद, उसे प्रभावित क्षेत्रों तक नहीं पहुँचाया गया, बल्कि व्यापारियों ने अधिक मुनाफे के लिए अनाज का निर्यात जारी रखा। स्थिति तब और भी भयावह हो गई जब ब्रिटिश सरकार ने 'अकाल राहत' को रोकने के लिए कठोर 'वर्क–हाउस' प्रणाली लागू की, जहाँ अकाल पीड़ितों को राहत पाने के लिए अमानवीय परिस्थितियों में शारीरिक श्रम करना पड़ता था। राजस्व वसूली में कोई रियायत न देने के कारण किसानों की कमर टूट गई, और अपनी जमीन व पशुधन गंवाने के बाद वे पूर्णतः कंगाल हो गए। इस दौरान अनुमानित 50 लाख से 1 करोड़ के बीच लोगों की मृत्यु हुई, जिसने भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सदियों पीछे धकेल दिया।

वहीं, 1943 का बंगाल अकाल बीसवीं सदी की सबसे बड़ी 'मानव–निर्मित' त्रासदी थी, जिसमें लगभग 30 लाख से अधिक लोगों ने भुखमरी और बीमारियों के कारण दम तोड़ दिया। यह अकाल मुख्य रूप से द्वितीय विश्व युद्ध की युद्धकालीन नीतियों का परिणाम था। जब जापान ने बर्मा (म्यांमार) पर कब्जा कर लिया, तो भारत में चावल का आयात ठप हो गया, लेकिन इस संकट के समय ब्रिटिश सरकार का ध्यान जनता के भरण–पोषण पर न होकर युद्ध प्रयासों को मजबूत करने पर था। ब्रिटिश शासन ने 'डिनायल पॉलिसी' के तहत बंगाल के तटीय क्षेत्रों से सैकड़ों नावें और परिवहन के साधन नष्ट कर दिए ताकि वे जापानी सेना के हाथ न लगें, लेकिन इसका सबसे बुरा असर स्थानीय मछुआरों और किसानों पर पड़ा जो खाद्यान्न वितरण के लिए इन्हीं साधनों पर निर्भर थे। इसके अतिरिक्त, सेना की जरूरतों को पूरा करने के लिए अनाज का जबरन अधिग्रहण किया गया, जिससे बाजारों में अनाज का कृत्रिम अभाव पैदा हो गया और कीमतें आम आदमी की पहुंच से पूरी तरह बाहर हो गईं। विंस्टन चर्चिल के नेतृत्व वाली ब्रिटिश सरकार ने न केवल सहायता भेजने से इनकार किया, बल्कि भारत से अनाज का निर्यात भी जारी रखा। इस काल में भुखमरी के साथ–साथ हैजा, मलेरिया और चेचक जैसी महामारियों ने भी अपना कहर ढाया, और कुपोषित जनता इनसे लड़ने में असमर्थ थी।

इन दोनों अकालों का भारतीय समाज पर प्रभाव केवल तात्कालिक मौतों तक सीमित नहीं था, बल्कि इसके गहरे दीर्घकालिक सामाजिक और आर्थिक परिणाम भी हुए। अकालों ने भारतीय ग्रामीण संरचना को पूरी तरह नष्ट कर दिया जो किसान कभी आत्मनिर्भर थे, वे अपनी जमीन खोकर भूमिहीन खेतिहर मजदूर बन गए, जिससे भारत में साहूकारी और ऋणग्रस्तता का एक ऐसा दुष्चक्र शुरू हुआ जिससे आज भी कई ग्रामीण परिवार उबर नहीं पाए हैं। परिवारों का विघटन हुआ, और बड़े पैमाने पर पलायन के कारण शहरों में असंगठित मजदूरी का एक नया वर्ग उभरा। इन अकालों ने भारतीय जनमानस के भीतर ब्रिटिश शासन के प्रति एक गहरा आक्रोश और अविश्वास पैदा किया।

दादाभाई नौरोजी, रमेश चंद्र दत्त और बाद के राष्ट्रवादी नेताओं ने अकालों को 'धन की निकासी' और औपनिवेशिक शोषण के प्रमाण के रूप में पेश किया। इन घटनाओं ने भारतीय राष्ट्रवाद की भावना को नई ऊर्जा दी और यह सिद्ध कर दिया कि एक विदेशी औपनिवेशिक शासन भारतीय जनता के अस्तित्व की रक्षा करने में पूरी तरह असमर्थ है। अतः, ये अकाल केवल प्राकृतिक आपदाएं नहीं थे, बल्कि वे उस साम्राज्यवादी ढांचे की क्रूरता का प्रतीक थे, जिसने भारत को गरीबी और भुखमरी की ओर धकेल दिया। आज इन अकालों का इतिहास हमें याद दिलाता है कि एक जिम्मेदार शासन की पहली प्राथमिकता अपने नागरिकों की खाद्य सुरक्षा और कल्याण होनी चाहिए।

निष्कर्ष :–

1876–78 और 1943 के अकाल केवल प्राकृतिक असंतुलन नहीं, बल्कि साम्राज्यवादी नीतियों के क्रूर परिणाम थे। इन्होंने भारतीय समाज को आर्थिक रूप से दरिद्र और सामाजिक रूप से असहाय बना दिया। आज भी, इन अकालों का इतिहास हमें याद दिलाता है कि एक जिम्मेदार शासन के लिए नागरिकों की खाद्य सुरक्षा और कल्याण किसी भी लाभ से ऊपर होना चाहिए। भारत का स्वतंत्रता संग्राम केवल राजनैतिक स्वतंत्रता की लड़ाई नहीं थी, बल्कि यह जीवन जीने के अधिकार की रक्षा के लिए भी एक संघर्ष था।

सन्दर्भ ग्रंथ :–

रमेश चन्द्र दत्त – The Economic History of India under Early British Rule (1902)

दादाभाई नौरोजी – Poverty and Un-British Rule in India (1901)

अमर्त्य रॉय – Poverty and Famines (1981)

माईक डेविस – Famines & the making of Third World (2001)

बी0एम0 भाटिया – Famines in India

डेविड ऑरनोल्ड – Famine in Peasant Consciousness and Peasant Action

विदित वीर यादव

शोध छात्र (इतिहास) नेट उतीर्ण

बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय रोहतक

मकान नं0 1360, सैक्टर–4, रेवाड़ी – 123401

मो0 नं0 9588564877

शोध निर्देशक

डॉ यशपाल सिंह

विभागाध्यक्ष (इतिहास)

बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय रोहतक

21

डॉ० रमेश पोखरियाल निशंक की कहानियां: विविध पक्ष

किरणा देवी, डॉ० भारती

सारांश :–

डॉ० रमेश पोखरियाल निशंक केवल एक सफल राजनीतिज्ञ ही नहीं, हिंदी साहित्य के एक प्रतिष्ठित और सशक्त रचनाकार भी हैं। उनकी लेखनी में ऐसी सरलता, सहजता और मधुरता है जो पाठकों के मन को तुरंत आकर्षित कर लेती है। उन्होंने कविता, उपन्यास और कहानियों के माध्यम से जीवन के अनेक रंगों को जीवंत रूप में प्रस्तुत किया है।डॉ. शनिशंकश का व्यक्तित्व बहुआयामी हैकृवे सामाजिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों से गहराई से जुड़े हुए हैं। उनकी रचनाओं में केवल कल्पना ही नहीं, बल्कि समसामयिक राजनीति, शिक्षा, राष्ट्र निर्माण और जनजीवन की सच्चाइयों का प्रभावशाली चित्रण मिलता है। उनकी कहानियाँ जीवन के अनुभवों से जुड़कर पाठकों को प्रेरणा और मार्गदर्शन प्रदान करती हैं। उनकी कृतियों में देशभक्ति की भावना अत्यंत प्रबल रूप से झलकती है। साहित्य और राजनीति में उनके उत्कृष्ट योगदान के लिए उन्हें राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कई सम्मान प्राप्त हुए हैं। उन्होंने अपने लेखन के माध्यम से समाज के पिछड़े और गरीब वर्ग की पीड़ा को संवेदनशीलता के साथ उजागर किया है, जो मानवता के गहरे संघर्ष को सामने लाता है। उनकी लेखनी हिंदी भाषा के विकास और समृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान दे रही है। उनकी कहानियों में मानवीय संवेदनाओं की गहराई और सकारात्मक दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, जो कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी आशा की किरण जगाए रखता है। साथ ही, वे अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज और शासन से जुड़े महत्वपूर्ण प्रश्न उठाकर जागरूकता फैलाने का कार्य भी करते हैं।

बीज शब्दः समसामयिक, देश भक्ति, संघर्ष, सामाजिक, साहित्यिक।

प्रस्तावना :–

डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक वर्तमान समय के एक प्रसिद्ध राजनेता और साहित्यकार हैं। उनका जन्म 15 जुलाई 1959 ई० को पिनानी गाँव, पौड़ी गढ़वाल में हुआ था। उन्होंने अपनी पढ़ाई हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर (उत्तराखंड) से की और कला में स्नातकोत्तर, पी.एच.डी तथा डी.लिट की डिग्रियाँ प्राप्त कीं।

निशंक ने हिंदी साहित्य की कई विधाओं जैसे कविता, उपन्यास, खंडकाव्य, लघुकथा और यात्रा–वृत्तांत में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्होंने अपने लेखन में सरल और सहज भाषा का उपयोग किया, जिससे उनकी कहानियाँ आसानी से समझ में आती हैं। उनकी कहानियों में उत्तराखंड (देवभूमि) की संस्कृति, समाज, धर्म, दर्शन और राजनीति का सुंदर चित्रण मिलता है। वे अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज में मौजूद संघर्ष, दुरूख, तनाव और आशा को व्यक्त करते हैं। साहित्य में उनके महत्वपूर्ण योगदान के लिए उन्हें कई पुरस्कार और सम्मान मिल चुके हैं। उनकी कहानियाँ समाज के हर वर्ग–राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक–से जुड़े विषयों को सामने लाती हैं और जीवन की सच्चाइयों को दर्शाती हैं। डॉ० निशंक की रचनाओं का विवरण इस प्रकार से है–

कहानी संग्रह :–

- रोशनी की एक किरण (1986)
- बस एक इच्छा (1989)
- क्या नहीं हो सकता (1993)
- भीड़ साक्षी है (1993)
- खड़े हुए प्रश्न (2006)
- विपदा जीवित है (2007)
- एक कहानी और (2008)
- मेरे संकल्प (2008)
- आओ कहानियों से सीखें (2009)
- मील के पत्थर(2010)
- टूटते दायरे (2010)
- अंतहीन (2014)
- केदारनाथ की सच्ची कहानियाँ(2014)
- वाह जिन्दगी (2016)
- कथाएँ पहाड़ों की (2016)

उपन्यास संग्रह :–

- मेजर निराला (1997)
- पहाड़ से ऊंचा (2002)
- बीरा (2008)
- निशांत (2008)
- अपना दृपराया (2010)
- पल्लवी (2010)
- प्रतिज्ञा (2011)
- भागोंवाली (2015)
- कृतघ्न (2015)

निशंक की कहानियाँ सामाजिक जीवन की विविध परिस्थितियों और समस्याओं का यथार्थपरक चित्रण प्रस्तुत करती हैं। उनकी रचनाओं में समाज में व्याप्त असमानता, गरीबी, बेरोजगारी तथा शोषण जैसी प्रमुख समस्याओं को गंभीरता के साथ

अभिव्यक्त किया गया है। वे समाज के सामान्य वर्ग के जीवन–संघर्ष, उनकी कठिन परिस्थितियों तथा दैनिक जीवन की चुनौतियों को संवेदनात्मक एवं यथार्थवादी दृष्टिकोण से प्रस्तुत करते हैं। उनकी कहानियों में केवल समस्याओं का वर्णन ही नहीं किया गया है, बल्कि उनके माध्यम से समाज के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने का प्रयास भी दिखाई देता है।

निशंक की साहित्यिक दृष्टि समाज–सुधार की भावना से प्रेरित प्रतीत होती है। वे सामाजिक कुरीतियों, रूढ़िवादी विचारधाराओं तथा अव्यवस्थित सामाजिक संरचनाओं का विरोध करते हुए मानवीय मूल्यों, नैतिक आदर्शों तथा सामाजिक समरसता का समर्थन करते हैं। उनकी रचनाएँ समाज में सकारात्मक परिवर्तन की आवश्यकता को भी रेखांकित करती हैं। जिंदगी, आशा तथा टेढ़ी–मेढ़ी रास्ते जैसी कहानियों में सामाजिक यथार्थ का प्रभावशाली चित्रण देखने को मिलता है, जहाँ मानव जीवन की समस्याएँ, संघर्ष और परिस्थितियाँ वास्तविक स्वरूप में प्रस्तुत की गई हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि निशंक की कहानियाँ केवल साहित्यिक दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक चेतना के विकास तथा समाज–सुधार के उद्देश्य से भी विशेष महत्त्व रखती हैं।

'भीड़ साक्षी है' कहानी जीवन की करुण सच्चाइयों को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती है। इसमें एक महिला, एक पुरुष और तीन मासूम बच्चे जमीन पर पीड़ा से तड़पते हुए दिखाई देते हैं, परंतु सबसे दुखद पहलू यह है कि उनकी सहायता के लिए कोई आगे नहीं आता। प्रशासन की लापरवाही के कारण आवश्यक सुविधाएँ लोगों तक नहीं पहुँच पातीं, जिससे वे असहाय होकर दम तोड़ देते हैं। इस संदर्भ में लेखक ने डॉ. तिवारी जैसे संवेदनशील और सेवाभावी व्यक्तित्व को भी उजागर किया है, जो मानवता की मिसाल हैं। इसके विपरीत, कुछ गैर–जिम्मेदार लोग इस पीड़ा को समझने में असफल रहते हैं, जो समाज की कठोरता को दर्शाता है। शनिशंक डॉ० तिवारी के विषय में विचार स्पष्ट करते हैं, मुझे पहले मरीजों को देखने दो, यह सब बातें बाद में हो सकती हैं कमरे में मरीज छटपटा रहे हैं, बेहोशी की हालत में अपस्ताल आए हैं। लोग हमेशा दूसरों के प्रति गलत भावना रखते हैं1 इस कथन से स्पष्ट होता है कि डॉ०तिवारी एक सच्चे और कर्तव्यनिष्ठ चिकित्सक हैं, जो अपने काम को सबसे पहले रखते हैं। जब उनके पास कोई गंभीर मरीज आता है, तो वे अन्य सभी बातों को बाद में करने की बात कहते हैं और तुरंत मरीज की स्थिति देखने को प्राथमिकता देते हैं। यहाँ मरीज की हालत बहुत गंभीर (बेहोशी की अवस्था) में बताई गई है, जिससे स्थिति की गंभीरता स्पष्ट होती है। अतःयह संकेत मिलता है कि समाज में कुछ लोग बिना पूरी जानकारी के दूसरों के प्रति गलत धारणा बना लेते हैं। जबकि डॉ० का उद्देश्य केवल अपने कर्तव्य का पालन करना और मरीज की जान बचाना होता है। कहानी समाज में सकारात्मक सोच और परिवर्तन की आवश्यकता को भी रेखांकित करती है वे अपनी लेखनी के माध्यम से न केवल समाज की नकारात्मक मानसिकता को बदलने का प्रयास करते हैं, बल्कि सकारात्मक भावनाओं और मानवीय मूल्यों को भी सशक्त रूप से सामने लाते हैं।

'एक और बेड खाली हो गया' कहानी गहरी मानवीय संवेदनाओं को झकझोरने वाली मार्मिक कथा है। इसमें सुरेश, जो गाँव के एक साधारण स्कूल का अध्यापक है, अपने बीमार पिता के इलाज के लिए उन्हें दिल्ली के अस्पताल में लाता है। महानगर की भीड़, अव्यवस्था और संसाधनों की कमी के बीच वह खुद को असहाय महसूस करता है। मरीजों की लंबी कतार और बेड की कमी उसे निराशा और हताशा से भर देती है। बड़ी मुश्किल से एक बेड मिलने के बाद भी वह सुकून नहीं पा पाता, क्योंकि अस्पताल का अमानवीय व्यवहार उसे भीतर तक विचलित कर देता है। कुछ दिनों बाद जब उसके पिता का निधन हो जाता है, तो यह आघात उसे भीतर से तोड़ देता है। इस कहानी के माध्यम से लेखक ने पहाड़ी और शहरी जीवन का सजीव और संवेदनशील चित्रण किया है। एक ओर पहाड़ों का संघर्षपूर्ण जीवन है, जहाँ कठिनाइयों के बावजूद अपनापन और मानवीय संवेदना जीवित है वहीं दूसरी ओर शहर की भागदौड़ भरी जिंदगी है, जहाँ इंसान के पास रुककर किसी के दुख–दर्द को समझने तक का समय नहीं है। अंततः सुरेश यह सोचने पर मजबूर हो जाता है कि भले ही पहाड़ों का जीवन कठिन हो, लेकिन वहाँ की सादगी, आत्मीयता और मानवीय गर्माहट शहर की कृत्रिम और संवेदनहीन जीवनशैली से कहीं अधिक बेहतर है। डॉ० निशंक के अनुसार,ष्जहां की दौड़ती भागती जिंदगी में रुककर अपने पराए किसी के प्रति भी संवेदना अथवा सहानुभूति के दो शब्द कहने की फुर्सत नहीं है। एक पल के लिए वह सोचने के लिए विवश हो गया था कि इससे लाभ गुना बेहतर जिंदगी पहाड़ में जी रहे हैं, जहां की माटी में दुनिया भर की दुःख विपदा समेटे सुख बांटने की परंपरा जन्मांतर से आज तक रची बची है।2 यह कथन दर्शाता है कि आधुनिक जीवन की भागदौड़ और संवेदनहीनता को दर्शाता है। इसमें बताया गया है कि शहरों की तेज़ रफ्तार जिंदगी में लोगों के पास अपने–पराए के लिए सहानुभूति जताने तक का समय नहीं है। इसके विपरीत, पहाड़ों का जीवन अधिक शांत, सरल और मानवीय मूल्यों से भरा हुआ है, जहाँ परंपराएँ और

आपसी संवेदनाएँ आज भी जीवित हैं। लेखक यह संकेत करता है कि सच्ची और संतुलित जीवनशैली पहाड़ों में अधिक मिलती है।

'मनीऑर्डर' कहानी एक ऐसे ग्रामीण परिवार की मार्मिक गाथा प्रस्तुत करती है, जो आर्थिक तंगी से जूझ रहा है। रंजू एक सरल और साधारण महिला है, जिसके पति फौज में तैनात हैं। पति द्वारा भेजा जाने वाला मनीऑर्डर समय पर न मिलने से वह गहरी चिंता और असहायता का अनुभव करती है। उसका बेटा सुंदरू भी अपने पिता के आने की आशा में दिन गिनता रहता है। लेखक ने रंजू की मनोदशा का अत्यंत संवेदनशील चित्रण किया है, जिसमें उसकी बेबसी, संघर्ष और उम्मीदें स्पष्ट झलकती हैं।रंजू का दृष्टिकोण पारंपरिक है, लेकिन आर्थिक संकट ने उसे भीतर तक झकझोर दिया है। वह न तो बच्चों की फीस भर पाने में सक्षम है और न ही खेतों का कार्य सुचारु रूप से कर पा रही है। ऐसे कठिन समय में उसका ससुर मधवा उसका सहारा बनता है और उसे संबल देता है। निरंतर संघर्ष के बावजूद रंजू हार नहीं मानती, जो कहानी में सकारात्मकता का संचार करता है। यह कहानी न केवल एक परिवार की व्यथा को दर्शाती है, समाज की उस सच्चाई को भी उजागर करती है जहाँ अनेक परिवार एक ही सदस्य की आय पर निर्भर होते हैं। लेखक पाठकों को आत्मनिर्भर बनने की प्रेरणा देते हैं और यह संदेश देते हैं कि कठिन परिस्थितियों में धैर्य, साहस और सहयोग से ही आगे बढ़ा जा सकता है। कहानी के पात्रों में सरलता, सहजता और मानवीय भावनाओं की गहरी अभिव्यक्ति देखने को मिलती है, जो इसे और भी प्रभावशाली बनाती है। इस संदर्भ में लेखक लिखते हैं,ष्अपनी परिस्थितियों से सबक लेते हुए रंजू ने सुंदरु के साथ दोनों ही पुत्री को स्वावलंबी बनाने का प्रण कर लिया ताकि जो गलती उसने की है, उसके बच्चों के साथ पुनरावृत्ति न हो।''3 इस कथन का भाव यह है कि रंजू ने अपनी कठिन परिस्थितियों और जीवन की गलतियों से सीख ली है। वह समझ चुकी है कि अशिक्षा और आर्थिक निर्भरता ने उसके जीवन को कितना संघर्षपूर्ण बना दिया है। इसलिए वह संकल्प लेती है कि अपने सभी बच्चों को अच्छी शिक्षा देगी और उन्हें आत्मनिर्भर बनाएगी, ताकि उन्हें भविष्य में वैसी परेशानियों का सामना न करना पड़े जैसा उसे करना पड़ा। अर्थात, यह भाव मातृत्व की जागरूकता, आत्मचिंतन और बच्चों के उज्ज्वल भविष्य के प्रति रंजू के दृढ़ निश्चय को दर्शाता है।

'गरीबी हटाओ' कहानी समाज के निम्न वर्ग के संघर्षपूर्ण जीवन का मार्मिक चित्रण करती है। इस कथा का मुख्य पात्र सरजू है, जो अपनी पत्नी और तीन बच्चों के साथ रेलवे पटरी के किनारे बनी एक झोपड़ी में अत्यंत कठिन परिस्थितियों में जीवन यापन करता है। अचानक सरजू गंभीर बीमारी की चपेट में आ जाता है और उसे अस्पताल में भर्ती होना पड़ता है। पहले से ही आर्थिक तंगी से जूझ रहा उसका परिवार इस संकट से और भी टूट जाता है। कहानी के माध्यम से लेखक निशंक ने गरीब और पिछड़े वर्ग की दयनीय स्थिति को अत्यंत संवेदनशील ढंग से प्रस्तुत किया है। जिनके पास दो वक्त की रोटी तक का साधन नहीं होता, उनके लिए इलाज कराना एक असंभव सपना बन जाता है। इसी अभाव और लाचारी के कारण सरजू जैसे मेहनतकश मजदूर समय से पहले ही मौत के मुंह में चले जाते हैं। सरजू की पत्नी अपने परिवार को संभालने के लिए हर संभव प्रयास करती है और किसी तरह दो वक्त की रोटी का जुगाड़ करती है, लेकिन नियति को कुछ और ही स्वीकार होता है। इस प्रकार, यह कहानी न केवल गरीबी की कठोर सच्चाई को उजागर करती है, समाज को सोचने पर भी मजबूर करती है। डॉ० निशंक के अनुसार, इसी बीच बस्ती हटाने को लेकर राजनीति आरंभ हो गई थी और कई राजनीतिक पार्टियों के नेता अपना वोट बैंक को सुरक्षित करने के लिए बस्ती वालों के पक्ष में सभाएं करने लगे।ष्4 कहने का भाव यह है कि बस्ती को हटाने का मुद्दा केवल प्रशासनिक नहीं रहा,उसमें राजनीति भी शामिल हो गई। विभिन्न राजनीतिक दलों के नेता अपने स्वार्थ, विशेष रूप से वोट बैंक को बचाने और बढ़ाने के लिए, बस्ती के लोगों का समर्थन करने लगे। वे वास्तव में समस्या का समाधान करने के बजाय, अपने राजनीतिक लाभ के लिए बस्तीवासियों के पक्ष में खड़े दिखाई देने लगे। अर्थात, यहाँ नेताओं की संवेदनशीलता से अधिक उनकी स्वार्थपूर्ण राजनीति और वोट पाने की मंशा को उजागर किया गया है।

कहानी 'नेकेल' में देवभूमि में हो रही हवाई उड़ानों और विकास के नाम पर हो रहे अंधाधुंध कार्यों का विरोध किया गया है। पुरुषोत्तम प्रसाद अपने संबोधन में यह बताते हैं कि यदि देवभूमि के प्राकृतिक पर्यावरण को बचाना है, तो उन ठेकेदारों और स्वार्थी लोगों के खिलाफ आवाज उठानी होगी जो प्रकृति का दोहन कर रहे हैं। कहानीकार निशंक भी पुरुषोत्तम के विचारों का समर्थन करते हुए यह संकेत देते हैं कि हमें अपनी देवभूमि, उसके पर्यावरण, पशु–पक्षियों और प्राकृतिक संतुलन की रक्षा के प्रति जागरूक होना चाहिए। पहाड़ केवल भूमि का टुकड़ा नहीं, हमारी संस्कृति, जीवन और प्रकृति का आधार हैं। यह कहानी पर्यावरण संरक्षण का संदेश देती है और लोगों को प्रकृति के प्रति जिम्मेदार बनने के लिए प्रेरित करता है। इस संदर्भ में लेखक लिखते हैं,पहाड़ हमारे सरोकारों का प्रतीक है। पहाड़ों से खिलवाड़ करने वालों को किसी भी कीमत पर बर्दाश्त नहीं किया जाएगा।5

डॉ. निशंक इस कहानी के माध्यम से यह संदेश देना चाहते हैं कि पहाड़ों में हवाई सेवा की शुरुआत केवल विकास का प्रतीक नहीं है,यह वहां की समृद्ध संस्कृति और प्राकृतिक संतुलन के लिए एक गंभीर खतरा भी बन सकती है। वे संकेत करते हैं कि बाहरी पर्यटकों की बढ़ती आवाजाही से पहाड़ी जीवन की सादगी, पवित्रता और पारंपरिक मूल्य प्रभावित हो सकते हैं। साथ ही, अनियंत्रित पर्यटन के कारण पर्यावरण प्रदूषण, गंदगी और वन्य जीवों को नुकसान पहुंचने का खतरा भी बढ़ जाता है। इस प्रकार, लेखक हमें चेतावनी देते हैं कि विकास के नाम पर प्रकृति और संस्कृति के साथ खिलवाड़ करना अंततः विनाश का कारण बन सकता है।

'क्या नहीं हो सकता' कहानी आज के युवा वर्ग को जागरूक करने का सशक्त प्रयास है। यह कहानी उन युवाओं की मानसिकता को उजागर करती है जो केवल सरकारी नौकरी के पीछे भागते रहते हैं और अन्य संभावनाओं को नजरअंदाज कर देते हैं। कहानी का मुख्य पात्र कमल बार–बार इंटरव्यू देने के बावजूद भी नौकरी पाने में असफल रहता है, जिससे उसके मन में निराशा और हताशा घर कर जाती है। शनिशंकश जी इस कथा के माध्यम से समाज में फैले भ्रष्टाचार की ओर संकेत करते हैं, जहाँ कई स्थानों पर नौकरी पाने के लिए रिश्वत का सहारा लिया जाता है। यही कारण है कि योग्य और ईमानदार युवाओं को अवसर नहीं मिल पाते और समाज धीरे–धीरे पतन की ओर बढ़ता जाता है। हालाँकि, कमल की पत्नी सुनीता उसे हिम्मत नहीं हारने देती। वह उसे समझाती है कि केवल नौकरी के पीछे भागना ही जीवन का लक्ष्य नहीं होना चाहिए, बल्कि मेहनत और आत्मनिर्भरता के साथ अन्य कार्योंकृजैसे खेतीकृमें भी सफलता पाई जा सकती है। इस प्रकार कहानी यह संदेश देती है कि जीवन में हर परिस्थिति में सकारात्मक सोच और कर्मठता से आगे बढ़ना ही सच्ची सफलता है। निशंक जी के अनुसार, ष्करने को बहुत कुछ है करने वाला चाहिए। मेहनत करने से क्या नहीं हो सकता।उसने तमाम विकल्प मेरे सामने रख दिए।ष्6 भाव यह है कि जीवन में अवसरों की कमी नहीं होती, जरूरत होती है एक ऐसे व्यक्ति की जो उन अवसरों को पहचानकर मेहनत और लगन से आगे बढ़े। मेहनत करने वाला व्यक्ति असंभव को भी संभव बना सकता है।

डॉ. निशंक की कहानियों में मानवीय संवेदनाओं का अत्यंत सजीव और मार्मिक चित्रण देखने को मिलता है, जो पाठकों को एक अद्भुत भावनात्मक अनुभव प्रदान करता है। उनकी कहानी "बेजुबान" एक धार्मिक यात्रा–वृत्तांत पर आधारित है, जिसमें दो मजदूरों और उनके दो घोड़ोंकृनीलम और भूरीकृकी हृदयस्पर्शी कथा प्रस्तुत की गई है। ये दोनों घोड़े यात्रियों को कठिन पहाड़ी रास्तों से गुजरते हुए अपनी पीठ पर ढोते हैं, मानो स्वयं उनके दुःख–दर्द को भी सह रहे हों। कहानी में मुंबई से आए एक न्यायाधीश और उनकी पत्नी श्रद्धा का उल्लेख मिलता है, जो यह मानते हैं कि तीर्थयात्रा का वास्तविक फल शरीर को कष्ट देने में ही निहित है। शास्त्रों में भी इस बात का उल्लेख मिलता है कि कठिनाइयों से भरी यात्रा ही अधिक पुण्यदायी होती है। परंतु इस सोच के बीच लेखक यह प्रश्न उठाते हैं कि क्या इस कष्ट का भार केवल मनुष्यों तक सीमित है, या फिर बेजुबान पशु भी इसे समान रूप से झेलते हैं? डॉ. निशंक इस कहानी के माध्यम से पशुओं के प्रति अपनी गहरी संवेदना व्यक्त करते हैं। जैसे गोदान में पशुओं की पीड़ा को महसूस कराया गया है, वैसे ही यहाँ भी यह दिखाया गया है कि भले ही पशु बोल नहीं सकते, लेकिन उनमें संवेदनाओं को महसूस करने की अद्भुत क्षमता होती है।

यात्रा के दौरान घोड़ों के लिए भोजन और विश्राम की व्यवस्था न होने के कारण दोनों मजदूरों को बीच रास्ते में रुकना पड़ता है। इसी बीच एक दर्दनाक घटना घटती हैकृनीलम पहाड़ी से फिसल जाती है, जो पाठकों के हृदय को झकझोर देने वाली स्थिति उत्पन्न करती है। यह दृश्य न केवल पशुओं के प्रति हमारी जिम्मेदारी को उजागर करता है, यह भी संदेश देता है कि संवेदनशीलता ही सच्ची मानवता का आधार है। डॉ० शनिशंकश के अनुसार, ष्केसर और पुष्कर को सांत्वना देकर एक पल के लिए भूरी के पास जाकर उसकी पीठ और गले पर हाथ फेरकर, उसी जुबान में संवेदना करते हुए, जज साहब अपनी पत्नी सहित अश्रुपूरित नयनों से पैदल ही बाबा केदार के दर्शनार्थ अपनी उसे यात्रा पर प्रस्थान कर गए, जिसका पुण्य इन बेजुबान पशुओं को समर्पित कर चुके थे।ष्7 इस कथन का भाव अत्यंत मार्मिक और संवेदनापूर्ण है। इसमें मनुष्य और बेजुबान पशुओं के बीच गहरे भावनात्मक संबंध को दर्शाया गया है। केसर और पुष्कर को सांत्वना देने के बाद जज साहब का हृदय दया और करुणा से भर उठता है। वे भूरी (घोड़ी) के पास जाकर उसके शरीर को सहलाते हैं, मानो उसे अपनी भाषा में ढांढस बंधा रहे हों। उनकी आंखें आँसुओं से भर जाती हैं, जो उनके भीतर उमड़ रहे प्रेम और संवेदना को व्यक्त करती हैं। इसके बाद वे अपनी पत्नी के साथ पैदल ही बाबा केदार की यात्रा पर निकल पड़ते हैं। इस यात्रा का पूरा पुण्य वे उन बेजुबान पशुओं को समर्पित कर देते हैं, जिन्होंने निस्वार्थ भाव से उनकी सेवा की। अर्थात, यह कथन सिखाता है कि सच्ची मानवता केवल मनुष्यों के प्रति ही नहीं, बल्कि पशु–पक्षियों के प्रति भी प्रेम, दया और कृतज्ञता रखने में है।

निष्कर्ष:–

डॉ० निशंक की कहानियों का मूल उद्देश्य भारतीय जीवन के यथार्थ को सजीव रूप में प्रस्तुत करना है। उनकी रचनाएँ मानवीय संवेदनाओं, पीड़ा और संघर्षों की गहराई को इस तरह उजागर करती हैं कि पाठकों के हृदय पर अमिट छाप छोड़ जाती हैं। चाहे वह एक गृहिणी का मौन संघर्ष हो, किसानों की गरीबी और विवशता, या समाज में व्याप्त जटिल समस्याएँकृहर पहलू को उन्होंने बड़ी मार्मिकता से चित्रित किया है। उनकी कहानियाँ न केवल सामाजिक विसंगतियों को सामने लाती हैं, बल्कि सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक मुद्दों पर भी प्रकाश डालते हुए पाठकों को सोचने और समझने के लिए प्रेरित करती हैं।

संदर्भ सूची

1. निशंक, डॉ० रमेश पोखरियाल, भीड साक्षी है, विनसर पब्लिशिंग कंपनी देहरादून, 2007 पृ०–21
2. निशंक, डॉ०रमेश पोखरियाल, एक कहानी और, वाणी प्रकाशन कोलकाता, 2014 पृ० –10
3. निशंक, डॉ० रमेश पोखरियाल, एक कहानी और, वाणी प्रकाशन कोलकाता, 2014 पृ०– 22
4 .निशंक, डॉ० रमेश पोखरियाल, एक कहानी और, वाणी प्रकाशन कोलकाता, 2014 पृ०– 41
5. निशंक, डॉ० रमेश पोखरियाल, एक कहानी और, वाणी प्रकाशन कोलकाता, 2014 पृ०– 29
6. निशंक, डॉ० रमेश पोखरियाल, क्या नहीं हो सकता, विनसर पब्लिशिंग कंपनी देहरादून, 2007 पृ०– 16
7. निशंक, डॉ० रमेश पोखरियाल, एक कहानी और, वाणी प्रकाशन कोलकाता, 2014 पृ० – 27

शोधार्थी

किरणा देवी

हिंदी विभाग

शोध निर्देशक – डॉ० भारती

सहायक आचार्य

मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान विभाग

आई.ई.सी. विश्वविद्यालय बद्दी हि०प्र०

22

'नई वाली हिंदी': समकालीन हिंदी लेखन की प्रवृत्तियाँ और प्रतिनिधि रचनाकार

प्रो० विष्णु के० अग्रवाल

सारांश

'नई वाली हिंदी' इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक में हिंदी के प्रकाशन–जगत, सोशल मीडिया और युवा पाठक–वर्ग के बीच प्रचलित हुआ एक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक मुहावरा है। इसे किसी संगठित घोषणापत्र, निश्चित काल–सीमा अथवा एक रूप सौंदर्यशास्त्र वाले साहित्यिक आंदोलन के रूप में नहीं देखा जा सकताय फिर भी यह समकालीन हिंदी साहित्य–लेखन की ऐसी प्रवृत्ति है जिसने पाठक, भाषा, विषय और प्रकाशन के संबंधों को नए ढंग से विन्यस्त किया है। इसकी पहचान सहज बोलचाल की भाषा, कस्बाई और शहरी जीवन के अनुभव, युवा मन की आकांक्षाएँ, प्रेम–संबंध, रोजगार, प्रतियोगी परीक्षाएँ, मित्रता, विस्थापन, डिजिटल माध्यम तथा लोकप्रिय कथन–शैली से होती है। यह शोध–पत्र 'नई वाली हिंदी' की अवधारणा, सामाजिक–सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, भाषा–शैली, विषय–वस्तु, पाठक–समुदाय और प्रतिनिधि रचनाकारों का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। दिव्य प्रकाश दुबे, निखिल सचान, सत्य व्यास, नीलोत्पल मृणाल, पंकज दुबे और अनुसिंह चौधरी के लेखन के माध्यम से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि यह प्रवृत्ति हिंदी के नए पाठक को साहित्य से जोड़ती है, किंतु इसके सामने बाजारवाद, सरलीकरण, सीमित सामाजिक प्रतिनिधित्व और आलोचनात्मक स्वीकृति जैसी चुनौतियाँ भी उपस्थित हैं। वस्तुतः नई वाली हिंदी को हिंदी साहित्य की सुदीर्घ परंपरा से विच्छिन्न घटना न मानकर भाषा के लोकतंत्रीकरण और नए पाठक–वर्ग के निर्माण की प्रक्रिया के रूप में देखा और समझा जाना अधिक उचित है।

बीज–शब्दः नई वाली हिंदी, समकालीन हिंदी कथा–साहित्य, युवा लेखन, लोकप्रिय साहित्य, डिजिटल संस्कृति,
हिंदी प्रकाशन ।

1. प्रस्तावना

हिंदी साहित्य का इतिहास निरंतर बदलती सामाजिक चेतना, पाठकीय रुचि और भाषा–प्रयोग का इतिहास भी है। भारतेन्दु युग से लेकर छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता, नवगीत, नई कहानी, जनवादी लेखन, स्त्री–विमर्श, दलित–विमर्श, आदिवासी–विमर्श और किन्नर–विमर्श तक प्रत्येक प्रवृत्ति ने हिंदी की संवेदना तथा अभिव्यक्ति के क्षेत्र को विस्तार दिया है। इक्कीसवीं सदी में साहित्य के प्रति युवा वर्ग की घटती रुचि से हिंदी–लेखन के सामने एक नया प्रश्न उपस्थित हुआ कि उस युवा पाठक तक कैसे पहुँचा जाए जो अंग्रेज़ी, इंटरनेट, मोबाइल, वेब–सीरीज़, सोशल मीडिया और त्वरित संवाद की संस्कृति में जी रहा है? परंपरागत साहित्य के पठन का न तो उसके पास समय और न अभिरुचि । कदाचित यह बदलते समय के साथ पीढ़ी–अंतराल (जेनरेशन गैप) के कारण है । इसी प्रश्न की पृष्ठभूमि में 'नई वाली हिंदी' का मुहावरा सामने आता है।

'नई वाली हिंदी' कोई स्वतंत्र भाषा नहीं है और न ही इसका कोई औपचारिक घोषणापत्र है। यह उस हिंदी लेखन का संकेतक है जो पाठक से साहित्य की औपचारिक दूरी कम करता है। इसमें शुद्ध और संस्कृतनिष्ठ हिंदी के स्थान पर बोलचाल, स्थानीय मुहावरों, उर्दू, अंग्रेज़ी तथा प्रचलित शहरी शब्दों का स्वाभाविक मिश्रण मिलता है। इसका रचनाकार पाठक को उपदेश देने की अपेक्षा उससे बातचीत करता हुआ प्रतीत होता है। दिव्य प्रकाश दुबे ने इस प्रकार की हिंदी को औपचारिकता से मुक्त, "दोस्ती–यारी वाली हिंदी" के रूप में समझाया है। 1,

यहां 'नई' विशेषण का अर्थ यह नहीं कि पूर्ववर्ती हिंदी अप्रासंगिक हो गई है। इसका आशय यह है कि बदलती पीढ़ी के अनुभवों के लिए एक नए संप्रेषणीय मुहावरे का विकास हुआ है। इसलिए 'नई वाली हिंदी' को पारंपरिक साहित्य और लोकप्रिय साहित्य के कठोर द्वंद्व के बजाय उनके बीच एक सेतु के रूप में देखा जाना चाहिए ।

2. अध्ययन के उद्देश्य और पद्धति

इस शोध–पत्र के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैंकृ

1. 'नई वाली हिंदी' की अवधारणा और उसके उद्‌भव को स्पष्ट करना ।
2. इसकी भाषा, शिल्प तथा विषय–वस्तु की प्रमुख विशेषताओं का विश्लेषण करना ।
3. इसके प्रतिनिधि रचनाकारों और उनकी कृतियों का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत करना ।
4. इस प्रवृत्ति की उपलब्धियों, सीमाओं और हिंदी साहित्य में इसके स्थान का आलोचनात्मक मूल्यांकन करना।

अध्ययन की पद्धति वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक है। इसमें चयनित रचनाकारों की प्रमुख कृतियों, साहित्यिक लेखों, प्रकाशन–संदर्भों तथा समकालीन आलोचनात्मक टिप्पणियों के आधार पर प्रवृत्ति की पहचान की गई है। चूँकि 'नई वाली हिंदी' अभी अकादमिक रूप से पूर्णतः संस्थापित साहित्यिक आंदोलन नहीं है, इसलिए इसे एक गतिशील सांस्कृतिक और प्रकाशकीय परिघटना की तरह पढ़ना आवश्यक है।

3. उद्‌भव की सामाजिक–सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

उदारीकरण के बाद भारत में शिक्षा, रोजगार, संचार और उपभोग की संरचनाओं में तीव्र परिवर्तन आया। छोटे शहरों और कस्बों के युवा उच्च शिक्षा, प्रतियोगी परीक्षाओं तथा निजी नौकरियों

के लिए दिल्ली, मुंबई, पुणे, बेंगलुरु, कोटा, इलाहाबाद–प्रयागराज और बनारस जैसे नगरों की ओर बढ़े। उनके अनुभवों में घर से दूरी, किराए के कमरे, कोचिंग संस्थान, हॉस्टल, असफलता, प्रेम, मित्रता, वर्गीय आकांक्षा और भाषाई असमंजस शामिल थे। हिंदी साहित्य में यह संसार पहले भी उपस्थित रहा है, किंतु नई वाली हिंदी ने इसे युवा–पाठक की परिचित दैनिक भाषा में केंद्र में रखा।

दूसरी महत्त्वपूर्ण पृष्ठभूमि डिजिटल माध्यमों की है। ब्लॉग, फेसबुक, इंस्टाग्राम, यूट्यूब, ऑनलाइन पत्रिकाएँ, पॉडकास्ट, किंडल और ई–कॉमर्स ने लेखक तथा पाठक के बीच की दूरी घटाई। अब लेखक का परिचय केवल पत्रिकाओं और आलोचकों के माध्यम से नहीं बनताय वह अपने पाठकों से सीधे संवाद करता है। पुस्तक का प्रचार, आवरण, शीर्षक, उद्धरण, पाठकीय समीक्षा और लेखक की सार्वजनिक उपस्थिति भी उसके साहित्यिक जीवन का हिस्सा बन गए हैं। इस परिवर्तन ने हिंदी पुस्तकों को नई दृश्यता दी।

प्रकाशन संस्थानों की भूमिका भी उल्लेखनीय है। हिंद युग्म जैसे प्रकाशकों ने युवा लेखकों और नए पाठकों के लिए पुस्तक–निर्माण, विपणन तथा वितरण के नए तरीके अपनाए। इसमें शैलेश भारतवासी की एकनिष्ठ साधना भी उल्लेखनीय है । आलोचक दिनेश श्रीनेत के अनुसार, इस नए लेखन को 'नई वाली हिंदी' का नाम देने में प्रकाशन–जगत की भी भूमिका रही और इसके माध्यम से लोकप्रिय तथा साहित्यिक लेखन के बीच की विभाजन–रेखा को चुनौती मिली। ख्2, अतः इस प्रवृत्ति को केवल शैलीगत परिवर्तन नहीं, बल्कि साहित्य के उत्पादन और उपभोग की बदली हुई व्यवस्था के रूप में भी देखना चाहिए।

4. 'नई वाली हिंदी' की प्रमुख विशेषताएँ रू–

4.1 सहज, संवादात्मक और मिश्रित भाषा

नई वाली हिंदी की सर्वाधिक स्पष्ट विशेषता उसकी भाषा है। इसमें कठिन तत्सम शब्दावली, दीर्घ वाक्य–विन्यास और अतिरंजित साहित्यिकता की अपेक्षा बातचीत की लय मिलती है। पात्र जिस सामाजिक परिवेश से आते हैं, उसी के अनुरूप बोलते हैं। हिंदी के साथ अंग्रेज़ी के शब्द, उर्दू का भावात्मक रंग, स्थानीय बोलियाँ और रोज़मर्रा के वाक्यांश आते हैं। यह मिश्रण प्रदर्शन के लिए नहीं, जीवन–सत्य के लिए होता है। उदाहरणतः कॉलेज परिसर, कॉर्पोरेट कार्यालय, कैफे, व्हाट्सऐप, नौकरी का इंटरव्यू या प्रतियोगी परीक्षा का परिवेश केवल संस्कृतनिष्ठ हिंदी में उतना स्वाभाविक नहीं बनता। नई वाली हिंदी इन स्थितियों की बहुभाषिकता को स्वीकार करती है। इस स्वीकार से भाषा अधिक लोकतांत्रिक और पाठक के निकट बनती है।

4.2 कस्बाई अनुभव और महानगरीय आकांक्षा

इस लेखन में छोटे शहर की स्मृति और महानगर की आकांक्षा साथ–साथ चलती है। पात्रों के पास परिवार, मोहल्ला, स्टेशन, चाय की दुकान और स्थानीय बोली की स्मृतियाँ हैंय साथ ही वे बेहतर नौकरी, प्रेम, स्वतंत्रता और आत्मनिर्माण के सपने देखते हैं। यही द्वंद्व नई वाली हिंदी की भावभूमि को विशिष्ट बनाता है। यह साहित्य कस्बे को केवल पिछड़ेपन के प्रतीक की तरह नहीं दिखाता। कस्बा उसके लिए आत्मीयता, हास्य, स्मृति और सामाजिक दबाव–सभी का स्रोत है। दूसरी ओर महानगर अवसर देता है, लेकिन अकेलापन, प्रतिस्पर्धा और अस्थिरता भी पैदा करता है। इस प्रकार यह लेखन उत्तर–उदारीकरणकालीन युवा की मानसिक बनावट को पकड़ता है।

4.3 युवा जीवन और निजी अनुभवों की केंद्रीयता

प्रेम, ब्रेक–अप, दोस्ती, हॉस्टल, परीक्षा, करियर, पारिवारिक अपेक्षाएँ, विवाह, यात्रा और आत्मसम्मान इसके बार–बार आने वाले विषय हैं। निजी अनुभव यहां केवल निजी नहीं रहताय वह नई मध्यवर्गीय पीढ़ी के सामूहिक अनुभव का रूप लेता है। इस लेखन की लोकप्रियता का एक कारण यह है कि पाठक अपने जीवन के अनेक प्रसंगों को इसमें पहचान पाता है। इस प्रवृत्ति पर यह आरोप भी लगाया जाता है कि इसमें निजी भावुकता अधिक है और व्यापक सामाजिक प्रश्न कम हैं। यह आलोचना कुछ हद तक उचित है, किंतु यह भी ध्यान रखना चाहिए कि बेरोज़गारी, परीक्षा–तंत्र, जाति, शहरों में विस्थापन और लैंगिक संबंध जैसे प्रश्न निजी जीवन के भीतर ही काम कर रहे होते हैं। श्रेष्ठ रचनाएँ इन निजी प्रसंगों के पीछे छिपे सामाजिक तनावों को भी उद्घाटित करती हैं।

4.4 किस्सागोई और पठनीयता

नई वाली हिंदी का शिल्प मुख्यतः कथात्मक है। इसमें कथानक, संवाद, हास्य, स्मृति और भावात्मक मोड़ का महत्त्व अधिक है। पाठक को आगे पढ़ने के लिए प्रेरित करने वाली किस्सागोई इसकी शक्ति है। छोटी–छोटी घटनाएँ, परिचित संदर्भ और दृश्यात्मकता इसे वेब–संस्कृति के पाठक के अनुकूल बनाते हैं। पठनीयता को साहित्यिक कमजोरी मानना उचित नहीं है। साहित्य का एक मूल गुण संप्रेषण भी है। समस्या तब पैदा होती है जब कथानक केवल तात्कालिक मनोरंजन तक सीमित रह जाए और अनुभव की जटिलता, भाषा की सर्जनात्मकता या सामाजिक अंतर्दृष्टि कम हो जाए। इसलिए नई वाली हिंदी का मूल्यांकन न तो केवल बिक्री के आधार पर होना चाहिए, न केवल पारंपरिक गंभीरता की कसौटी पर।

4.5 डिजिटल–जगत और नए पाठक का निर्माण

यह प्रवृत्ति पुस्तक के साथ–साथ डिजिटल मंचों पर भी सक्रिय है। लेखक–पाठक संवाद, ऑनलाइन समीक्षा, ऑडियोबुक, सोशल मीडिया पोस्ट और वेब रूपांतरण इसके प्रसार में सहायक हैं। पाठक अब निष्क्रिय उपभोक्ता नहीं हैय वह टिप्पणी करता है,

लेखक से प्रश्न पूछता है, अंश साझा करता है और पुस्तक की लोकप्रियता में भागीदार बनता है। इस लोकतांत्रिकता ने हिंदी में पढ़ने की आदत को नई ऊर्जा दी है।

5. प्रतिनिधि रचनाकार और उनकी रचनात्मक पहचान

5.1 दिव्य प्रकाश दुबे

दिव्य प्रकाश दुबे को नई वाली हिंदी के सबसे चर्चित चेहरों में माना जाता है। उनकी रचनाओं में सहजता, आत्मीयता और छोटे अनुभवों को अर्थपूर्ण बनाने की क्षमता दिखाई देती है। टर्म्स एंड कंडीशंस अप्लाई, मुसाफ़िर कैफे, अक्टूबर जंक्शन और यार पापा जैसी कृतियाँ रिश्तों, यात्रा, परिवार, प्रेम तथा साधारण जीवन की भावनात्मक परतों को संवादात्मक भाषा में प्रस्तुत करती हैं।

दुबे की विशेषता यह है कि वे पाठक से दूरी नहीं बनाते। उनके यहां पात्रों का संसार प्रायः ऐसा लगता है जैसे कोई मित्र अपना अनुभव सुना रहा हो। यही आत्मीयता उनकी लोकप्रियता का प्रमुख कारण है। किंतु आलोचनात्मक दृष्टि से यह भी देखना चाहिए कि भावुकता और आत्मीयता के बीच संतुलन कैसे बना रहता है। उनके श्रेष्ठ लेखन में जीवन का सामान्य क्षण भी सामाजिक और मानवीय अर्थ ग्रहण कर लेता है।

5.2 निखिल सचान

निखिल सचान की नमक स्वादानुसार और जि़ंदगी आइस–पाइस नई वाली हिंदी के महत्त्वपूर्ण पाठ हैं। उनके लेखन में कस्बाई जीवन, बचपन, युवावस्था, स्मृति और उभरते मध्यवर्ग की आकांक्षाएँ विशेष रूप से उपस्थित हैं। जि़ंदगी आइस–पाइस को छोटे शहरों के युवाओं की आत्मीय, खट्टी–मीठी कहानियों का संग्रह कहा गया है। ख्3, सचान की भाषा में स्थानीयता और आधुनिकता का सुंदर मेल है। वे छोटे शहर को नॉस्टैल्जिया की वस्तु मात्र नहीं बनाते, बल्कि उसके भीतर मौजूद वर्गीय सीमाओं, सामाजिक संबंधों और युवा मन की बेचैनी को भी दर्ज करते हैं। उनकी कहानियों की सफलता इस बात में है कि वे सरल भाषा में अनुभव की बहुस्तरीयता को पकड़ते हैं।

5.3 सत्य व्यास

सत्य व्यास ने हिंदी के युवा पाठकों के बीच व्यापक लोकप्रियता अर्जित की है। बनारस टॉकीज, दिल्ली दरबार, चौरासी, बागी बलिया और उफ़्फ़ कोलकाता उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं। बनारस टॉकीज में बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के छात्रावासी जीवन, मित्रता, प्रेम और बनारसी मिज़ाज का सजीव चित्रण मिलता है। 4, व्यास के लेखन में शहर एक सक्रिय पात्र की तरह उपस्थित रहता है। बनारस, दिल्ली, बलिया और कोलकाता केवल भौगोलिक स्थान नहीं, बल्कि विशिष्ट सांस्कृतिक संवेदनाएँ हैं। उनकी प्रारंभिक रचनाओं में युवा जीवन की चंचलता और रोमांस दिखाई देता है, जबकि चौरासी जैसी कृति इतिहास, सांप्रदायिक हिंसा और प्रेम के अधिक गंभीर प्रश्नों को सामने लाती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि नई वाली हिंदी को केवल हल्के या मनोरंजनपरक लेखन तक सीमित करना उचित नहीं।

5.4 नीलोत्पल मृणाल

नीलोत्पल मृणाल का उपन्यास डार्क हॉर्स नई वाली हिंदी की उस दिशा का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें प्रतियोगी परीक्षाओं, कोचिंग–संस्कृति, असफलता और युवा संघर्ष को प्रमुखता मिलती है। यह उपन्यास सिविल सेवा की तैयारी करने वाले युवाओं के जीवन–संघर्ष पर केंद्रित है और इसे 2016 का साहित्य अकादेमी युवा पुरस्कार भी प्राप्त हुआ। ख्5, मृणाल के लेखन का महत्त्व इस बात में है कि वे सफलता की चमक के पीछे छिपी हताशा, आर्थिक दबाव और सामाजिक अपेक्षाओं को सामने लाते हैं। उनके यहां युवा केवल प्रेम करने वाला या हास्य उत्पन्न करने वाला पात्र नहीं हैय वह प्रतियोगिता की कठोर दुनिया में अपनी पहचान बचाने के लिए संघर्षरत व्यक्ति भी है। इस कारण उनका लेखन नई वाली हिंदी के भीतर अधिक सामाजिक और यथार्थपरक स्वर का विस्तार करता है।

5.5 पंकज दुबे और अनुसिंह चौधरी

पंकज दुबे तथा अनुसिंह चौधरी जैसे रचनाकार भी इस व्यापक प्रवृत्ति के महत्त्वपूर्ण नाम हैं। इनका लेखन शहरी जीवन, स्त्री–अनुभव, रिश्तों की जटिलता, सांस्कृतिक संक्रमण और नई पीढ़ी की संवेदना को अलग–अलग रूपों में सामने लाता है। अनुसिंह चौधरी की उपस्थिति विशेषतः इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि नई वाली हिंदी को केवल पुरुष युवा–अनुभव तक सीमित मानने की धारणा को चुनौती मिलती है। फिर भी इस धारा में स्त्री, दलित, आदिवासी, श्रमिक, सर्वहारा और गैर–महानगरीय अनुभवों की उपस्थिति को निरंतर बढ़ाने की आवश्यकता है। किसी भी समकालीन साहित्यिक प्रवृत्ति का विस्तार तभी सार्थक है जब वह विविध सामाजिक वर्गों की समस्याओं और उनके स्वर को समुचित स्थान प्राप्त हो सके ।

6. उपलब्धियाँ और सीमाएँ

नई वाली हिंदी की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि उसने हिंदी पढ़ने के प्रति नए पाठक में उत्सुकता पैदा की। ऐसे अनेक युवा, जो हिंदी साहित्य को कठिन, पुराना या केवल परीक्षा की वस्तु मानते थे, इन पुस्तकों के माध्यम से स्वेच्छा से पढ़ने लगे। यह प्रवृत्ति हिंदी को पुस्तकालयों और पाठ्यक्रमों की सीमा से बाहर निकालकर दैनिक जीवन और डिजिटल संस्कृति में ले आई । दूसरी उपलब्धि भाषा का लोकतंत्रीकरण है। इस लेखन ने यह स्वीकार किया कि भाषा की जीवंतता उसके बदलने में है । बोलियों, उर्दू, अंग्रेज़ी और स्थानीय मुहावरों को स्थान देकर इसने हिंदी को उसके वास्तविक सामाजिक रूप के निकट पहुँचाया ।

तीसरी उपलब्धि लेखक–पाठक संबंधों का पुनर्गठन है । अब पाठक साहित्यिक प्रतिष्ठान से बाहर रहकर भी पढ़ने, प्रतिक्रिया देने और पुस्तक–संस्कृति बनाने में भाग ले सकता है ।

परंतु इसकी सीमाएँ भी हैं । पहली, कुछ रचनाओं में बाजार की मांग के कारण कथानक, शीर्षक और भावुकता का दोहराव दिखाई देता है । दूसरी, सरल भाषा कभी–कभी विचार की सरलता में बदल जाती है । तीसरी, नए मध्यवर्गीय युवा की उपस्थिति प्रबल होने के बावजूद हाशिये के समुदायों का अनुभव अपेक्षाकृत कम दिखाई देता है। चौथी, लोकप्रियता को साहित्यिक मूल्य का एकमात्र प्रमाण मानने का खतरा है। बिक्री, सोशल मीडिया चर्चा और पाठकीय रेटिंग महत्त्वपूर्ण संकेत हैं, किंतु वे आलोचनात्मक मूल्यांकन का विकल्प नहीं हो सकते।

इसलिए नई वाली हिंदी को न तो खारिज किया जाना उचित है और न ही बिना समुचित आलोचना की कसौटी पर मूल्यांकन किए महिमामंडित किया जाना उचित है । अस्तु, नई वाली हिंदी अस्तित्व में तो आ चुकी है और आज की तकनीकी ज्ञान से लैस युवा पीढ़ी (ज़ेन जी) के बीच खूब लोकप्रिय भी हो रही है, इसकी कृतियों को भाषा, कथ्य, शिल्प, सामाजिक प्रतिनिधित्व और सौंदर्यबोध–सभी कसौटियों पर पढ़ना आवश्यक है।

7. निष्कर्ष

'नई वाली हिंदी' समकालीन हिंदी साहित्य की एक जीवंत और प्रभावकारी प्रवृत्ति है। यह किसी कठोर परिभाषा में बंधा आंदोलन नहीं, बल्कि नई पीढ़ी की भाषा, जीवन–अनुभव, तकनीकी परिवेश और पाठकीय आकांक्षाओं से निर्मित साहित्यिक मुहावरा है। इसकी शक्ति सहज भाषा, आत्मीय किस्सागोई, युवा अनुभवों की पहचान, कस्बाई–शहरी संक्रमण और डिजिटल प्रसार में निहित है। दिव्य प्रकाश दुबे, निखिल सचान, सत्य व्यास और नीलोत्पल मृणाल जैसे रचनाकारों ने इस प्रवृत्ति को अलग–अलग आयाम दिए हैं। जहां दुबे आत्मीयता और संबंधों के रचनाकार हैं, वहीं सचान कस्बाई स्मृति और युवा जीवन केय व्यास शहर, परिसर और लोकप्रिय कथात्मकता केय तथा मृणाल प्रतियोगी युवा के संघर्ष और सामाजिक यथार्थ के रचनाकार हैं। इन लेखकों के माध्यम से हिंदी ने ऐसे पाठकों तक पहुँच बनाई है जो साहित्य से दूर होते जा रहे थे।

भविष्य में नई वाली हिंदी की सार्थकता इस बात पर निर्भर करेगी कि वह अपनी पठनीयता बनाए रखते हुए सामाजिक विविधता, वैचारिक गहराई और कलात्मक जटिलता को कितना स्थान देती है। यदि यह प्रवृत्ति नए पाठक को गंभीर साहित्य की ओर ले जाने वाला सेतु बनती है, तो हिंदी साहित्य के विकास में इसकी भूमिका ऐतिहासिक, युगांतकारी और अत्यंत महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी।

संदर्भ–सूची–

1. त्रिपाठी, रंजना. "डिजिटाइजेशन के दौर का डिजिटल लेखक. " Your Story Hindi, 11 जनवरी 2017.
2. श्रीनेत, दिनेश. "साहित्य, लोकप्रिय साहित्य और कुछ पूर्वाग्रह. " समालोचन.
3. "निखिल सचान की किताब 'जिंदगी आइस पाइस' का एक अंश." आज तक, 18 अप्रैल 2015.
4. व्यास, सत्य. बनारस टॉकीज. हिंद युग्म, 2015.
5. दुबे, दिव्य प्रकाश. मुसाफ़िर कैफ़े हिंद युग्म.
6. सचान, निखिल. नमक स्वादानुसार. हिंद युग्म.
7. सचान, निखिल. जदिगी आइस–पाइस. हिंद युग्म, 2015.
8. मृणाल, नीलोत्पल. डार्क हॉर्स.
9. स्वर्णकार, ज्योत्सना. "नई वाली हिंदीरू हिंदी साहित्य में सीमाएं और संभावनाएं." IJIRCT, जुलाई 2026.
10. 'नई वाली हिंदी' पर समकालीन प्रकाशन और आलोचनात्मक सामग्री, हिंद युग्म तथा विभिन्न डिजिटल साहित्यिक मंच ।

ऑनलाइन डिजिटल संदर्भ–

1. Your Story: "डिजिटाइजेशन के दौर का डिजिटल लेखक"
2. समालोचनः "साहित्य, लोकप्रिय साहित्य और कुछ पूर्वाग्रह"
3. आज तकः "जिंदगी आइस पाइस" का अंश
4. पुस्तक.ऑगर्ू बनारस टॉकीज का परिचय
5. केंद्रीय विश्वविद्यालय केरल का शोध–संदर्भः डार्क हॉर्स

•••

प्रो० विष्णु के० अग्रवाल
प्राध्यापक–हिंदी
शास. महारानी लक्ष्मीबाई
कला एवं वाणिज्य (स्वशासी) महाविद्यालय,
ग्वालियर

23

बाल साहित्य के विकास में डॉक्टर नागेश पांडेयः संजयः का विशिष्ट योगदान ।

वर्षा लाम्बा, डॉ0 (प्रोफेसर) दिग्विजय शर्मा

शोध सारः

बच्चों को किसी भी समाज का महत्वपूर्ण अंग और भविष्य माना जाता है। बच्चों का सर्वांगीण विकास जिस स्तर का होगा, उस समाज का भविष्य उस ही स्तर का होगा। बाल साहित्य छोटे बच्चों की मानसिक, भावनात्मक, और भाषाई क्षमता के संवर्धन में सहायक सिद्ध होता है। बाल साहित्य मनोरंजन मात्र नहीं है, वरन् यह बच्चों में कल्पनाशीलता उद्वेलित करने, नैतिक मूल्यों की स्थापना करने और पढ़ने की आदत को विकसित करने का एक सशक्त माध्यम भी है। हिंदी के प्रमुख बाल साहित्यकारों में हरिकृष्ण देवसरे, मुंशी प्रेम चंद ,सोहनलाल द्विवेदी ,दिविक रमेश ,देवेंद्र मेवाड़ी, नागेश पांडेय आदि अग्रणी हैं। प्रतिष्ठित बाल साहित्यकार और समीक्षक डॉ. नागेश पांडेय श्संजयश का हिंदी बाल साहित्य में बहुआयामी योगदान है। उन्होंने बाल मनोविज्ञान को केंद्र में रखकर लगभग एक हजार से अधिक मौलिक रचनाएं की हैं। बाल साहित्य में बच्चों के लिए मनोविश्लेषणात्मक, विवेचनात्मक ,पद्धति का प्रयोग किया गया है जिससे वह सामाजिकता मनोवैज्ञानिक ,भावनात्मकता को जान पाते है। बाल साहित्य में बच्चों की भाषा को नज़र में रखते हुए सरल –सहज , मुहावरों एवं लोकोक्तियों से युक्त भाषा का प्रयोग किया गया है इसकी सहायता से बच्चों को बाल साहित्य पढ़ने में कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ता है । साथ ही, श्बाल साहित्य के प्रतिमानश जैसे शोध–ग्रंथों और आलोचना के माध्यम से बाल साहित्य को अकादमिक और सैद्धांतिक स्तर पर स्थापित करने में नागेश पांडेय का अद्वितीय योगदान है।

बीज शब्दः बाल साहित्य आलोचना , शिक्षा ,समाज, डॉक्टर नागेश पांडेय ।

मूल आलेखः

बाल साहित्य को बाल समाज महत्वपूर्ण अंग माना जाता है इस साहित्य की सारी कविता कहानी नाटक सभी बाल्यावस्था के बच्चों से जुड़ी हुई होती है क्योंकि बच्चों का सर्वागींण विकास जितनी तेज़ी से होगा। क्योंकि समाज का विकास बाल्य अवस्था के बच्चों से शुरू हो जाता है इसीलिए " ऐसा साहित्य जिससे पढ़कर बच्चे आनंदित हो उनका सम्यक विकास हो और वह आदमी सुधार तथा जीवन के संघर्षों से जूझने की दिशा में क्रियाशील हो सकें । सही मायने में वही बाल साहित्य है ,,(1)

बाल साहित्य को केवल मनोरंजन का साधन नहीं माना जा सकता है इसमें बच्चों के लिए ज्ञान भी छुपा होता है। बाल साहित्य के द्वारा ही हम बच्चों को समाज में जीना सिखा सकते हैं समाज से जुड़ी सारी घटनाओं को बाल रूप की किताबों में कहानी नाटक कविता के मध्यम से दर्शा दिया जाता है जिसके द्वारा बच्चे बाल्यावस्था से ही साहित्य पढ़ना शुरू कर देते है। और वह किशोरावस्था तक यह पड़ते है। बच्चों को साहित्य का ज्ञान देने में विद्यालयों का महत्वपूर्ण योगदान माना जाता है विद्यालयों में बाल रूप को जागरूक करने के लिए तरह तरह के कार्यक्रम कराए जाते हैं जिसमें बच्चे बढ़ चढ़कर भाग लेते है। और वह इस प्रतियोगिता का आनंद उठाते है। साथ साथ वह इन सभी घटनाओं पर ध्यान देते हुए उनको अपने जीवन में ढालते है फिर वह इस बाल साहित्य की और अपने क़दम बढ़ाते हैं जिससे उन्हें समाज में ऊँच नीच का भेद भाव पता चलता है फिर वह इस भेदभाव को ख़त्म करने में अपना विशिष्ट योगदान देते है। वे अपनी मंज़िल तक पहुँचने में सफलता महसूस करते हैं इसी प्रकार से बाल साहित्य को हमारे जीवन में विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

राकेश चक्र साहित्य वर्ण विषय की अहमियत को ध्यान में रखते हुए लिखा जाना चाहिए । कि मनोवैज्ञानिक मनोरंजक और ज्ञानव वर्धक अपनी संस्कृति के अनुसार बाल साहित्य लिखा जाए । " ऐसे समय में बच्चों के लिए ऐसा लिखा जाना चाहिए जो बच्चों को परोक्ष ज्ञान न देकर मनोवैज्ञानिक रूप से उनके मन मस्तिष्क पर विशेष प्रभाव छोड़ सके,,(2) इस कथन के अनुसार बच्चों को ऐसा साहित्य उपलब्ध कराना चाहिए जो पुस्तकों के साथ साथ इंटरनेट और सोशल मीडिया पर भी उपलब्ध होना चाहिए । जिससे बच्चों के मनोरंजन के साथ साथ मनोवैज्ञानिक तक विकास हो जाए । इस प्रकार से बच्चों की सोचने समझने की शक्ति बढ़ती है इसके साथ ही उन्हें सामाजिकता और संस्कृति के मूल्यों से अवगत कराया जा सकता है जिससे वह अपने आने वाले भविष्य और समाज के वातावरण के संतुलन बनाए रखा जा सकता है

कोरोना काल में देश की स्थिति दयनीय प्रकार से ख़राब हो गई थी ऐसी स्थिति में हमारी शिक्षा पर विशेष प्रकार का प्रभाव पड़ा था । लेकिन फिर हमारे देश के शिक्षा मंत्री और विद्यालयों अध्यापकों का विशेष महत्व रहा है घर बैठे विद्यार्थी को ऑन लाइन शिक्षा प्रदान कराई गई थी शिक्षकों ने बच्चों को स्कूलों जैसी ही सुविधा घर बैठे ही प्रदान कर दी गई थी जिसकी सहायता से शिक्षा संस्कृति रीति रिवाज़ों के धागे कमज़ोर नहीं पड़े थे वह यूट्यूब गूगल मीट की सहायता से भी अपने बाल साहित्य को ठीक प्रकार से जान पाए थे

बाल साहित्य के द्वारा बच्चों में ज्ञान की नीम की उगाही

की जा सकती है बाल साहित्य से बच्चों में सांस्कृतिक सामाजिकता व्यक्तित्व के संस्कार दिए जा सकते हैं यह संस्कार माता पिता द्वारा एक बच्चे विप्रो इस कराए जा सकते हैं जैसे पौधे की जड़ माली रखता है उसी प्रकार से एक अच्छे संस्कारों एक बच्चे में माता पिता पैदा करते हैं इसीलिए कहा जाता है कि बाल साहित्य सिर्फ़ बच्चों का साहित्य नहीं है इसे पढ़ने की आवश्यकता बड़ों को भी पड़ती है जब उनको बाल साहित्य का ज्ञान होगा तभी वह अपने बच्चों को इसके प्रति जागरूक कर सकेंगे । और अच्छे संस्कार पैदा कर पाएंगे । जिससे वह अपने समाज का कल्याण करने में सक्षम होंगे ।

दिविक रमेश जी बच्चों के प्रति प्रेम भाव की भावना को जागृत करते हुए लिखते है बच्चे इतने निर्मल होते हैं की आस पड़ोस के लोगों से रिश्ता जोड़ लेते हैं इसी बात को ताऊ ताई शीर्षक कविता में देख सकते हैं,,(3) इस कविता शीर्षक से पता चलता है कि बच्चों का हृदय कितना कोमल एवं शुष्क होता है उन्हें जिस भी वातावरण में ढाला जाए वह उसी वातावरण को अपना समझकर ढल जाते हैं लेकिन बच्चों के अंदर एक प्रकार की अति सुंदर बात यह होती है कि वह नई नई चीज़ों को जानने की इच्छा शक्ति अपने अंदर रखते हैं वह बचपन से तरह तरह के रीति रिवाज़ों संस्कृति के प्रति आकर्षित होते हुए चले जाते हैं क्योंकि बच्चों का हृदय इतना कोमल होता है कि वह किसी के प्रति नफ़रत की भावना अपने अंदर पैदा होने ही नहीं देते है इन सब में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है बाल साहित्य,

बाल साहित्य से हार्वे डार्टन का अभिप्राय इन प्रकाशनों से है। बाल साहित्य से मेरा अभिप्राय इन प्रकाशनों से हैं जिनका उदेश्य बच्चों को सहज रीति से आनंद देना है न कि उन्हें मुख्य रूप से शिक्षा देना अथवा उन्हें सुधारना अथवा उन्हे उपयोगी रीति से शांत करना ,,(4) बाल साहित्य से अभिप्राय है बच्चों का जीवन आनंदमय व्यतीत हो। उन्हें किसी प्रकार की मुसीबतों का सामना ना करना पड़े। उनका जीवन खुश मय बीते इसीलिए बाल साहित्य को लिखा गया था बच्चों के लिए उसमें लिखी कविता नाटक कहानी को पढ़कर बच्चे कुछ नया सीख पाएँ । वह इन सब का आनंद उठा पाए ना की इसको किसी प्रकार का बोझ समझकर पढ़ें। यदि बच्चे इसको बोझ समझने लगें तो ना ही वह इस बाल साहित्य से किसी प्रकार की शिक्षा प्राप्त कर पाएंगे न ही वह साहित्य को अपने जीवन में ढाल सकेंगे । इसी लिए बाल साहित्य रीति आनंदपूर्ण होना चाहिए ना कि केवल शिक्षा के लाभ के लिए ही लिखा जाए ।

नागेश पांडेय डॉक्टर राष्ट्रबंधु प्रकाशित बाल साहित्य समीक्षक पत्रिका के महत्व को दर्शाते हुए लिखा है ष भारतीय भाषाओं में अपनी तरह की इस अकेली पत्रिका ने बाल साहित्यकारों को ऊँचे प्रतिष्ठा दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है ,,(5) इस कथन से पता चलता है कि बाल साहित्य समीक्षक पत्रिका का बाल जीवन में विशेष प्रकार का स्थान रहा है बाल समाज एवं बाल जीवन एक महत्वपूर्ण भाग माना जाता है इस पत्रिका के बिना न तो हमारे समाज का कल्याण हो सकता है न ही बाल रुप का । बाल समीक्षक पत्रिका हमारी जीवन में एक टी. वी रेडियो टेप रिकॉर्डर के जैसे कार्य करती है

जैसे टी . वी. देश भर की ख़बर देता है कि देश विदेश में क्या घटित हो रहा है उसी प्रकार से बाल समीक्षक पत्रिका अपना महत्व दर्शाती है कि इस बाल पत्रिका ने साहित्य में अपनी नीम जमा रखी है समीक्षक पत्रिका विशेष प्रकार से बाल अवस्था के बच्चों के लिए छापी गई थी इसमें उनके लिए कहानी नाटक कविता आदि उपलब्ध कराए गए थे बाल समीक्षक पत्रिका में बहुत ही सरल सहज भारतीय भाषा लिखी गई थी जिसकी सहायता से बच्चे पत्र पत्रिकाओं को सरलता से पढ़ लेते एवं समझ लेते हैं इस बाल समीक्षक पत्रिका ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है

बाल साहित्य सृजन समीक्षक पर बल देते हुए नागेश पांडेय लिखते हैं "साहित्य से समाज की प्रगति के द्वार खुलते हैं अतः साहित्य में कचरे की घुसपैठ पर अंकुश लगाने के लिए अप्रिय सत्य भी बोलना होगा ।क्योंकि कचरे को लेकर आपकी सद मनो भावना समाज को प्रभावित कर देगी,,(6) इससे पता चलता है कि साहित्य समाज के लिए अति आवश्यक है बाल साहित्य से ही समाज की सृजना को प्रगति प्रदान कराई जा सकती है साहित्य ही समाज का दर्पण स्वच्छ बना सकता है क्योंकि साहित्य में ही समाज से जुड़े घटनाक्रम को लिखा जाता है और साहित्य से ही बच्चों को जागरूक किया जा सकता है समाज के प्रति जब साहित्य में समाज के लिए अच्छा अच्छा प्राप्त होगा । पढ़ने में बच्चों की रुचि बढ़ेगी तभी वह जीवन में सफलता की सीढ़ी पर चल पाएंगे। यदि हमारे समाज में कुछ ऊँच नीच पैदा हो जाए ।तो इसे छिपाने के लिए हम झूठ का भी सहारा ले तो कोई ग़लत बात सिद्ध नहीं होगी । क्योंकि यदि साहित्य में यह सब लिख दिया जाएगा। तो समाज और साहित्य दोनों का दर्पण ख़राब हो जाएगा। जिससे हमारे बच्चों का भविष्य ख़तरे में पड़ सकता है उनकी विकास यात्रा यहीं रुक जाएगी । इसलिए कहा जाता है कि साहित्य को इतने स्वच्छंद शब्दों में लिखा जाए की हर व्यक्ति उसे पढ़ने की इच्छुकता मन में रखें और जीवन में ढालने का निर्यतन प्रयत्न करता रहे ।

नागेश पांडेय जी बताते है। कुछ समीक्षक कृति पर ध्यान न देकर रचनाकार पर ध्यान देकर रचना करते है ।श्श इस

घातक प्रवृत्ति से किसी व्यक्ति विशेष का भले ही कोई तात्विक हित हो जाता हो ,बाल साहित्य का अहित ही होता है ।,,(7) कुछ रचनाकार ऐसे ही हवा में साहित्य की रचना कर देते है। वह ना तो उस रचना का मूल्य जानते है। न ही रचनाकार का वह केवल अपने नाम को साहित्य में ऊँचा करने के लिए निरंतर कार्य करते रहते है । वह बच्चों के भविष्य के साथ खिलवाड़ करते है। लेकिन उनको इस बात से कोई फरक नहीं पड़ता है। कि देश के प्यारे प्यारे से बच्चों का भविष्य खराब हो रहा है । वह ऐसी रचनाओं पर जोर देते है। जिसका बच्चे ठीक प्रकार से अर्थ भी नहीं निकाल पाते है। उनको अपने जीवन में बोहोत कल्पनाओं का सामना करना पड़ता है । उनके भविष्य को रोशन करने का काम एक साहित्यकार का होता है। इसीलिए कहा जाता है । एक रचनाकार को रचना यह रचना के व्यक्ति पर विशेष ध्यान न देकर उसके महत्व पर ध्यान देना आवश्यक माना जाता है ।

सोहनलाल द्विवेदी ने बाल साहित्य के महत्व को दर्शाते हुए कहा है सफल बाल साहित्य वही है जिसको बच्चे सरलता से अपना सकें ,,(8) बाल साहित्य को लिखने का उद्देश्य से अभिप्राय है बाल साहित्य को इतनी सफलता एवं स्वच्छंद यही शब्दों में लिखा जाना चाहिए । बच्चे उसे आसानी से समझे एवं पढ़ सकें । अपने जीवन में ढाल सकें बाल साहित्य को पढ़कर वह अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर पाए बच्चे ऐसे साहित्य को ज़्यादा से ज़्यादा पसंद करते हैं जिसमें उनके लिए कोई मन पढ़ी जाने वाली पसंदीदा कहानी यह जानकारी के गुणों हों बच्चों के द्वारा पढ़ें किताबों की भाषा सरल एवं शुद्ध शब्दों में लिखे साहित्य को बच्चे सरलता से अपना लेते हैं इस साहित्य के द्वारा उनको किसी प्रकार की कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता है

नागेश पांडेय बाल साहित्य संस्कृति की समृद्ध परंपरा के प्रति जागरूकता पैदा करना चाहते हैं संस्कृति किसी भी राष्ट्र की अक्षृण सम्पदा होती है भारत वर्ष के पास तो संस्कृति की समृद्ध परंपरा है,,(9) बच्चों को अपनी संस्कृति के प्रति जागरूक करने के लिए बाल साहित्य में बच्चों के लिए रीति रिवाज़ों परंपराओं से जुड़ा साहित्य लिखा गया है जिससे बच्चे अपनी संस्कृति को जान सकें एवं समझ पाए अपने जीवन में उसे निभाने की कोशिश करें । अपने देश के त्योहारों पर वो धार्मिक स्थलों की जानकारी प्राप्त करने में सक्षम हो अपने देश की संस्कृति को सफलतापूर्वक आने वाली पीढ़ी के जीवन में ढाल सके जिससे बाल मन में अपनी संस्कृति के प्रति प्रेम भावना उत्पन्न हो और राष्ट्रीय की सम्मानीय छवि हेतु सदैव प्रेरित प्रोत्साहित रहे

नागेश पांडेय बाल साहित्य में आकाशवाणी दूरदर्शन की भूमिका पर बल देते हुए इसके महत्व को बताते हैं "वर्तमान युग इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का युग है आकाशवाणी दूरदर्शन इत्यादि घर घर के अभिन्न अंग बन चुके हैं,,(10) आकाशवाणी से बाल साहित्य में महत्वपूर्ण सफलता मिलती है

आकाशवाणी एवं दूरदर्शन की सहायता से बच्चे देश विदेश के बाल कविता नाटक कहानियों के बारे में जान पाते हैं यह बच्चों के ज्ञान शक्ति को बढ़ाने में मदद करती है कुछ अच्छी कविताओं पर दूरदर्शन की महती भूमिका है दूरदर्शन एवं आकाशवाणी के अनेक चैनलों के द्वारा बच्चों की मानसिकता में भी बदलाव लाया जा सकता है बाल साहित्य की कहानी दृश्य कैसेट डी.वी.डी . द्वारा रिकॉर्ड करके दिखाएं एवं सुनाए जा सकते हैं यह सब सुविधा बाल साहित्य को प्रोत्साहित कर रही है

अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि आज के साहित्य में बाल रूप की समस्या हमारे साथ आस पास घटित हो रही है। हमें बदलाव लाने की आवश्यकता है वर्तमान में यदि बाल रूप के बारे में सोचा जाए । तो बड़ी सफलता से इन समस्याओं को ख़त्म किया जा सकता है । जैसे की बच्चों को माता पिता द्वारा समय पर सही पालन पोषण न देना । स्कूलों में बच्चों से जुड़े कार्यक्रम यह प्रतियोगिता ना कराना । इन सब कारणों से हमारे देश के बच्चे पीछे रह जाते हैं । इसीलिए हमें इन समस्याओं को हल करने के लिए अपने बाल साहित्य को बेहतर लिखने की आवश्यकता है । यह हमारा दायित्व ही नही कर्तव्य है अपने देश के प्रति और बच्चों के प्रति ।

संदर्भ ग्रंथः

1. पांडेय डॉक्टर नागेशः बाल साहित्य के प्रतिमान, प्रकाशक – बुनियादी साहित्य प्रकाशन, स्थान – लखनऊ , संस्करण– प्रथम संस्करण 2009 , पृष्ठ संख्या – 10
2. चक्र डॉक्टर राकेशः बाल मनोविज्ञान परिवार और पर्यावरण , प्रकाशक – ड्रीम बुक सर्विस, स्थान – विश्वास नगर शाहदरा दिल्ली , प्रथम संस्करण 2023 , पृष्ठ संख्या – 23
3. शर्मा डॉक्टर दिविक रमेशः बाल साहित्य में समाज , प्रकाशक – बुनियादी साहित्य प्रकाशन , स्थान – शाहदरा , प्रथम संस्करण 2009 पृष्ठ –8
4. पांडेय डॉक्टर नागेशः बाल साहित्य के प्रतिमान, प्रकाशक – बुनियादी साहित्य प्रकाशन , स्थान – लखनऊ , संस्करण – प्रथम संस्करण 2009 , पृष्ठ संख्या – 12
5. पांडेय डॉक्टर नागेशः बाल साहित्य विधा विवेचन , प्रकाशक – नमन प्रकाशन , स्थान – दरियागंज नई दिल्ली , संस्करण – प्रथम संस्करण 2012 , पृष्ठ 572
6. पांडेय डॉक्टर नागेशः बाल साहित्य समीक्षा और सृजन ,

प्रकाशक – विनायक पब्लिकेशन , स्थान – प्रयागराज इलाहाबाद , संस्करण प्रथम संस्करण 2012 , पृष्ठ संख्या –56

7. पांडे डॉक्टर नागेश रू बाल साहित्य समीक्षा और सृजन , प्रकाशक – विनायक पब्लिकेशन , स्थान – प्रयागराज इलाहाबाद , प्रथम संस्करण 2012 पृष्ठ संख्या – प्राककथन
8. पांडे डॉक्टर नागेश रू बाल साहित्य के प्रतिमान, प्रकाशक– बुनियादी साहित्य प्रकाशन ,स्थान – लखनऊ, संस्करण –प्रथम संस्करण 2009 , पृष्ठ – 12
9. पांडेय डॉक्टर नागेश रू बाल साहित्य के प्रतिमान ,प्रकाशक– बुनियादी साहित्य, प्रकाशन –लखनऊ ,प्रथम संस्करण 2009 ,पृष्ठ –22
10. पांडेय डॉक्टर नागेश रू बाल साहित्य के प्रतिमान, प्रकाशन – बुनियादी साहित्य प्रकाशन , स्थान – लखनऊ , संस्करण – प्रथम संस्करण 2009 , पृष्ठ –28

वर्षा लाम्बा
शोधार्थी
डॉ0 (प्रोफेसर) दिग्विजय शर्मा
विषय – हिन्दी
विश्वविद्यालयः– Sanskrit University Chhate, Chhata, Mathura
पताः मुजेसर, फरीदाबाद
email ID - vershalamba99@gmail.com
मोबाइल न0 . 9871085523

24

भीष्म साहनी की रचनाधर्मिता

नूतन कुमारी

शोध सारः

सामाजिक यथार्थ की जो परम्परा प्रेमचन्द ने शुरू की थी, उसे अधिक वैज्ञानिक समझ के साथ कलात्मक आधार देकर साहित्य में स्थानान्तरित करने का सपना लेकर भीष्म साहनी हिन्दी कथा साहित्य में अवतरित हुए। वे नयी कहानी के उस जमात के लेखक थे,जिसने सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक विषमताओं और विसंगतियों के दौर से गुजरते हुए अपने कथात्मक वातावरण का निर्माण किया। ये ऐसे लेखक थे जिन्होंने न तो कथा के पारम्परिक ढाँचे में सामयिक विषमताओं का चित्रण किया और न ही मनोवैज्ञानिक रचनाकारों की तरह पात्रों की मानसिक उलझनों के घेरे में पाठकों को उलझाया। उन्होंने विभाजन के बाद अनेकानेक स्तरों पर पैदा हुई नवीन अनुभूतियों, संघर्ष के नये छोरों और मोह–भंग की मानसिकता को यथार्थ के घरातल पर गहरी सम्पृक्ति के साथ व्यक्त किया। भीष्म साहनी ने इन्हीं से जुड़ते हुए प्रेमचन्द और यशपाल की परम्परा को आत्मसात् कर उसे युग–बोध की गहरी संवेदनशीलता और प्रबुद्ध रचनात्मक दृष्टि से समन्वित कर अपनी रचनाधर्मिता के लिए रास्ता तलाशा ।

भीष्म साहनी का जन्म 8 अगस्त, सन् 1915 को रावलपिंडी (पाकिस्तान) के कट्टर आर्यसमाजी परिवार में हुआ था और निधन 11 जुलाई, 2003 को दिल्ली में हुआ। भीष्म साहनी ने जिस युग में अपनी आँखें खोलीं वह आंदोलन का युग था। सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक नवजागरण की पूर्ण ध्वनि, देश, समाज और मनुष्य को आंदोलित कर रही थी। परिवार में चलनेवाली समाज सुधार चर्चाओं, स्वतंत्रता आन्दोलन की तीव्र हवाओं में होनेवाली सभाओं और जुलूसों का प्रभाव भीष्मजी के मन–मस्तिष्क पर भी पड़ा, जो आगे चलकर उनके लेखन में व्यंजित हुआ। भीष्म जी की प्रारंभिक शिक्षा गुरुकुल परंपरा के अंतर्गत हुई। उनकी प्रारंभिक स्कूली शिक्षा रावलपिंडी में और उच्च शिक्षा लाहौर में हुई। बँटवारे से पूर्व उन्होंने पैतृक व्यापार किया, उसके बाद अध्यापन, पत्रकारिता और इप्टा नामक नाटक मण्डली में अभिनय से सम्बन्धित गतिविधियों से जुड़े रहे। बड़े भाई बलराज साहनी फिल्मी दुनिया में मुम्बई में जम चुके थे। भीष्म जी ने भी अपना भाग्य यहाँ आजमाना चाहा, मगर फिल्म नगरी मुम्बई उन्हें रास नहीं आयी। वहाँ से शीघ्र ही पंजाब आकर अध्यापन से जुड गये। इस बीच उन्होंने लगभग सात वर्ष विदेशी भाषा प्रकाशन (गृह मास्को) में अनुवादक के रूप में बिताये। फिर दिल्ली विश्वविद्यालय में उन्हें प्रवक्ता के रूप में स्थायी नौकरी मिल गई । करीब ढाई वर्ष तक श्नयी कहानियाँश का सम्पादन किया। फिल्मों में अभिनय की तमन्ना मोहन जोशी हाजिर हो फिल्म और श्तमसश धारावाहिक के जरिये पूरी हुई।

भीष्म साहनी ने एक संवेदनशील कलाकार का दिल पाया था, जो उन पर बराबर सर्जनात्मक दबाव बनाता रहा और इसी दबाव में गढ़ी जाती रही उनकी कृतियों की लम्बी श्रृंखला। उनकी प्रकाशित प्रमुख कृतियाँ हैं– उपन्यास झरोख, कड़िया तमस, बसंती, मैयादास की माढी, कुंतो, नीलू–नीलिमा नीलोफर । कहानी– भाग्य रेखा, पहला पाठ, भटकती राख, पटरियाँ, बागंचू, शोभायात्रा, निशाचर, पाली, डायन। नाटक –माधवी, हानूश, कबीरा खड़ा बाजार में, मुआवजे। निबन्ध –अपनी बात । बाल–साहित्य– गुलेल का खेल, वापसी।

भीष्म जी के प्रस्तुत ब्यौरे से स्पष्ट है कि उन्होंने अनेक विधाओं में लिखा। मगर वे चर्चित हुए अपनी कहानियों के बल पर। बाद में उनके नाटकों के सफल मंचन और उपन्यास तमस पर बने टी.वी. धारावाहिक ने उन्हें लोकप्रिय बनाया। हंस में उनकी पहली कहानी नीली आँखें प्रकाशित हई। चीफ की दावत से उन्होंने कहानी–आलोचना के पृष्ठों में अपनी जगह बनायी। यूँ तो वृद्धावस्था की असहायता और पीड़ा के केन्द्र में प्रेमचंद बहुत पहले बूढ़ी काकी रच चुके थे। बाद में उषा प्रियंवदा ने वृद्धावस्था की संवेदना के तार से वापसी गढ़ी। लेकिन चीफ की दावत से हिन्दी कहानी के अन्तर्गत समाज में कैरियरिज्म के प्रभाव की शुरुआत मानी जा सकती है।

भीष्म साहनी की कहानियाँ वस्तु परक यथार्थ का रचनात्मक साक्ष्य प्रस्तुत करती हैं; जहाँ समसामयिकता का तीखा बोध संवेदना का मूल आधार है। विभाजन की त्रासदी, साम्प्रदायिकता तनाव, मोह–भंग, टूटे–बिखरते मानवीय मूल्य, राजनीतिक अन्तर्विरोध, सामाजिक विसंगतियाँ, मध्यवर्गीय जीवन की विडम्बनाएँ व्यापक जीवन बोध का अंग बनकर उनकी रचनाओं में मूर्त हुई हैं। कथानुभव में जीवन का युग–बोध पात्रों और परिस्थितियों के सच्चे सन्दर्भों के साथ अभिव्यक्त हुआ। स्वातन्त्र्योत्तर कहानियों में भारत के श्मध्यवर्गीय मिजाजश को धारण करने का जो सिलसिला शुरू हुआ उसमें भीष्म साहनी के कथा अनुभव ने भी दखल दिया। मध्यवर्गीय जीवन के मूल्य परिवर्तन की स्थितियाँ, आशाएँ, आकांक्षाएँ, बदलाव, संघर्ष, जटिलताओं का सीधा प्रतिबिम्ब उतारती हैं उनकी कहानियाँ ।

भीष्म साहनी की कथावस्तु की रेंज अपने समकालीन रचनाकारों में मोहन राकेश, अमरकान्त, कमलेश्वर जैसी नहीं और न ही उनमें राही मासूम रजा और यशपाल की रचनाओं की तरह

वैचारिक पैनापन है। लेकिन जीवन के जिस किसी टुकड़े को कथावस्तु में उठाया उसे गहरी संवेदनशीलता की ऊष्मा में लपेटकर सादगी और दायित्व बोध के साथ रूपायित किया। परिवर्तन गामी होने के कारण उनकी कहानियाँ वैचारिक दायरे से नियन्त्रित जरूर होती हैं, लेकिन विषय वस्तु पर वैचारिक चेतना आक्रामक तेवर के साथ हावी नहीं होती। वे वर्तमान के विरोध में शिकायत के स्तर पर खड़ी हैं; बिना किसी आक्रोशात्मक मुद्रा के। गहरे अवसाद और अफसोस से तर उनकी रचनाओं को पढ़ने पर ऐसा लगता है– जैसे वे कह रही हों–देखो, क्या जमाना आ गया है! और लगता है कि छल, छद्म और चतुराई तो दूसरे कर रहे हैं मगर शर्मिन्दा रचनाकार हो रहा है।

जीवन के आम टुकड़े को आम निष्कर्ष के साथ प्रस्तुत करती भीष्म जी की कहानियों का वैशिष्ट्य इस बात में है कि वे पाठक की चेतना में शीघ्र ही संक्रमित हो जाती हैं। पाठक उनके कथानुभव में अपनी साझेदारी की समझ से उत्तेजित हुए बिना नहीं रहता। पंजाबी, उर्दू और आंचलिक शब्दों की बघार से रवानगी पाती भाषा व्यंग्य की धार से सामयिक स्थितियों में मानवीय संवेदनाओं की सघनता और मार्मिकता के साथ उतारती हैं। वैज्ञानिक विवेक, सामाजिक, बोध, सरल, सहज और सादी अभिव्यक्ति भीष्म जी को आधुनिक हिन्दी का स्मरणीय रचनाकार बनाती है।

निर्मल वर्मा ने भीष्म साहनी को नई कहानी का पितामह कहा था। लेकिन यह सम्बोधन भीष्म साहनी के बहुआयामी सृजन और व्यापक व्यक्तित्व के लिए बहुत छोटा है। उपन्यास और कहानी, नाटक और रंगमंच, आत्मकथा और समीक्षा जैसी कई विधाओं में उनका रचना–संसार भास्वर था। उनकी बहुत सारी रचनाएँ स्वातंर्त्योत्तर हिन्दी साहित्येतिहास में कभी नहीं भुलाई जा सकेंगी। न उनका उपन्यास श तमसश इतिहास से ओझल होगा और न चीफ की दावतश और न वांगचूश जैसी कहानियाँ कभी विस्मृत होंगी। इसी तरह उनका नाटक श्कबिरा खड़ा बजार में, हमेशा ही रंग कर्मियों के लिए चुनौती रहेगा। अपनी आत्मकथा –आज का अतीत में उन्होंने अपने बहाने सामयिक परिदृश्य का प्रस्तावन किया है। भीष्म साहनी को 2002 में साहित्य अकादमी का महत्तर सदस्य बनाया गया तो इस अवसर पर दिए गए अपने वक्तव्य में उन्होने कहा – लगता नहीं कि किसी लेखक ने अपनी कलम यह सोचकर रख दी हो कि अब उसकी भूमिका निर्थक हो चुकी है। साहित्य की भूमिका के बारे में मोहभंग किसी और का हुआ हो, स्वयं मुझे नहीं हुआ है।श इस वक्तव्य का उदाहरण स्वयं भीष्म साहनी का अपना व्यापक साहित्य सृजन है। उनका पहला कहानी संग्रह 1953 में प्रकाशित हुआ था और तब से पचास वर्षों के बाद 2003 में उनकी आत्मकथा श आज का अतीत श्श सामने आई। इन पाँच दशकों की रचना–यात्रा में भीष्म साहनी ने कई विद्याओं में कालजयी रचनाएँ प्रस्तुत कीं।

उनके उपन्यासों की बात की जाये तो निश्चय ही यशपाल के झूठा– सचश के बाद भीष्म साहनी का ष्तमसश ही भारत– विभाजन की मार्मिक गाथा प्रस्तुत करने वाला विलक्षण उपन्यास है। श्तमसश में देश–विभाजन की क्रूरता को प्रस्तुत करने वाले कथाकार ने बाद में मैयादास की माढी, कुंतो, नीलू नीलिमा निलोफर जैसे उपन्यास भी लिखे, लेकिन हिन्दी साहित्य का इतिहास उन्हें श्तमसश वाले भीष्म साहनी के रूप में ही याद रखेगा।

इसी तरह उन्होंने वांगचू, ढोलक, अमृतसर आ गया है, संभल के बाबू, साग–मीट जैसी कई उल्लेखनीय कहानियाँ लिखीं। उनके दस कहानी संग्रह भी आए हैं। लेकिन चीफ की दावत कहानी प्रेमचंद की बूढी काकी का स्मरण कराती हुई कहानीकार भीष्म साहनी को ईदगाह और पूस की रात के समीप खडा करती है। भीष्म साहनी ने अपनी सभी कहानियों में जीवन को उद्घाटित किया है और अपने आस–पास की दुनिया को उपस्थित किया है।

संदर्भ ग्रंथः–

1 हिंदी साहित्य का इतिहास –सं. डा नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, न ई दिल्ली 1973

2 हिंदी उपन्यास कोश–खंड–1 डा गोपाल राय, ग्रंथ निकेतन, रानी घाट, पटना –6,1968

3 हिंदी उपन्यास कोश, खंड–2 –डा गोपाल राय, ग्रंथ निकेतन, रानी घाट,पटना–6,1969

4 हिंदी कहानी का विकास –डा गोपाल राय, अनुपम प्रकाशन, पटना –4,2000

5 हिंदी कहानी के सौ वर्ष–डा दीनानाथ सिंह, मीनाक्षी प्रकाशन दिल्ली –110092, 2009

6 आज के अतीत –भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003

नूतन कुमारी

शोध– छात्रा, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग

मुंगेर विश्वविद्यालय, मुंगेर (बिहार)811201

चलभाष–9006288678

25

नागेश पांडेय संजय के बाल साहित्य मे बाल जीवन की विविध समस्याए

वर्षा लाम्बा, डॉ0 (प्रोफेसर) दिग्विजय शर्मा

सारांश

बाल साहित्य में बाल जीवन की विविध समस्याओं को भी दर्शाया गया है। इन समस्याओं को उजागर करने में हिंदी के प्रमुख साहित्यकार रहे हैं। देवेंद्र मेवाडी, दिविक रमेश, मुंशी प्रेमचंद, हरि कृष्ण देवसरे, सोहनलाल द्विवेदी, नागेश पांडेय आदि अग्रणी है। प्रतिष्ठित बाल साहित्यकार ओर समीक्षक डॉक्टर नागेश पांडेय 'संजय' का बाल साहित्य में बहुआयामी योगदान है उन्होंने बाल मनोविज्ञान को केंद्र में रखकर लगभग एक हजार से अधिक मौलिक रचनाएँ की है। बाल साहित्य को समझने में एक भ्रांति उत्पन्न हो जाती है कि इसे मनोरंजक साधक समझा जाता है बल्कि यह मनोरंजन का साधन नहीं है, यह बच्चों के जीवन की समस्याओं को हल करने का एक सरल सूत्र है। बाल साहित्य बच्चों के आने वाले भविष्य को नज़र में रखते हुए लिखा जाता है। सरल एवं सहज मुहावरों लोकोपक्तियों से संयुक्त भाषा का प्रयोग किया जाता है। बच्चों की स्वास्थ्य से संबंधित समस्याएं बढ़ती जा रही है। वर्तमान में शारीरिक गतिविधियों की कमी के कारण बच्चों में कम उम्र से ही मोटापा और आँखों की कमज़ोरी जैसी समस्याएं बढ़ रही है। इसका मुख्य कारण है कि बच्चे फ़ास्ट फूड खाने के आदी हो रहे है। शारीरिक परिश्रम कम और अधिक आहार से लीवर और दिल की बीमारियाँ बढ़ रही है। हँसता–खेलता बचपन अब लुप्त–सा हो रहा है।

बीज शब्दः बाल साहित्य समस्या, शिक्षा, समाज, स्वास्थ्य, तकनीकी, दबाव।

मूल आलेखः बाल साहित्य में आने वाली समस्या पर ध्यान देते हुए नागेश पांडेय लिखते है ष्आज का बोझिल पाठ्यक्रम कंप्यूटर इंटरनेट, वीडियो गेम, टी. वी. कामिक्स के मकड जाल से बुरी तरह उलझा है।1

बाल जीवन में यह इलेक्ट्रॉनिक डिवाइस सब से बड़ी समस्या उत्पन्न कर देते है इनके प्रभाव के कारण बच्चे किताबों, कॉपिया वंछित वंचित रह जाते है इसका असर उनके आने वाले भविष्य से पर पड़ता है जिसका उन पर ग़लत प्रभाव हो सकता है इन सभी समस्याओं को दूर करने के लिए हमें बच्चों को नई तकनीकों से दूर रखकर अपनी पुरानी तकनीकों को ध्यान देना चाहिए। तभी बच्चे इन से दूर रह सकते है किताबो का प्रयोग ज़्यादा कर सकते है।

डॉक्टर रामकुमार वर्मा बाल साहित्य के द्वारा बच्चों मे पोषण की जिज्ञासा पैदा करना चाहते थे, बाल साहित्य ऐसो हो जो बच्चों में सहज सात्विक उत्सुकता उत्पन्न करे, उनके कुतूहल का प्रवद्वन और पोषण करे तथा जिज्ञासा की तृप्ति करे।2 ऐसे बाल साहित्य के द्वारा ही बच्चों के शारीरिक स्वास्थ्य में आने वाली समस्या को दूर किया जा सकता है क्योंकि बच्चों को जब शुद्ध पोषित आहार दिए जाएँगे तभी उनका मस्तिष्क ठीक प्रकार से कार्य कर पाएगा। तभी वह भविष्य में सफलता को प्राप्त कर सकेंगे। बच्चों की उम्र के साथ माता–पिता बच्चों की खाने–पीने का भी ध्यान रखना चाहिए। जिससे बच्चों के शारीरिक वृद्धि का विकास भी ठीक प्रकार से हो पाए। मस्तिष्क भी ठीक प्रकार से कार्य करता रहे।

बाल कविता संग्रह 'अम्मा को अब भी है याद' की समीक्षा करते हुए लिखते है– वर्तमान में संस्कार और सभ्यता न्यून है बच्चे बड़ों के पैर छूने मे असहज लगते है गाँव को अपना गाँव नहीं बल्कि पापा और दादा का गाँव कहते है।3 जैसे–जैसे बच्चे बड़े होते है तो अपनी सभ्यता संस्कार भूल जाते। यह समस्या आज कल के बच्चों में अत्यधिक पाई जाती है। इस समस्या को ख़त्म करने के लिए हर माता–पिता का दायित्व होता है की वह अपनी बच्चों को पालन पोषण एवं संस्कार उनको दे। यह तभी संभव हो पाएगा जब वह अपनी आने वाली पीढी को बाल साहित्य ज्ञान ठीक प्रकार से समझाने में सफल होगे। यदि वह समय के चलते उन्हें इस ज्ञान से वंछित रखेंगे। तो उनके बच्चे इस समस्या का शिकार बनते रहेगे।

डॉक्टर राकेश चक्र ने बचपन में खेल कूद ना करने से पैदा हुई समस्या को दर्शता हुए लिखा है कि बचपन की खेल कूद व्यायाम या योग आदि से बाल जीवन में बड़ी समस्या है। भौतिक विकास ने बचपन को घर की चार दीवारी में कैद करके रख दिया है वह यंत्रवत हो गया है उससे खेलने कूदने की आज़ादी छीन ली गई है उसके स्व विकास के पंख कतर दिए गए है वह एक किताब की भर रह गया है।4 बच्चों के बचपन में इस तरह की समस्याएं अक्सर उनके माता पिता के द्वारा पैदा होती है। ज्यादातर माता–पिता अपने बच्चों को डाँट–फटकार मारते रहते है यहाँ मत खेलों, यह मत खेलों, इसके बातें मत करो, उसके पास मत जाओ। यह सब बातें बच्चों के बचपन की खुशी को छीन लेती है, इसी कारण एक स्वस्थ बच्चा मानसिक रोग शिकार बन बैठता है। कभी–कभी तो वह अपनी जिद पर आकर कुछ ग़लत कदम भी उठा लेता है। एक तरफ पढ़े–लिखे माता–पिता उनको सिर्फ़ पढाई का ही ज्ञान देते रहते है, जिससे वह किताबी व्यक्ति बन कर रह जाते है बाहरी दुनिया की जानकारी वह प्राप्त ही नहीं कर पाते हैं। इसलिए कहा जाता है बच्चों की पढ़ाई के साथ साथ खेल कूद व्यायाम आपसी बातचीत

ज्ञान आवश्यक प्रदान कर जिससे उनका मनोरंजन भी होता रहे और उन्हें नई–नई चीजे भी सीखने को मिले ताकि वह अपने आपको इस समस्या से बचा सकें।

बाल कविता–संग्रह 'अम्मा को अब भी है याद' की समीक्षा करते हुए लाल देवेंद्र कुमार श्रीवास्तव विज्ञानपरक कविताओं की समस्या को प्रकट हुए लिखते है, वर्तमान में विज्ञान पर कविताएँ और बाल विज्ञान कहानियॉ खूब लिखी जा रही है, पर उतनी लोकप्रिय नहीं हो पा रही है क्योंकि विज्ञान के तकनीकी एवं कठिन शब्द बच्चों को सहज–सरल नही लगते है।5 विज्ञान पर कविताएँ एवं विज्ञान परक कहानियां में अक्सर शब्द की समस्याएं उत्पन्न हो जाती है जिसके कारण बच्चों का स्तर यहीं रुक जाता है उन्हें अपनी बाल्य अवस्था में बहुत समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इस समस्या को ख़त्म करने में विद्यालयों का विशेष महत्व माना जाता है क्योंकि आजकल के स्कूलों में स्मार्ट बोर्ड, कंप्यूटर पर कार्य ज़यादा कराया जा रहा है। इस कारण शब्द की समस्या पर उत्पन्न हो जाती है, यह सभी इलेक्ट्रॉनिक डिज़ाइन बच्चों के स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक होते है। क्योंकि बहुत से बच्चे कंप्यूटर, स्मार्ट बोर्ड को बहुत पास से देखना पसंद करतें है और वह इनकी आवाज़ को सुनने के लिए हेडफोन इस्तेमाल कर लेते है जिसके कारण कानों की समस्या उत्पन्न हो जाती है और बच्चों को ठीक प्रकार से सुनाई नहीं देता है। इन सब समस्याओं को ख़त्म करने के लिए विद्यालयों को किताबों का प्रयोग अधिक से अधिक करना चाहिए। माता–पिता को भी अपने बच्चों को ऐसी वस्तुओं से दूर रखना चाहिए, तभी वह स्वस्थ हष्ट पुष्ट रह सकते है। बच्चों के बचपन में इस तरह की समस्याएं अक्सर उनके माता–पिता के द्वारा पैदा होती है। ज्यादातर माता –पिता अपने बच्चों को डॉट–फटकार मारते रहते है यहाँ मत खेलों, यह मत खेलो, इससे बातें मत करो, उसके पास मत जाओ। यह सब बातें बच्चों के बचपन की खुशी को छीन लेती है, इसी कारण एक स्वस्थ बच्चा मानसिक रोग शिकार बन बैठता है। कभी–कभी तो वह अपनी जिद पर आकर कुछ ग़लत कदम भी उठा लेता है। एक तरह पढ़े–लिखे माता–पिता उनको सिर्फ़ पढाई का ही ज्ञान देते रहते है, जिससे वह किताब कीड़ा बन कर रह जाते है। बाहरी दुनिया की जानकारी वह प्राप्त ही नहीं कर पाते हैं। इसलिए कहा जाता है बच्चों की पढ़ाई के साथ–साथ खेलकूद व्यायाम आपसी बातचीत ज्ञान आवश्यक प्रदान कर जिससे उनका मनोरंजन भी होता रहे और उन्हें नई–नई चीजे भी सीखने को मिले। ताकि वह अपने आपको इस समस्या से बचा सकें।

डॉक्टर विजय लक्ष्मी बच्चों के जीवन में आने वाली मुसीबतों एवं समस्या पर व्यंग्य करती हुई लिखती है कि आज का समाज तथा जीवन मुसीबत समस्याओं तथा खतरे से भरा है। बालों की सहज वृद्धि अक्सर समय पर काम नही आती है क्योंकि छोटी छोटी समस्याएं भी उन्हें बड़ी लगती है। उनमे चतुराई और पैनी दृष्टि के गुण लाने के लिए सबसे अधिक उपयुक्त मध्यम है कथा साहित्य।6 बाल कथा साहित्य बच्चों में पढ़ने की रुचि जागृत करने और बढ़ाने में कारगर सिद्ध हुआ है। बच्चे अपने जीवन को सुरक्षामय व्यतीत कर सकते है, नहीं तो बच्चों के जीवन में बहुत समस्याएं पैदा हो जाती है। बाल कथा साहित्य से बच्चों में काल्पनिक भावनाओं का समावेश होता है। वास्तविक जीवन वह न तो जीए पाएंगे, न ही सोच पाएंगे। वह काल्पनिक जीवन की समस्याओं के घेरे मे ही घिर कर रह जाएँगे इसलिए कहा जाता है बच्चों के जीवन काल के समय को शुरू होते ही। माता–पिता दादा–दादी शिक्षकों का कर्तव्य बनता है की वह बच्चों में कुशलता पूर्वक कथा साहित्य विज्ञान को प्रदान करे और उनके जीवन को ख़ाली रिक्तता को भर दे ताकि वह हर समस्या के समाधान आसानी से निकालने में सक्षम हो, अपने लक्ष्य को प्राप्त कर पाए।

डॉक्टर नागेश पांडेय बच्चों पर हो रहे मानसिक और भावनात्मक दबाव के बारे में लिखते हैं– "अजीब सा सवाल किया था उन्होंने तू किसके साथ रहेगा? मेरे साथ या अपनी माँ के साथ"7 कि रिश्तों का बच्चों के जीवन में क्या महत्व होता है। माता–पिता के अलग हो जाने के कारण बच्चों के भविष्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है, उनका आने वाला समय नष्ट हो जाता है। बच्चों की बालय–अवस्था से वृद्धावस्था तक दोनो का साथ रहना अत्यधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। एक बच्चे के लिए माँ की प्यार पापा की डॉट अति आवश्यक होती है इसलिए कहा जाता है माता–पिता को अपने रिश्तों को बहुत ही संभलकर निभाना चाहिए। यदि एक तरह से भी रिश्ते की डोर कमजोर पड जाती है तो इस रिश्ते का असर बच्चों के जीवन काल पर पड़ता है, इससे कई प्रकार की समस्याएं उत्पन्न हो जाती है जैसे की अकेलापनः जब बच्चे स्कूल से घर आते हैं तब वह अपने माता–पिता को एक साथ नहीं देखते है। वह इस बात को बहुत ही महसूस करने लगते हैं की जब हमारे दोस्तों के माता–पिता एक–दूसरे के साथ मिलजुल कर रहते है तो इसी तरह हमारे माता–पिता क्यों नहीं रह सकते है। इस प्रकार की बातों को सोचकर बच्चे अकेलापन महसूस करते है और मानसिक बीमारी का शिकार हो जाते है। इसलिए कहा जाता है की अपने रिश्तों की डोर को इतना मज़बूत बनाए रखो, की यह कभी टूटे ही न। आपके बच्चों का भविष्य ख़राब होने से बचा रहे। कोरोना काल में बच्चों के सामने मुख्य

समस्या आकर खड़ी हो गई थी की वह शिक्षा के लिए मोबाइल फ़ोनो का प्रयोग करने लगे थे जिस के कारण वह अपनी समय का भी सदुपयोग कर रहे थे। तरह–तरह की गेम वीडियो गेम्स में अपना समय नष्ट कर रहे थे। इन सभी कारणों से उनकी मानसिकता में बदलाव हो रहे थे, इस समस्या की रोकथाम और बच्चों को सही दिशा देने के लिए माता–पिता एवं विद्यालयों के मुख्य विशेष स्थान माना जाता है।

राकेश चक्र जी वातावरण व पर्यावरण में हो रही समस्याओं को दर्शाते हुए लिखते है कि हम अपनी कार्य शैली से सम्पूर्ण वातावरण वह पर्यावरण को प्रदूषित करने जा रहे है। हमारी सुविधा भोगिता हमें ऐसे मार्ग पर ले जा रही है कि हमारी आने वाली पीढ़ियाँ हमें क्षमा नहीं कर पाएंगी।8 हमें अपने पर्यावरण को स्वच्छ रखना चाहिए, जिससे की हमारे बच्चो के आस–पास का वातावरण स्वच्छ रहेगा। बच्चे श्वास नाम की बिमारी से दूर रह पाएंगे। पढ़ाई में उनका ध्यान ठीक प्रकार से लगा रहेगा, भविष्य मे उन्नति कर पाएंगे। बच्चों की पढ़ाई के साथ साथ वातावरण एवं पर्यावरण भी इतना साफ़ सुथरा होना चाहिए। उन्हें खेल के संसाधन समय पर उपलब्ध करने महत्वपूर्ण माना गया है ताकि उनके आसपास का वातावरण स्वच्छ बना रहे, जिससे वह मनोरंजन भी प्राप्त कर सकेगे। इसकी सहायता से उनका मस्तिष्क ठीक प्रकार से कार्य कर पाएगा । अपने बच्चों के अदंर पर्यावरण को स्वच्छ बनाने की जिज्ञासा पैदा करनी चाहिए, जिससे वह अपने आस–पास का वातावरण हरियाली से भर दे। बाल साहित्य के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण के प्रति बच्चों को सचेत किया जा रहा है। बाल साहित्य का असर इतना गहरा जा रहा है कि बच्चा पर्यावरण के प्रति अपनी भूमिका का निर्वहन करने लगता है।

डॉक्टर दिनेश पाठक 'शशि' बच्चों के ऊपर माता–पिता के द्वारा बनाए गए दबाव को अपने शब्दों में व्यक्त करते हुए बताते है आज अधिकांश बच्चों को बचपन बहुत त्रासद स्थितियों से गुज़र रहा है उनके माता–पिता जिन चीज़ों को और जिन सफलताओं को अपने जीवन में हासिल न कर सके उनकी अपेक्षा अपने लाडलो से करने लगते है जोकि बच्चों के मानस पर बहुत ही प्रतिकूल प्रभाव डालती है9 ऐसे माता–पिता चाहते हैं कि उनके बच्चे स्कूल कॉलेजों में 100 मे से 99 मार्क्स हासिल कर कक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करे, जिससे उनका स्कूल एवं आस–पड़ोस में ऊँचा नाम हो और साथ ही साथ उनको स्कूल द्वारा फीस में भी छात्रवृत्ति के रूप में दिया जाए। ऐसे माता–पिता अपने बच्चों पर इतना दबाव डाल देते है की वह मानसिक रोग का शिकार बन जाते है और इस समस्या का सामना उन्हें जीवन भर करना पड़ता है। दूसरी तरफ ऐसे भी माता–पिता होते है जो अपने जीवन में कुछ नहीं कर पाते है लेकिन वह दूसरो के बच्चों को देखकर अपने बच्चों को डॉक्टर, इंजीनियर बनने का दबाव उनके ऊपर डाल कर उन्हें डिप्रेशन जैसी बिमारी का शिकार बना देते है। माता–पिता अपने बच्चों को हष्ट –पुष्ट जीवन जीने दे और उन्हें वही पढ़ाई करने दे जिसमें बच्चों की रुचि होती है। यही उनका कर्तव्य भी है और अपने बच्चों के प्रति प्रेम भी है। बच्चों के साथ माता–पिता को भी बाल साहित्य पढ़ना चाहिए, ये उन्हें बच्चों को समझने में सहायक सिद्ध होती है।

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि आज के बच्चों के जीवन में बाल रूप से समस्याएं उत्पन्न हो जाती है क्योंकि आज का युवा समाज इंटरनेट के मकड़जाल में चारों तरफ़ से फँसा हुआ है। वह अपनी आने वाली पीढी को भी यही ज्ञान प्रदान करता है जैसे की मोबाइल फोन का इस्तेमाल ज़्यादा से ज़्यादा करना। मोबाइल फ़ोन का प्रभाव बच्चों की आँखों, कानों एवं मस्तिष्क पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। बच्चे के मोबाइल फ़ोन को पास से देखने पर बच्चों की आँखों की रोशनी चली जाती है उन्हें छोटे ही उम्र में चश्मे लग जाते है। हेडफोन का इस्तेमाल करने से बच्चों की सुनने की शक्ति कम हो जाती है, जिससे की छोटी उम्र में उनके कानों के ऑपरेशन हो जाते है और इसका बुरा प्रभाव उनके जीवन काल में तब पड़ता है। वह गूगल का प्रयोग करके कठिन से कठिन सवालो का हल बड़ी ही सरलता से निकाल लेते है जिसके कारण उनका मस्तिष्क ठीक प्रकार से काम करना बंद कर देता है और उनकी धीरे धीरे सोचने की शक्ति कम होती चली जाती है। इसलिए जहाँ तक संभव हो बच्चों को अत्याधुनिक इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का प्रयोग कम और किताबो का ज्ञान ज़्यादा प्रदान करना आवश्यक है। नागेश पांडेय ने अपने बाल साहित्य में न सिर्फ इन समस्याओं को उठाया है, साथ ही समाधान भी प्रस्तुत किया है।

संदर्भ ग्रंथः

1.पांडेय, डॉक्टर नागेशः बाल साहित्य के प्रति मान, बुनियादी साहित्य प्रकाशन लखनऊ, प्रथम संस्करण 2009 , पृ. 39

2.पांडेय, डॉक्टर नरेशः बाल साहित्य के प्रतिमान, बुनियादी साहित्य प्रकाशन लखनऊ, प्रथम संस्करण 2009 , पृ. 12

3.श्रीवास्तव लाल देवेंद्र कुमारः बाल किरण, रवीना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2023 पृ. 86

4.चक्र, डॉक्टर राकेशः बाल मनोविज्ञान परिवार और पर्यावरण, ड्रीम बुक सर्विस विश्वास नगर शाहदरा , दिल्ली, प्रथम संस्करण 2023, पृ. 147

5.श्रीवास्तव लाल, देवेंद्र कुमारः बाल किरण, रवीना प्रकाशन

दिल्ली, प्रथम संस्करण 2023, पृ. 86
6.पांडेय, डॉक्टर नागेशः बाल साहित्य के प्रति मान बुनियादी साहित्य प्रकाशन लखनऊ, प्रथम संस्करण 2009 , पृ. 146
7.पांडेय, डॉक्टर नागेशः टेढा पुल, प्रकाशक विभा प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण – 2015 , पृ. 8
8.चक्र, डॉक्टर राकेशः बाल मनोविज्ञान परिवार और पर्यावरण, ड्रीम बुक सर्विस विश्वास नगर दिल्ली प्रथम संस्करण, पृ. 33
9.पाठक, डॉक्टर दिनेशः बाल साहित्य एक विमर्श, वितरक एक्सप्रेस पब्लिशिंग तमिलनाडु, प्रथम संस्करण 2022 , पृ. 23

वर्षा लाम्बा
शोधार्थी
डॉ0 (प्रोफेसर) दिग्विजय शर्मा
विषय – हिन्दी
विश्वविद्यालयः– Sanskrit University Chhate, Chhata, Mathura
पताः मुजेसर, फरीदाबाद
email ID - vershalamba99@gmail.com
मोबाइल न0 . 9871085523

26

सादा जीवन उच्च विचार के विग्रह रूप्रो. पं. जगन्नाथ प्रसाद मिश्र

प्रो डॉ0 रेखा मिश्रा

सारांश

किसी सरस्वती पुत्र की सुदीर्घ सारस्वत साधना का आकलन करना आसान काम नहीं है, विशेषतरू उस सरस्वती पुत्र की साधना का आकलन करना तो और भी कठिन कार्य है; जिसका व्यक्तित्व और कृतित्व बहु–आयामी हो, जिसके चिंतन का आकाश विस्तृत और व्यापक हो और जो एक साथ कई भाषाओं एवं विधाओं में निष्णांत हो, ऐसे वाणी साधिक का बहिरंग जितना व्यापक होता है, अंतरग कहीं उससे अधिक गहरा। सज्जनता, सहृदयता साधुता एवं सादा जीवन उच्च विचार के विग्रह पं. जगन्नाथ प्रसाद मिश्र ऐसे ही वाणी साधक और सरस्वती के वरद् पुत्र थे।

ऐसे वाणी साधक और सरस्वती के वरद् पुत्र पं. जगन्नाथ प्रसाद मिश्र का जन्म बिहार प्रांत के दरभंगा जिले के पतौर ग्राम में 17 जुलाई 1896 में एक साधारण सहदोलिया मूल के पराशर गोत्रीय ब्राह्मण परिवार में हुआ था।इनके पिता का नाम पं. राम उदार मिश्र और पितामह का नाम पं. नर सिंह नारायण मिश्र था। पंडित जी को तीन भाई और दो बहने थीं। इनके पिताश्री कलात्मक और धार्मिक अभिरूचि के व्यक्ति थे। इनके पिता श्री ने अपने समय के सुप्रसिद्ध पखावजी पं. देवकी नंदन पाठक से पखावज वादन की कला सीखकर महारत हासिल की। उन्होंने पैदल अयोध्या की भी यात्रा की थी। उन्होंने उर्दू फारसी साहित्य का अच्छा अध्ययन किया था।अपने पिता के इन सुसंस्कारों का अच्छा प्रभाव पं. जगन्नाथ प्रसाद मिश्र के व्यक्तित्व और कृतित्व पर पडा। इनका ननिहाल बेलछी है जो नालंदा जिला में अवस्थित है। इनके नाना पं राम गुलाम शर्मा संस्कृत के बडे पंडित थे। पंडित जी की प्राथमिक शिक्षा गांव के पाठशाला में और उच्च शिक्षा जी. बी. बी. कालेज (लंगट सिंह कालेज)मुजफ्फरपुर में संपन्न हुई।उन्होंने 1913 से 1918 तक में आई. ए. तथा बी. ए. की परीक्षाएं जी बी बी कालेज मुजफ्फरपुर से उच्च श्रेणी में पास की। 1920 में पटना ला कालेज से विधि शास्त्र में डिग्री प्राप्त की। कर्ममय जीवन में प्रवेश करने के अनेक वर्षो बाद 1932 में कोलकाता विश्वविद्यालय से हिंदी की एम. ए. की परीक्षा में उतीर्णता प्राप्त की। इस परीक्षा में प्रथमोप्रथम स्थान प्राप्त कर स्वर्ण पदक विजेता हुए।

पंडित जी का शुभ विवाह 1917 में शांडिल्य गोत्रीय ब्राह्मण परिवार में हुआ और 1933 में पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई,जिनका नाम पं. राजेश्वर मिश्र है, जो बिहार सरकार के एक सेवा निवृत पदाधिकारी हैं।सन् 1937 की ग्रीष्म ऋतु में पंडित जी की धर्म पत्नी का निधन हो गया, तदुपरांत वे आजीवन विधुर ही रहे।शुभैषियों ने विवाह की सलाह दी लेकिन पंडित जी ने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि भारतीय परंपरा में विवाह संतानोत्पति और वंश परंपरा की वृद्धि के लिए किया जाता है और मुझे राजेश्वर मिश्र जैसे पुत्र रत्न की प्राप्ति ईश्वर की कृपा से हो गई है, अतः किसी भी कीमत पर पुनर्विवाह स्वीकार नहीं है और पंडित जी के इस निर्णय की बाद में सबने सराहना की।उन्होंने विवाह को अस्वीकार करने के लिए अब्दुल रहीम खानखाना का यह दोहा भी उद्धृत कियारू–

रहिमन व्याह व्याधि है, सकहुं तो जाय बचाय।
पायंन बेंडी पडत है ढोल बजाय बजाय।।

इस संसार में मनुष्य योनि में जन्म लेना कठिन है ,विद्या की प्राप्ति उससे कठिन है ,कविता करना उससे कठिनतर और कविता में स्वाभाविक अभिव्यक्ति की उपस्थिति एवं शक्ति तो और भी कठिनतम् है। यही कारण है कि हिंदी के मूर्धन्य समालोचक एवं सुप्रसिद्ध इतिहासकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कविता को मनुष्यता की उच्च भूमि कहा है । कविता को परिभाषित करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि ष्जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है ; हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं। इस साधना को हम भाव योग कहते हैं और कर्म योग एवं ज्ञान योग के समकक्ष मानते हैं ष्।

आधुनिक युग के सर्वाधिक लोकप्रिय गीतकार डा गोपाल दास नीरज ने लिखा है किरू

आत्मा के सौंदर्य का शब्द रूप है काव्य।
मानव होना भाग्य है कवि होना सौभाग्य।

मुझे यह लिखते हुए प्रसन्नता हो रही है कि पं. जगन्नाथ प्रसाद मिश्र को मानव होने का भाग्य और कवि होने का सौभाग्य एक साथ प्राप्त था।

आचार्य भर्तृहरि ने अपने नीति शतकं में लिखा है किरू–

साहित्य–संगीत–कला विहीनः,
साक्षात् पशु पुच्छ विषाणहीनः।
तृणं न खादन अपि जीव मानः,
तद्भागधेयं परमं पशुनाम्।

अर्थात् जो प्राणी साहित्य संगीत और कला से हीन है, वह साक्षात् पशु है। वह घास पात नहीं खाता– अतः यह पशुओं का अहोभाग्य है।

रीतिकाल के सर्वश्रेष्ठ कवि बिहारी लाल ने भी भर्तृहरि की

इस सूक्ति को स्वीकार करते हुए लिखा है कि तंत्री–नाद,कवित रस,सरस–राग,और रति–रंग से अनबूड़े का जीवन व्यर्थ हो जाता है और जिन्होंने सर्वतो भावेन इनका आनंद लिया ,उनका जीवन धन्य हो जाता है रू

तंत्री नाद, कवित रस, सरस राग, रति रंग।

अनबूड़े,बूड़े,तिरे,जे बूड़े सब अंग।।

इन सूक्तियों के आलोक में सादा जीवन उच्च विचार के विग्रह प्रो जगन्नाथ प्रसाद मिश्र का जीवन सार्थक, मूल्यवान एवं समाजोपयोगी रहा है ।इनके व्यक्तित्व और कृतित्व के कई आयाम हैं:–

1कुशल संपादकः– पं. जगन्नाथ प्रसाद मिश्र 1924 में कोलकाता गये और स्व. राजेश्वर प्रसाद नारायण सिंह भूतपूर्व राज्य सभा सांसद के सानिध्य में रहने लगे। वहाँ उन्होंने कोलकाता से निकलने वाले कलकता समाचार, स्वतंत्र, तथा भारत–मित्र के सह संपादक बने और बाद में 1930 में भारत–मित्र के प्रधान संपादक बन गये।1931 में विशाल–भारत, 1932 में विश्व बंधु तथा 1933 में विश्व–मित्र के संपादक बन गये। 1924 से 1938 तक पत्रकारिता के क्षेत्र में अविराम कार्य करते हुए पंडित जी ने नाना विषयों पर अपनी लेखनी चलायी और एक सिद्धहस्थ लेखक और संपादक के रूप में अपने को प्रतिष्ठित किया। इन्होंने विश्वरभंर नाथ शर्मा और कमला कांत वर्मा इन दो छद्म नामों से भी पत्र पत्रिकाओं में अनेक लेख लिखे–और प्रशस्ति पाई। 1949 में पटना से प्रकाशित हिमालय का संपादन भार संभाला।1950 में पटना से ही प्रकाशित दैनिक राष्ट्र–वाणी के संपादक बने और दो वर्षो तक इस पत्र से संबद्ध रहे। इस संदर्भ में ध्यातव्य है कि पटना से ही प्रकाशित त्रैमासिक पुस्तकालय का भी कतिपय वर्षों तक अवैतनिक संपादन किया और यश कमाया। अस्तु वे एक कुशल संपादक के रूप में समादृत रहे हैं । जैसा कि ऊपर वर्णित है कि इन्होंने अनेक पत्र पत्रिकाओं एवं ग्रंथों का कुशल संपादन किया है। इनका संपादकीय पठनीय और संग्रहणीय होता था।अनेक प्रकाशित पत्रिकाएं इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

2 कुशल साहित्य सर्जक रू–पंडित जी एक कुशल साहित्य सर्जक थे। पढना और पढाना आसान काम है लेकिन लेखन एक श्रम साध्य कार्य है, हिंदी जगत में बहुतेरे प्राध्यापक उच्च कोटि के शिक्षक रहे हैं, लेकिन आलस्य वश होने के कारण कुछ लिखा नहीं। पंडित जी कुशल प्राध्यापक के साथ साथ कुशल लेखक भी रहे हैं।पंडित जगन्नाथ प्रसाद मिश्र का रचना संसार निम्नवत् है।

मौलिक कृतियांः–

1. दरभंगा श्प्रकाशकश, भारती पब्लिशर्स महेन्द्रू, पटना सन् 1939

2 बच्चों का चिड़ियाखाना – प्रकाशक, पुस्तक भंडार, लहेरियासराय सन् 1940

3 जीवन देवता की वाणी प्रकाशक वाणी मंदिर प्रेस, छपरा बिहार सन् 1940

4 जानते हो ? प्रकाशक पुस्तक भंडार, लहेरियासराय सन् 1940

5 समाजवाद क्या है ? प्रकाशक हिन्दी भवन सकलिया हावड़ा सन् 1939 ई०

6 मनुष्य की मर्यादा 11 ग्रथमाला कार्यालय, पटना सं० 1950

7 प्रेम और दाम्पत्य श्री सुर्दशन प्रेस, पटना 1950 ई

8 जीवन और जगत् हरिदास एण्ड कम्पनी लि०, मथुरा सन् 1951

9 महान् मनीषी– आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली 1958 ई०

10 साहित्य विवेचन अजन्ता प्रेस लि० पटना 1960 ई।

11 साहित्य की वर्तमान धारा ग्रंथमाला कार्यालय, पटना1961 ई

12. साहित्य की आधुनिक प्रवृत्तियाँ – तथैव

13 रवीन्द्र नाथ ठाकुर, कृत्तित्व और व्यक्तित्व प्रकाशन विभाग, भारत सरकार 1965 ई०।

14 राजनीति विज्ञान श्री अंजता प्रेस, पटना सं०1951

15 बाल साहित्य– दुर्वासा राजकमल प्रकाशन पटना 1964

16:. व्यास –तथैव

17 विश्वामित्र–तथैव

18 अगस्त –तथैव

अनूदित :–

19. एक ही दुनिया मूल लेखक वेन्डेल एल० विल्की वन वर्ल्ड का हिन्दी रुपान्तरण प्रकाशक संचयिनी, 24 स्ट्रैण्ड रोड, कलकता ।

20. प्रेम प्रपंच –तुर्गनेव की पत्रउस्त का हिन्दी रूपान्तर, सस्ता साहित्य मंडल. नई दिल्ली 1964

21. भारतीय कला– प्रसिद्ध कला समीक्षक श्री ए० कुमार स्वामी की कृति ष्एन इनट्रोडक्शन टू इंडियन आर्टस का हिन्दी रूपान्तर ।

अप्रकाशित कृतियां –

22. साहित्य सुषमा– प्रगति प्रकाशन बेतुल बिल्डिंग से अनुबंधित किन्तु अप्रकाशित ।

23 महाजीवन –विवेकानंद, अरविन्द, तिलक, पटेल, सुभाष, चितरंजन दास, मालवीय, गांधी जी, लाजपत राय, मोतीलाल तथा श्री रवीन्द्र नाथ की विचारधाराओं पर विवेचनात्मक लेखों का संग्रह।

24. पाश्चात्य साहित्य– शिल्पी– पश्चिम के साहित्य शिल्पियों पर समीक्षात्मक आलेखों का संग्रह।

उन्होंने साहित्य की प्रायः सभी विधाओं पर अपनी

लेखनी साधिकार चलाई है।एतदर्थ पंडित जी थोक भाव से बधाई एवं शुभकामना के पात्र हैं।

3 आदर्श शिक्षकः–सन् 1938 में दरभंगा में चंद्रधारी मिथिला महाविद्यालय की स्थापना हुई। पंडित जी की जन्मभूमि ने पुकार लगायी पंडित जी ने उस महाविद्यालय में हिंदी विभागाध्यक्ष की हैसियत से कार्य भार संभाला। उनकी प्रतिभा अध्ययन अध्यापन के क्षेत्र में प्रोद्भाषित होने लगी और उनकी पांडित्यपूर्ण अध्यापन शैली से विद्यार्थी समुदाय रस मग्न और आत्म विभोर होने लगा और उनकी लेखनी भी अबाध गति से चलने लगी।चंद्रधारी मिथिला कालेज से सेवा निवृत होने के बाद स्थानीय बुद्धिजीवियों के अनुरोध पर पंडित जी ने नव स्थापित रामेश्वरी महिला महाविद्यालय का मानद् प्राचार्य पद संभाला और संस्थाके सुव्यवस्थित होने तक उस पद पर कार्यरत रहे। पं जगन्नाथ प्रसाद मिश्र मूलतरू शिक्षक थे और जीवन पर्यंत शिक्षक रहे।शास्त्रानुसार एक आदर्श शिक्षक में सात गुणों का होना अपेक्षित बताया गया हैः–

विद्वत्वं, दक्षता,शीलं,संक्रांतिरूअनुशीलनम्।

शिक्षकस्य गुणारूसप्तरू, सचेतस्त्वम्, प्रसन्नताः।

पंडित जी का जीवन इन सात गुणों से ओत–प्रोत रहा है। अतः एक आदर्श शिक्षक के रूप में उनकी प्रतिष्ठा सदैव परिवार, समाज, कालेज और राष्ट्र में बनी रही।यह हमारे लिए गौरव का संदर्भ है।

4 नेक दिल इंसानः पंडित जी एक नेक दिल इंसान थे। परिचित अपरिचित सबकी मदद के लिए वे सदैव तत्पर और तैयार रहते थे। आज की तारीख में यह इंसानियत दुर्लभ एवं दुष्कर है, लेकिन पंडित जी इसके साक्षात् विग्रह रहे हैं।

5 कुशल विधान सभा पार्षदः–सन् 1952 ई में बिहार के तत्कालीन राज्यपाल महामहिम आर आर दिवाकर महोदय ने पंडित जी को बिहार विधान परिषद् का सदस्य मनोनीत किया और 1964 तक उन्होंने इस पद को सुशोभित किया। विधान पार्षद के रूप में पंडित जी ने जिस प्रतिभा का प्रदर्शन किया, वह आज के किसी भी पार्षद के लिए उदाहरणीय एवं कथनीय ही नहीं अनुकरणीय भी है।

6ःअमर स्वतंत्रता सेनानीः–विधिशास्त्र की परीक्षा देने के बाद, परीक्षा फल प्रकाशित होने के समय तक की 6– 7 महीने की अवधि में पंडित जी ने उच्च विद्यालय, सुरसण्ड (सीतामढ़ी) में अध्यापन कार्य किया। परीक्षा फल प्रकाशित होने के बाद वकालत का पेशा प्रारम्भ किया। महात्मा गांधी के आह्वान पर राजनीतिक जीवन की गतिविधियां प्रारम्भ हुईं। फलस्वरूप गिरफ्तारी हुई, छह महीने के लिये जेल की सजा हुई। सुप्रसिद्ध समाजवादी नेता पं० रामानंद मिश्र आदि के साथ हजारीबाग जेल में रहकर जब छूटे तो पुनः वकालत पेशा प्रारम्भ करने हेतु सरकार ने इस शर्त के साथ अनुमति देने का प्रस्ताव किया कि पंडित जी यह लिखकर दें कि भविष्य में राजनीतिक गतिविधियां बंद रहेंगी। पंडित जी ने यह शर्त नहीं मानी और इस पेशा को सदा के लिए तिलांजलि दे दी। जीवन की दिशा बदली।पंडित जी के लिए देश की स्वतंत्रता, आजादी एवं राष्ट्र प्रेम प्रेम सर्वोपरि था।वे भारत माँ के सच्चे सपूत थे और अमर स्वतंत्रता सेनानी भी। ऐसे ही अमर देश भक्तों के ही लिए राष्ट्र कवि दिनकर ने अपनी लेखनी से जय बोलने और नमन का आह्वान किया थारू–

कलम आज उनकी जय बोल।
जला अस्थियां बारी बारी,
छिटकाई जिसने चिनगारी।
जो चढ गये पुण्य वेदी पर,
लिये बिना गर्दन का मोल।
कलम आज उनकी जय बोल।
अंधा चकाचौंध का मारा,
क्या जाने इतिहास बेचारा।
साखी हैं उनकी महिमा के,
सूर्य चंद्र भूगोल खगोल।
कलम आज उनकी जय बोल।

अथवा

नमन उन्हें मेरा शतबार।
सूख रही है बोटी बोटी,
मिलती नहीं घास की रोटी,
गढते हैं इतिहास देश का,
सहकर कठिन क्षुधा की मार।
नमन उन्हें मेरा शतबार।
जिनकी चढती हुई जवानी,
मांग रही अपनी कुर्बानी।
जलन एक जिनकी अभिलाषा,
मरण एक जिनका त्योहार।
नमन उन्हें मेरा शतबार।
चरण धूलि दो शीश लगा लूँ,
जीवन का बल तेज सजा लूं।
मैं निवास जिस मूक स्वप्न का,
तुम उसके सक्रिय अवतार।

7 धार्मिकता एवं आस्तिकता के विग्रह रू–पंडित जी जन्म जात एक धार्मिक एवं आस्तिक व्यक्ति रहे हैं। उनको यह धार्मिकता एवं

आस्तिकता अपने माता–पिता से पैतृक दाय के रूप में विरासत में मिली है, जिसका निर्वहन वे आजीवन करते रहे। कर्म को ही धर्म मानने वाले पंडित जी का व्यक्तित्व और कृतित्व अपने आप में शिष्ट और विशिष्ट रहा है।उनकी धार्मिकता और आस्तिकता का ज्वलंत उदाहरण उनकी कर्मठता और साहित्य के प्रति गहरी आस्था है।

8 भागवत् तथा मानस प्रेमीः–पंडित जी बचपन से भागवत, गीता और तुलसी कृत मानस के प्रेमी रहे हैं। पौराणिक ग्रंथों का अध्ययन एवं मनन इनकी प्रवृति रही है।सत् एवं नैतिक साहित्य का सृजन उनका सदैव लक्ष्य रहा है।

9 यथा नाम तथा गुणः–इस नाम रूप संसार में नाम तथा गुण में कोई संबंध नहीं दिखता।आंख का अंधा नाम नयन सुख। लेकिन यदि माता–पिता एवं पुरोहित ने जगन्नाथ नाम नाम रखा था तो इन्होंने अपनी साधुता, सज्जनता और अपने साधु कर्मो से अपने नाम को चरितार्थ कर दिया है–यह एक बहुत बडी बात उनके संदर्भ में है।

10 वसुधैव कुटुंबकम् के विग्रहः– पंडित जी अपने आचार विचार और संस्कार से वसुधैव कुटुंब कम् की भावना के साक्षात् विग्रह थे। वे अपने परिवार के साथ साथ, अपने गांव, समाज विद्यालय एवं राष्ट्र का कल्याण एवं विकास चाहते थे। नीति कहती है कि जो अपने लिए जीता है वह दुर्योधन है, जो अपनो के लिए जीता है वह युधिष्ठिर है और जो सबके लिए जीता है, उसका नाम जगन्नाथ है।उडीसा के जगन्नाथ पुरी में यह लोकोक्ति खूब प्रचलित है कि –जगन्नाथ का भात। दुनिया पसारे हाथ।सुदर्शन की कहानी हार की जीत में खडग सिंह ने बाबा भारती के संबंध में जो पंक्तियां कहीं हैं, वे ही पंक्तियां मैं पंडित जी के लिए कहना चाहूंगी –ष्उन्होंने अपनी निज की हानि को मनुष्यत्व की हानि पर न्योछावर कर दिया था,ऐसा मनुष्य मनुष्य नहीं देवता होता है।ष

11 आग और राग के विग्रहः–पंडित जी सच को सच कहना पसंद करते थे, चाहे इसके लिए उन्हें कठोर शब्दों का ही प्रयोग क्यों न करना पडे। संस्कृत का श्लोक हैः–

नारिकेल समाकारा दृश्यंतेहि सुहृद जनारू।
अन्य बदरिकाराच बहिरेव मनोहरा।

अर्थात् सज्जन नारियल फल की तरह बाहर से कठोर और भीतर से मुलायम होते हैं, जबकि दुर्जन बाहर से नरम और भीतर से बदरिका फल की तरह कठोर होते हैं। उनका व्यक्तित्व इस श्लोक का साक्षात् विग्रह रहा है।उनके पुत्र राजेश्वर मिश्र और उनके पौत्र केशव चंद्र मिश्र तथा उनकी पौत्र वधू डा रेखा मिश्रा उनके यश और कीर्ति को दिग दिंगत में फैला रहे हैं–यह प्रसन्नता और हर्ष का विषय है। ऐसे साहित्य मनीषी एवं सादा जीवन उच्च विचार के विग्रह पं जगन्नाथ प्रसाद मिश्र का आकस्मिक निधन लगभग 74 वर्ष की उम्र में 27 जनवरी 1970 को हो गया। अब वे भौतिक रूप से इस संसार में नहीं हैं, लेकिन सूक्ष्म रूप से वे हमारे मन प्राणों में निरंतर बसे हुए हैं। मुझे उनके कुल की कुल–वधू होने का गौरव प्राप्त है–यह क्या मेरे लिए कम है!15 अक्टूबर 1961 को महाप्राण निराला के आकस्मिक निधन पर हिंदी के यशस्वी महाकवि डा शिव मंगल सिंह सुमन ने श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए जो काव्य पंक्तियाँ कहीं थी, आज पंडित जी (पूज्य बाबू जी) के नहीं रहने पर याद आ रही हैंरू–

तुम जीवित थे तो सुनने का जी करता था।
तुम चले गये तो गुनने का जी करता है।
तुम सहमे थे तो सिमटी सिमटी सांसें थीं,
तुम बिखर गये तो चुनने का जी करता है।

संदर्भ ग्रंथः–

1. जगन्नाथ प्रसाद मिश्र स्मृति ग्रंथ –संपादक–गण –रामजी मिश्र मनोहर+डा किशोरी शरण कर्मशील+राजेश्वर मिश्र +डा रेखा मिश्रा, जे टी एस प्रिंटर्स लंगर टोली पटना–1997
2 कालिदास ग्रंथावली–संपादक पं सीताराम चतुर्वेदी,अखिल भारतीय विक्रम परिषद् काशी(वाराणसी)1945
3 दिनकर रचनावली–संपादक डा नंद किशोर नवल +डा तरुण कुमार, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली /पटना 2000
4 पंचतंत्र –आचार्य विष्णु शर्मा, मोतीलाल बनारसी दास, पटना/दिल्ली 1990
5 भर्तृहरि त्रय शतकं–आचार्य भर्तृहरि, मोतीलाल बनारसीदास, पटना/दिल्ली–1995
6 चिंता मणि –आचार्य रामचंद्र शुक्ल, इंडियन प्रेस इलाहाबाद 1975
7 बिहारी सतसई–बिहारी लाल, अशोक प्रकाशन नयी सडक दिल्ली–1990

प्रो डॉ0 रेखा मिश्रा
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
जे डी वीमेंस कालेज, पटना–800023
चलभाष–9661719810

27

आदर्श शिक्षक के विग्रहः डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन (5.9.1888–16.4.1975)

डॉ0 जंग बहादुर पाण्डेय

सारांश

धरा जब जब विकल होती,
मुशीबत का समय आता।
किसी भी रूप में कोई,
महामानव चला आता

ज्यों की त्यों घर दीन्हीं चदरिया कबीर की इस उक्ति को चरितार्थ करते थे– भारत के द्वितीय राष्ट्रपति डॉ सर्वपल्ली राधाकृष्णन, जिस परम पवित्र रूप में वे इस वसुंधरा पर आए थे, बिना किसी दाग–धब्बे के उसी पावन रूप में उन्होंने इस वसुन्धरा से विदाई ली।लम्बे समय तक भारत के उपराष्ट्रपति और राष्ट्रपति रहकर जब वे दिल्ली से विदा हुए, तो प्रत्येक दिल ने उनका अभिनन्दन किया। भारत के राष्ट्रपति पद की गरिमा उन्हीं जैसे सादगी की ऊँची जिन्दगी जीने वाले महामानव से सार्थक हुई। अपनी ऋजुता,सौम्यता और संस्कारिता के कारण वे अजातशत्रु हो गए थे।उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के अनेक आयाम हैंरू–

1कला संस्कृति के प्रेमीरू–ये उन राजनेताओं में से एक थे,जिन्हें अपनी संस्कृति एवं कला से अपार लगाव होता है। वे भारतीय सामाजिक संस्कृति से ओत–प्रोत आस्थावान हिन्दू थे। इसके साथ ही अन्य समस्त धर्मावलम्बियों के प्रति भी गहरा आदर भाव रखते थे। जो लोग उनसे वैचारिक मतभेद रखते थे,उनकी बात भी वे बड़े सम्मान एवं धैर्य के साथ सुनते थे।कभी–कभी उनकी इस विनम्रता को लोग उनकी कमजोरी समझने की भूल कर बैठते थे, परन्तु उनकी यह उदारता, उनकी दृढ़ निष्ठा से पैदा हुई थी।

2 शैक्षणिक उपलब्धियां रू–उनका जन्म 5 सितम्बर, 1888 को तमिलनाडु राज्य के तिरुतनी नामक गाँव में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था,जो मदास शहर से लगभग 50 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। उनका परिवार अत्यन्त धार्मिक था और उनके माता–पिता आस्तिक और सगुणोपासक थे। उन्होंने प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा मिशन स्कूल, तिरुपति तथा बेलौर कॉलेज, बेलौर में प्राप्त की।सन् 1905 में उन्होंने मदास के किश्चियन कॉलेज में प्रवेश लिया। बी.ए. और एम.ए. की उपाधि उन्होंने इसी कॉलेज से प्राप्त की। सन् 1909 में मदास के ही एक कॉलेज में दर्शनशास्त्र के अध्यापक नियुक्त हुए।इसके बाद वे प्रगति के पथ पर लगातार आगे बढ़ते गए तथा मैसूर एवं आन्ध्र विश्वविद्यालयों में दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर के रूप में कार्य किया। इसके बाद राधाकृष्णन ने उस विश्वविद्यालय के कुलपति के पद पर भी कार्य किया, लम्बी अवधि तक ये ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर रहे।

3 अप्रतिम वक्ता रू–काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी में उन्होंने कुलपति के पद को भी सुशोभित किया।रांची के सुप्रसिद्ध न्यूरो फिजीशियन डा के के सिन्हा ने एक बार मुझसे कहा था कि जब वे बी एच यू के कुलपति थे, तब मैं वहाँ आईएस. सी का विद्यार्थी था। प्रत्येक रविवार को विश्वनाथ मंदिर में गीता पर उनका प्रवचन होता था। मैं देहात के स्कूल से पास कर वाराणसी गया था और मेरी अंग्रेजी कमजोर थी। अतः मैं उनका उद्‌बोधन सुनने नहीं जाता था। लेकिन पिता जी की डाट पडी और मैं उनका प्रवचन सुनने प्रत्येक रविवार को जाने लगा, फिर तो ऐसी आदत लग गई कि उनका प्रवचन सुने बिना संतोष ही नहीं होता। उनके जैसा अप्रतिम विद्वान और वक्ता मैंने अपने जीवन में नहीं देखा–ऐसा डा के के सिन्हा का कहना था।भारत के उपराष्ट्रपति बनने के पूर्व सोवियत संघ में डॉ. राधाकृष्णन भारत के राजदूत भी रहे। अनेक राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों तथा शिष्टमण्डलों का उन्होंने नेतृत्व किया।यूनेस्को के एक्जीक्यूटिव बोर्ड के अध्यक्ष के पद को उन्होंने 1948–49 में गौरवान्वित किया। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पद है। 1952–62 की अवधि में वे भारत के उपराष्ट्रपति तथा 1962 से 1967 तक वे भारत के राष्ट्रपति रहे।1962 में भारत–चीन युद्ध तथा 1965 में भारत–पाक युद्ध उन्हीं के राष्ट्रपतित्व काल में लड़ा गया था।अपने ओजस्वी भाषणों से भारतीय सैनिकों के मनोबल को उठाने में उनका योगदान सराहनीय था।

4 भाषण कला के चार्य रू–डॉ राधाकृष्णन भाषण कला के आचार्य थे।विश्व के विभिन्न देशों में भारतीय तथा पाश्चात्य दर्शन पर भाषण देने के लिए उन्हें आमंत्रित किया जाता था।श्रोता तो उनके भाषणों से मंत्रमुग्ध रह जाते थे। राधाकृष्णन के विचारों में कल्पना तथा भाषा द्वारा विवित्र ताना–बाना बुनने की अद्‌गुत क्षमता थी। वस्तुतः उनके प्रवचनों की वास्तविक महत्ता उनके अन्तर में निवास करती थी, जिसकी व्याख्या नहीं की जा सकती है।उनकी यही आध्यात्मिक शक्ति सबको प्रभावित करती थी, अपनी ओर आकर्षित करती थी और संकुचित क्षेत्र से उठाकर उन्मुक्त वातावरण में ले जाती थी।

5 प्रत्युत्पन्नमतित्व के धनीरू–हाजिर जवाबी में तो डॉ. राधाकृष्णन

गजब के थे। एक बार वे भाषण देने के लिए इंगलैण्ड गए हुए थे।विश्व में उन्हें हिन्दुत्व के परम् विद्वान के रूप में जाना जाता था। तब देश परतंत्र था। बड़ी संख्या में लोग उनका भाषण सुनने के लिए आए थे। भोजन के दौरान एक अंग्रेज ने डॉ. राधाकृष्णन से पूछा– श्क्या हिन्दू नाम का कोई समाज है? कोई संस्कृति है? तुम कितने बिखरे हुए हो? तुम्हारा एक सा रंग नहीं, कोई गोरा, कोई काला, कोई बौना, कोई धोती पहनता है, कोई लुंगी, कोई कुर्ता तो कोई कमीज देखो, हम अंग्रेज सब एक जैसे हैं, सब गोरे–गोरे, लाल–लाल. इस पर डॉ. राधाकृष्णन ने तपाक से उत्तर दिया–ष्घोड़े अलग–अलग रंग–रूप के होते हैं, पर गधे एक जैसे होते हैं। अलग–अलग रंग और विविधता विकास के लक्षण है। ष्अंग्रेज महाशय के होश उड गये।

6 सुप्रसिद्ध दार्शनिक रू–भारत तथा विश्व के अनेक विश्वविद्यालयों ने डॉ. राधाकृष्णन को मानद् उपाधियों से सम्मानित कर अपना गौरव बढ़ाया। शताधिक विश्वविद्यालयों ने उन्हें श्डाक्ट्रेटश की मानद उपाधि से सम्मानित किया। इनमें हार्वर्ड विश्वविद्यालय तथा ओवर्लिन कॉलेज द्वारा प्रदत्त डॉक्टर ऑफ लॉ की उपाधियां प्रमुख हैं। उन्हें भारत सरकार ने 1954 में भारत के सर्वोच्च सम्मान श्भारत रत्नश से सम्मानित किया।भारत रत्न से सम्मानित किए जाने वाले वे भारत के प्रथम तीन गौरवशाली व्यक्तियों में से एक थे। विश्व प्रसिद्ध टेम्पलटन पुरस्कार भी उन्हें प्रदान किया गया। डॉ राधाकृष्णन ने दर्शन एवं संस्कृति पर अनेक ग्रंथों की रचना की है, जिनमें अत्यधिक लोकप्रिय हैं–द फिलॉसोफी ऑफ द उपनिषद्स, भगवद्गीता, ईस्ट एण्ड वेस्ट सम रिफ्लेक्शन्स, ईस्टर्न रिलीजन एण्ड वेस्टर्न थॉट, इण्डियन फिलॉसोफी, एन आइडियलिस्ट व्यू ऑफ लाइफ, हिन्दू व्यू ऑफ लाइफ; द एथिक्स ऑफ वेदान्त एण्ड इट्स प्रिसपोजीशन, फिलॉसोफी ऑफ रवीन्द्रनाथ टैगोर आदि। उनके सारे ग्रंथ, लन्दन के जॉर्ज एलेन एण्ड अन्धिन से प्रकाशित हुए हैं। हिन्दी में अनुवादित उनकी लोकप्रिय एवं महत्वपूर्ण पुस्तकें हैं। भारतीय संस्कृति, सत्य की खोज एवं संस्कृति तथा समाज। डॉ. राधाकृष्णन के दर्शन पर शिप्ली द्वारा सम्पादित पुस्तक प्रसिद्ध है। यह एक अभिनन्दन ग्रंथ है, जिसमें भारतीय दर्शन और डॉ. राधाकृष्णन के अन्वेषणों पर अनेक विद्वानों के खोजपूर्ण लेख हैं।

7 संस्कृति और राजनीति के समन्वयकरू–गीता में प्रतिपादित कर्मयोग के सिद्धान्तों के अनुसार वे एक निर्विवाद निष्काम कर्मयोगी थे। भारतीय संस्कृति के उपासक तथा राजनीतिज्ञ इन दोनों ही रूपों में उन्होंने यह प्रयत्न किया कि वे सम्पूर्ण मानव समाज का प्रतिनिधित्व कर सकें और विश्व के नागरिक कहे जा सकें। वे एक महान् शिक्षाविद् थे और शिक्षक होने का उन्हें गर्व था। उन्होंने अपने राष्ट्रपतित्व काल में अपने जन्म दिवस को शिक्षक दिवस के रूप में मनाने की इच्छा प्रकट की थी, क्योंकि उनकी दृष्टि में शिक्षक का पद सर्वोच्च होता है। वे बराबर कहा करते थे कि शिक्षक राष्ट्र निर्माता होते हैं, उनकी गोद में प्रलय और निर्माण दोनों एक साथ पलते हैं।तभी से 5 सितम्बर को श्शिक्षक दिवसश के रूप में मनाया जाता है।

8 बुद्ध की करुणा के पर्यायरू–डॉ. राधाकृष्णन गौतम बुद्ध की तरह हृदय में अपार करुणा लेकर आए थे। उनका दीप्तिमय तथा उज्ज्वल आलोक, भारत के आकाश में तो फैला ही, विश्व की धरती भी उनकी प्रखर रश्मियों के स्पर्श से धन्य हो गई।पूर्ण आयु एवं यशस्वी जीवन का लाभ प्राप्त करने के बाद, वे 87 वर्ष की आयु में 16 अप्रैल, 1975 को ब्रह्मलीन हो गए।

9 निष्काम कर्मयोगी रू–गीता के अनुसार योगरूकर्मसु कौशलम्। अर्थात् कर्म की कुशलता का नाम ही योग है। डा राधाकृष्णन ने अपने कर्तव्यों का निर्वहन कुशलता पूर्वक करके आने वाली पीढी के लिए एक मिशाल उपस्थित किया है। कर्तव्य में व्रज के समान कठोर और भावना में फूल के समान उनका व्यक्तित्व हमारे लिए एक ऐसे वट वृक्ष के समान है, जिसकी स्नेह पूर्ण छत्र छाया में भावी पीढी अपना भविष्य सुधार सकती है।कठिन से कठिन परिस्थितियों में, निष्काम एवं समर्पण भाव से कर्म करने के मार्ग को डॉ राधाकृष्णन, पुरुषार्थ का प्रशस्त मार्ग बताते थे। सदैव परमात्मा को स्मरण रखने का अर्थ ही विश्व–सत्ता के साथ स्वयं को जोड़े रखना है। समष्टि की चेतना से अपने को जोड़े रखना, जिससे व्यष्टि का अभिमान कंधे पर सवार न होने पाए और अपने कर्त्तव्य को प्रभु की विधि मानना भी सक्रिय विसर्जन का मार्ग प्रशस्त करने के लिए है।

10 साधारणता में असाधारणता का बोधरू–डॉ. राधाकृष्णन, हिन्दुस्तान के साधारण आदमी के विश्वास, समझदारी, उदारता, कर्तव्यपरायणता, सनातन मंगल भावना, ईमानदारी और सहजता इन सबके साकार प्रतिबिम्ब थे। उन्हें बड़े देश का नागरिक होने का बोध और अधिक विनम्र बनाता था; उन्हें ऊँचे से ऊँचे पद ने और अधिक सामान्य बनाया तथा राजनीति के हर दाव–पेंच ने और अधिक निश्चल बनाया।

11आदर्श शिक्षक के विग्रहरू–यों तो डा राधाकृष्णन अनेक पदों पर रहे, लेकिन वे मूलतरूशिक्षक थे और शिक्षक ही रहना चाहते थे। एक आदर्श शिक्षक में शास्त्रानुसार 7 गुण अपेक्षित हैंरू–

विद्वत्वं, दक्षता, शीलं, संक्रांति रूअनुशीलनम्।
शिक्षकस्य गुणारूसप्तरू, सचेतस्त्वं प्रसन्नताः।
अर्थात् एक आदर्श शिक्षक में विद्वता, दक्षता, सुशीलता, संप्रेषणीयता,अनुशीलनता(अभ्यास)जागरूकता और प्रसन्नता का होना आवश्यक है।ये सातों गुण किसी विरले शिक्षक में शायद ही होते हैं, लेकिन मुझे लिखने की अनुमति दीजिए कि डा सर्व पल्ली राधाकृष्णन इन सातों गुणों से युक्त एक आदर्श शिक्षक के विग्रह थे।उनकी वाणी में ओज और मिठास दोनों का समिश्रण था। आज जब वे हमारे समक्ष भौतिक रूप में नहीं हैं तो हमें डा शिव मंगल सिंह सुमन की वे पंक्तियां याद आ रही हैं, जब उन्होंने महाप्राण निराला के आकस्मिक निधन (15.10.1961)पर कहीं थीः–

तुम जीवित थे तो सुनने का जी करता था,
तुम चले गये तो गुनने का जी करता है।
तुम सहमे थे तो सिमटी सिमटी सांसें थी,
तुम बिखर गये तो चुनने का जी करता है।

डॉ. राधाकृष्णन के विचारः–

1धर्म का लक्ष्य अंतिम सत्य का अनुभव है।

2 दर्शन का उद्देश्य जीवन की व्याख्या करना नहीं, जीवन को बदलना है।

3 रोटी के ब्रह्म को पहचानने के बाद, ज्ञान के ब्रह्म से साक्षात्कार अधिक सरल हो जाता है।

4 दर्शन का जन्म सत्यानुभव के फलस्वरूप होता है, न कि सत्य की खोजों के इतिहास के अध्ययन के फलस्वरूप।

5 दर्शनशास्त्र एक रचनात्मक विद्या है।

6 अंतरात्मा का ज्ञान कभी नष्ट नहीं होता है

7 प्रत्येक व्यक्ति ही ईश्वर की प्रतिमा है।

8 एक शताब्दी का दर्शन ही, दूसरी शताब्दी का सामान्य ज्ञान होता है।

9 दर्शन का अल्पज्ञान मनुष्य को नास्तिकता की ओर झुका देता है, परन्तु दार्शनिकता की गहनता में प्रवेश करने पर, मनुष्य का मन, धर्म की ओर उन्मुख हो जाता है।

10 धर्म और राजनीति का सामंजस्य असम्भव है। एक सत्य की खोज करता है, तो दूसरे को सत्य से कुछ लेना–देना नहीं।

11 महान् उद्देश्य से शासित व्यक्ति को भाग्य नहीं रोक सकता।

12 चिड़ियों की तरह हवा में उड़ना और मछलियों की तरह पानी में तैरना सीखने के बाद, अब हमें मनुष्य की तरह जमीन पर चलने के लिए सीखना है।

13 दर्शन में ध्येय की प्राप्ति का उतना महत्व नहीं है, जितना कि उन वस्तुओं का जो हमें मार्ग में मिलती जाती हैं।

14 समय मूल्यवान अवश्य है, परन्तु समय से भी मूल्यवान है सत्य।

15 मानव का दानव बन जाना, उसकी पराजय है, मानव का महामानव होना उसका चमत्कार है और मानव का मानव होना उसकी विजय है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1 भारतीय चरित कोश–लीलाधर शर्मा पर्वतीय, शिक्षा भारती, कश्मीरी गेट, दिल्ली –6,2009
2 भारत के राष्ट्रपति–डा भगवती शरण मिश्र, राजपाल एण्ड संस कश्मीरी गेट, दिल्ली –6,2010
3 सनातन के वृहत्तर आयाम–डा प्रेम नारायण सिंह, किंजल्क प्रकाशन, आशियानगर पटना –25,2025
4 श्रीमद्भगवद्गीता –वेद व्यास, गीता प्रेस गोरखपुर, 2001
5 वृहत् निबंध भास्कर–डा वचनदेव कुमार, भारती भवन, पटना–3,2004

डॉ0 जंग बहादुर पाण्डेय
पूर्व अध्यक्ष हिंदी विभाग
रांची विश्वविद्यालय, रांची
चलभाष–9431595318

28

Romantic Poetry: Nature, Imagination, and the Subjective Self in the Odes of John Keats

Dr. Saumya Singh

Abstract

John Keats, a chief figure of Romantic poetry, developed a distinctive poetic philosophy grounded in the concept of Negative Capability—the capacity to remain in uncertainties without the pursuit of definitive truth. This paper examines how this principle shapes the thematic and aesthetic structure of Keats's major odes of 1819, including Ode to a Nightingale, Ode on a Grecian Urn, Ode on Melancholy, and To Autumn. Focusing on the interplay of nature, imagination, and the subjective self, the study argues that Keats constructs a poetic space where opposing forces—beauty and decay, permanence and transience, imagination and reality—coexist without resolution. Through sensuous imagery and aesthetic intensity, Keats privileges experiential knowledge over rational explanation, inviting readers to engage with ambiguity as an essential aspect of human existence. The paper further explores how the dissolution of the poetic self enables a fluid and empathetic engagement with the world, reflecting broader Romantic concerns with subjectivity and artistic expression. Ultimately, the study demonstrates that Keats's poetry transforms uncertainty into a mode of insight, making his work enduringly relevant in both literary and philosophical contexts.

Keywords: - Romantic Poetry, Negative Capability, Imagination, Nature, Subjectivity, Sensuous Imagery, Transience and Mortality, Beauty and Truth

Introduction

John Keats (1795–1821), one of the central figures of the second generation of English Romantic poets, occupies a unique place in literary history. Alongside contemporaries such as Lord Byron and Percy Bysshe Shelley, Keats contributed significantly to Romantic poetry; yet his work diverges sharply in its emphasis on aesthetic experience, sensuous imagery, and philosophical ambiguity (Bate 3–5). Despite a tragically short life and a poetic career spanning barely six years, Keats produced a body of work that continues to shape critical discourse. His poetry does not seek to resolve philosophical tensions but rather to dwell within them, embracing contradiction as an essential condition of human experience.At the heart of Keats's poetic philosophy lies the concept of Negative Capability, a term he introduced in an 1817 letter. This idea provides a crucial framework for understanding his approach to poetry, particularly in the celebrated Odes of 1819. These poems—Ode to a Nightingale, Ode on a Grecian Urn, Ode on Melancholy, and To Autumn—represent the culmination of his artistic vision (Motion 214). They explore enduring themes such as beauty, mortality, imagination, and the relationship between art and reality, all while resisting definitive interpretation.

This paper argues that Keats's concept of Negative Capability serves as the foundation of his poetic method, enabling him to sustain and dramatize the tensions between opposing forces—beauty and decay, permanence and transience, imagination and reality—without resolving them.

Negative Capability: Definition and Philosophical Significance

Keats's notion of Negative Capability emerges from his dissatisfaction with poets who sought logical or philosophical closure. In his letter of December 1817, he describes it as the capacity of a writer to remain "in uncertainties, Mysteries, doubts, without any irritable reaching after fact and reason" (Keats, Letters 193). This definition underscores a radical departure from Enlightenment ideals of rationality and coherence.

Negative Capability involves the dissolution of the poet's ego, allowing him to become what Keats famously termed a "chameleon poet" (Keats, Letters 195). Such a poet does not impose personal beliefs onto the subject but instead absorbs and reflects the complexities of the world. This self-effacing quality distinguishes Keats from poets who use verse as a vehicle for moral or philosophical instruction (Bate 247).

Philosophically, Negative Capability aligns with a broader Romantic skepticism toward systematic thought. It rejects the idea that truth can be fully articulated through reason, proposing instead that truth is experiential, fluid, and often contradictory (Stillinger 67).

Negative Capability in Practice: A Poetic Method

Negative Capability is not merely an abstract idea; it is

deeply embedded in Keats's poetic practice. His poems frequently present conflicting emotions and ideas without privileging one over the other. This refusal to impose closure allows the poems to remain dynamic and open-ended.

In Ode to a Nightingale, for instance, the speaker oscillates between a desire to escape the suffering of human life and an awareness of the impossibility of such escape. The nightingale's song represents an idealized realm of beauty and permanence, yet the speaker ultimately returnsto the reality of mortality (Keats, Poems 312). The poem concludes ambiguously, with the speaker questioning whether the experience was a "vision, or a waking dream" (Keats, Poems 316). Rather than resolving this uncertainty, Keats preserves it, exemplifying Negative Capability in action.

The Odes of 1819: A Creative Zenith

The year 1819 marks the peak of Keats's poetic achievement. During this period, he composed a series of odes that are widely regarded as masterpieces of English literature (Motion 220). These poems share a common structure and thematic focus, yet each explores different aspects of human experience.

The odes are characterized by their formal elegance, often employing ten-line stanzas with intricate rhyme schemes (Stillinger 102). More importantly, they demonstrate Keats's ability to combine sensuous imagery with philosophical depth. The richness of their language engages the reader's senses, while their thematic complexity invites deeper reflection.

Beauty and Truth: The Aesthetic Ideal

One of the most famous statements in Keats's poetry appears in Ode on a Grecian Urn: "Beauty is truth, truth beauty" (Keats, Poems 345). This enigmatic line encapsulates his belief in the primacy of aesthetic experience. However, its meaning remains deliberately ambiguous, exemplifying Negative Capability.

The Grecian urn, as an artifact of art, represents permanence and ideal beauty. Its images are frozen in time, untouched by decay. Yet this permanence comes at a cost: the figures on the urn are trapped in an eternal moment, unable to experience change or fulfillment (Bate 512).

This tension highlights a central paradox in Keats's thought. While art offers escape from the transience of life, it also lacks the vitality and dynamism of lived experience. By refusing to resolve this paradox, Keats invites readers to contemplate the limitations and possibilities of both art and life.

Transience and Mortality: The Inevitability of Change

A recurring theme in the Odes of 1819 is the transience of human existence. Keats was acutely aware of mortality, having lost several family members and suffering from illness himself(Motion 198). This awareness informs his exploration of the relationship between beauty and decay.

In Ode on Melancholy, Keats argues that beauty and sorrow are inseparable. The experience of joy is intensified by the knowledge of its impermanence (Keats, Poems 329). Rather than seeking to escape melancholy, the speaker encourages the reader to embrace it as an essential aspect of human experience.

Similarly, To Autumn presents a nuanced meditation on change and decline. Unlike the other odes, it does not dramatize a conflict between opposing forces. Instead, it offers a harmonious vision of the natural cycle, in which growth and decay coexist (Stillinger 145).

Imagination and Reality: The Limits of Escape

The tension between imagination and reality is central to Keats's poetry. While imagination offers a means of transcending the limitations of the physical world, it cannot fully replace lived experience.

In Ode to a Nightingale, the speaker attempts to escape into the realm of imagination through wine, poetry, and identification with the nightingale. However, each attempt ultimately fails, as the speaker is drawn back to the realities of human suffering and mortality (Keats, Poems 314).

This tension underscores the limitations of imagination. While it allows for moments of transcendence, it cannot abolish the conditions of human existence. Keats's refusal to privilege either imagination or reality reflects his commitment to Negative Capability (Stillinger 120).

Sensuousness and the Experience of Truth

Keats's poetry is renowned for its sensuous imagery, which engages the reader's senses in vivid and immediate ways. This emphasis on sensory experience reflects his belief that truth is not an abstract concept but something that is felt and experienced (Bate 430).

In the Odes of 1819, sensory details abound: the taste of wine, the sound of birdsong, the texture of autumnal landscapes. These images create a rich, immersive experience that draws the reader into the poem. At the same time, they serve a philosophical purpose, illustrating the immediacy and intensity of lived experience.

By foregrounding the senses, Keats challenges the dominance of rational thought. He suggests that understanding comes not through analysis but through direct engagement with the world.**Critical Perspectives and Interpretations**

Keats's work has inspired a wide range of critical interpretations. Some scholars view Negative Capability as a form of aesthetic detachment, while others see it as a deeply ethical stance that encourages empathy and openness (Stillinger 210).

From an existential perspective, Keats's poetry can be understood as a response to the fundamental uncertainties of human existence. His acceptance of ambiguity anticipates later philosophical developments, particularly in existentialism (Bate 600).

Psychoanalytic critics, on the other hand, emphasize the dissolution of the self in Keats's poetry. The concept of the "chameleon poet" suggests a fluid and dynamic identity, challenging traditional notions of authorship and subjectivity.

Conclusion

John Keats's poetry represents a profound engagement with the complexities of human experience. Through the concept of Negative Capability, he develops a poetic method that embraces uncertainty, ambiguity, and contradiction. The Odes of 1819 exemplify this approach, presenting tensions between beauty and decay, imagination and reality, and permanence and transience without resolving them.

Keats's refusal to impose closure distinguishes him from many of his contemporaries. Instead of offering answers, he invites readers to inhabit the space of uncertainty, where meaning is not fixed but continually evolving.

Ultimately, Keats's achievement lies in his ability to transform uncertainty into a form of aesthetic and philosophical insight. By embracing the limitations of human knowledge and the inevitability of change, he creates a body of work that is both deeply personal and universally resonant.

Works Cited :-

Bate, Walter Jackson. John Keats. Harvard University Press, 1963.

Keats, John. The Complete Poems. Edited by John Barnard, Penguin Classics, 2003. Keats, John. Selected Letters. Edited by Robert Gittings, Oxford University Press, 2002. Motion, Andrew. Keats. University of Chicago Press, 1997.

Stillinger, Jack. The Cambridge Companion to Keats. Cambridge University Press, 2001.

Dr. Saumya Singh
Assistant Professor,
Department of Arts,
(BA Programme),
Dr. Rammanohar Lohia Avadh
University, Ayodhya, Uttar Pradesh E-mail:-
saumyathakur9999@gmail.com
Mobile: - 9473812950

29

TEACHER FREEZING AMONG SECONDARY SCHOOL TEACHERS IN RELATION TO OCCUPATIONAL ATTAINMENT

Dr Umender Malik

Abstract

The idea of dis work ws to study the relationships 0f TEACHER FREEZING nd OCCUPATIONAL ATTAINMENT 0f secondarry school teachers. The work ws done 0n a samplee of 400 secondarry school teachers from differeeent schools established in Delhi . TEACHER FREEZING was measured with the help of Teacher freezing scale by Dr Hassen Taj 1998 and OCCUPATIONAL ATTAINMENT scale was constructed by investiigator . expost – facto method 0f research was used . Mult!-Stage Strat!fied Rand0m sampl!ng technique was used in the work. The analysis indicated that there is signif!cant relationship in Teacher freezing and Occupational attainment of secondary school teachers.. . A fervent ambition is crucial for achieving the objectives of life goals and this can only be achieved with occupational atttainment . . . civilisation of india has evolved around Gurukal system of education. Teacher freezing and Occupational attainment are correlated with each other in case of secondary school teachers of Delhi and can become a important factor in improving quality of education ..

Key Terms : Teacher freezing , OCCUPATIONAL ATTAINMENT , secondary school teachers

Introduction

Values ,experiences ,knowledge and behaviours that help someone navigate culture make up occupational attainment . Teachers occupies unique and important spot . it is soul and heart of an institution . The 44th president of USA in one ofhis speech on education has stated dt teachers who are actually on their carrier paths are much better. Occupational attainment is affected by varioua factors like family background,education,cultural networks,economic rersources,geographic location,cultural policies ,media exposure etc….. status of shiksha in entire system is dynamic .Job related stability has been studied for decades nd repeatedly the policy makers of each country of the world are changing or modifying working environment. . the aim of each individual is to be self dependent . Education is responsible not only for high but also for higher quality of life . The role of teacher hs nw become more crucial . now a days teacher is required to create a desire in students to attain knowledge and guide and help in attaining de knowledge .

Many attempts have been made to study and measure teaching abiliity ,teachers efficiency and teacher innovativeness but no efforts were put in to study the teacher freezing.

Teacher freezing refers to de deficiency of zeal nd curiosity within teachers performance about der responsibility nd also failure of teachers in innovation for de purpose of teaching nd research.

Gone is the time when we join one occupation and retire from the same. Occupation occupies a large part of the available time of the individuals and virtually affects all de aspects of their life nd provide various benefits.like …SOCIAL SECURITY ,MONETARY ISSUES ,JOB SECURITY ETC…..

Science is affecting their lives . young minds are inquisitive ,innovative and full of novel ideas. Occupational attainment and other vocational areas plays an important role in nurturing prospects of a particular person.

This is helpful in inculcating the necessary skills which they can use in various areas …

a well known fact that ; a particular country has two type of resources " '// natural resources and human resourcesss. The importance of these resources is recently been seen in growth of singapore and other small techno friendly countries. Natural Resources cannot be …….. but human resourcess can be improvised .

Occupational attainment ascribes posiitivee qualitiiess such as skilled briliance into those who possesses it. The consequence of it is dt dey are better equipped t0 present an impression 0f skilled briliance in guru and shishya. Mechanism

Vijender Bhartiya (2018)…..suggested a link between Teacher freezing and Teaching competency .

Kavita et al (2025), ….found Personality and Occupational attainment of senior secondary school teachers positively coorelated with each other.

Statement of the Problem ;

Teacher freezing among Secondary school teachers in

relation to Occupational Attainment

Operatiional Definiitions of de Term ;

TEACHER FREEZING

Teacher freezing means the overall unused under used and stagnated intellectual ,psychological ,social ,physical and moral potentialities of teachers. It is related to the feelings experienced by those people whose work require constant experience to emotionally charged social situations . here in dis research Teacher freezing refers to de score obtained in Teacher freezing scale by Dr Hassen Taj(1998)

OCCUPATIONAL ATTAINMENT

Occupational attainment comprises of two words I.e occupation and Attainment . Occupation is a group of similar jobs in several establishments and Attainment is defined as the fulfilment or gratification of a desire ,need or appetite .In the present work Occupational attainment refers to de score scored by teachers in Occupational attainment scale constructed by investigator .

Secondary School teachers:

In the present work secondary school teachers refers to the teachers teaching in secondary classes in secondarry schools of Delhi.

Objectiive 0f the study

1. To study de relationship of Teacher freezing and Occupational attainment 0f secondary school teachers.

Hypothesis 0f the Study;

Ho1 .There is no signiificant relationship between Teacher freezing and Occupational attainment 0f secondary school teachers.

Variables in present work :

Dependent variable – Teacher freezing

Independent variable – Occupational Attainment

Research Designn of the present work ;

Ex –post facto . method of research ws used.-

Population : Teachers studying in secondarry schools established in Delhi constituted the population of the study.

Sample : Multi-stage strat ified randoom sampliing technniique ws used t0 accumulate an sample(figure) of 400 secondarry schol teacherss from secondarry schols established in Delhi .

Tools used in de research :

1.Teacher freezing scale by Dr Hassen Taj (1998).

2. Occupational Attainment scale constructed by Investigator.

De-limitations of de work :

1. The work is de-limited to 400 secondarry school teachers .

2. The work is de-limited to only secondarry school teachers of Delhi

3. The work is delimited to 1 Dependent variable - Teacher freezing

1 Independent Variable – Occupational Attainment

Statistical Techniques used :

Differential statistical techniques such as Mean, S.D and to measure the coefficient of corelation ` r 'ws used.

DATA ANALYSES AND INTERPRETATION

Objective I : T0 study de Teacher freezing and Occupational attainment 0f secondarry school teachers

For thee purpose 0f studying the Teacher freezing of secondarry school teachers 0n the basiis of Occupational Attainment de following null hypothesis was formulated.

H_{01} There is no signiificant relationship betweeen Teacher freezing and Occupational Attainment of secondarry school teachers .

For the null hypothesis, Mean, S.d , nd “r” 0f de raw scorees 0f Teacher freezing was analysed using stat with respect to Occupational Attainment .. The statistical results are shown below in Table 1.!

Table 1.! Descriptive statistics related to the Teacher freezing and Occupational attainment among secondary school teachers

Sr.no	Variables	N	Mean	S.D	`r ‘
1	Teacher freezing	400	139.04	27.92	0.927
2	Occupational attainment	400	64.56	17.13	

Table 1.! depicts dt coefficient of correlation between TEACHER FREEZING and OCCUPATIONAL ATTAINMENT of secondary school teachers is 0.927 . This is signifiiicant at o.o1 point 0f significance . It clearly points out dt TEACHER FREEZING and OCCUPATIONAL ATTAINMENT are correlated to each other. .So de null hypothesis is rejected. Dis confirms dt

der is relationship in de Teacher freezing of secondary school teachers and occupational attainment .

Bibliography;

Geetika ,Dr Malik (2024). Unlocking potential: The role of mobile learning in enhancing English achievement among secondary school teachers. *Educational Administration ; Theory and Practice ,vol.30 No .4 (2024)* https://doi.org/10.53555/kuey.v30i4.3555

Kavita (2026) , Teachers Occupational Attainment scale ,National Psychological Corporation ,Agra

Patil ,M (2016).Aggression and Frustration among Rural and Urban secondary school teachers.*The International Journal of Indian Psychology ,3(4),2016*

Mohammed ,C . and Shahabuddin ,A.M.(2007).Self –efficacy ,Motivation and their relationship to Academic performance of Bangladesh College teachers. *Research gate,4(2*

Lizardo ,O (2006).How cultural tastes shape personal networks .*American sociological review .71,5,778 -80*

Patton, W.& McMahon ,M(2006). Career development and systems theory *; Connecting* theory *and practice (2nd ed.).sense Publishers.*

Raina ,B.L .(1987); Teacher freezing of Secondary school teachersin relation to their Sex,Residence and Socio-economic status. *Indian Education Review,P88-93 ,New Delh*

Taj Haseen (1996) ; Teacher Freezing scale ,National Psychologaical Corpopration ,Agra

U. Malik (2020) .Teaching effectiveness of university teachers in relation to their sense of humour .*Psychology and Education Journal vol .57 .No 9 (2020)* https://doi.org/10.17762/pae.v57i9.3485

Vijender Bhartiya (2018) . A study of Teacher Freezing of secondary school teachers in relation to their Teaching Competency .*International Journal of Humanities and Social Sciences ,vol no 4 (no.2) oct-March 2018*

Vaughan ,T (2020). OCCUPATIONAL ATTAINMENT ,Habitus and Academic Achievement .Master of Arts ,thesis ,Sociological & Criminal Justice . *Old Dominion University,Doi 10.25777/swf9-c951*

Vertsberger.D & Gati,.I (2016).Career decision –making difficulties and help –seeking among Israeli young adults .*Journal of Career Development* ,43(2),145-159.

www.shodhganga.inflibnet.com

www.google.com

First Author ; Dr Umender Malik , Associate Professor ,Department of Education ,M.D.U Rohtak (India)

Subject ; EDUCATION

ADDRESS FOR HARD COPY ;

Dr Umender Malik ,

H.no 654 (Near Water Works)

DEV Colony, Rohtak -124001

HARYANA

08683019963

EMPLOYER-SPONSORED SKILL DEVELOPMENT AND WORKFORCE OUTCOMES IN INDIAN PUBLIC SECTOR ENTERPRISES: A CRITICAL REVIEW WITH SPECIAL REFERENCE TO NATIONAL FERTILISERS LIMITED

Radha, Prof. (Dr) Sandeep Shandilya

ABSTRACT

The Indian energy sector is undergoing rapid transformation due to technological advancements, the push for sustainable practices, reforms in government regulations, and increasing global competition. This creates a strong need for skilled workers who can adapt, especially in public sector enterprises (PSEs) that operate in the fields that require heavy investment and follow strict rules. To address these challenges, PSEs are turning to employer-sponsored training and skill-development programs. These initiatives aim to enhance overall team performance by improving employee productivity, commitment, and motivation, and reducing employee turnover.

This review paper critically synthesises theoretical and empirical studies on employer-sponsored training and its impact on workforce outcomes. It focuses on Indian PSEs in the energy sector, with a special emphasis on National Fertilisers Limited (NFL). The paper draws on two main theories: Human Capital Theory (HCT) and Social Exchange Theory (SET). It examines the nature of skill development practices, training delivery process, and their influence on key workforce outcomes, including productivity, employee motivation, job satisfaction, and retention. The unique features of PSEs, such as fixed employment rules, bureaucratic governance, limited managerial freedom, and regulatory oversight play a big role in shaping both the design of training initiatives and the extent to which they translate into positive organisational results. The review indicates that while employer-sponsored training generally yields favourable workforce outcomes, its effectiveness depends on several critical factors, including alignment with job needs, the degree of employee engagement, perceived organizational support, and consistency with the company goals.

The review points out major gaps in research specific to Indian PSEs and NFL, including insufficient evaluations of training effectiveness and employee preferences, and a scarcity of longitudinal research examining the long-term impact of skill development interventions. The paper emphasizes the need for more context-sensitive, evidence-based HR strategies to strengthen workforce capability, improve operational performance, and support sustainable employee retention in PSEs and NFL.

Keywords: Employer-Sponsored Training; Skill Development; Workforce Outcomes; Human Capital Theory; Social Exchange Theory; Public Sector Enterprises; Energy Sector; National Fertilisers Limited; Employee Productivity; Employee Retention

1. INTRODUCTION

The global energy sector is undergoing rapid structural and technological transformation. Automation, digital process control systems, stricter environmental regulations, and the transition toward low-carbon energy sources are reshaping the nature of work in capital-intensive industries. These changes have intensified the demand for a highly skilled, adaptable, and continuously trained workforce, particularly in high-risk and technologically complex sectors such as fertiliser manufacturing and petroleum refining (OECD, 2012; ILO, 2015). In such environments, operational efficiency, safety compliance, and technological competence are critical determinants of organisational performance.

Within this context, employer-sponsored skill development has emerged as a core human resource management strategy. These initiatives include formal training programmes, on-the-job learning, digital and simulation-based modules, safety and compliance training, and leadership development interventions that are funded or facilitated by the employer. From the perspective of Human Capital Theory, such investments enhance employees' knowledge, skills, and abilities, thereby improving individual and organisational productivity (Becker, 1993; Wright & McMahan, 2011). Complementarily, Social Exchange Theory suggests that organisational investment in employee development generates reciprocal obligations, fostering greater commitment, job satisfaction, and retention (Cropanzano & Mitchell, 2005; Saks, 2019).

Indian public sector enterprises (PSEs) operating in the energy sector face distinctive institutional challenges. Standardised pay structures, bureaucratic decision-making processes, strong trade unions, and intensive regulatory oversight often constrain managerial flexibility in areas such as recruitment, career progression, and performance-linked rewards (Budhwar & Varma, 2011). In this constrained environment, employer-sponsored training assumes particular strategic importance as a non-financial

mechanism for motivating employees, upgrading technical capabilities, and supporting workforce stability.

National Fertilisers Limited (NFL), a major public sector enterprise engaged in fertiliser manufacturing, provides a relevant organisational context for examining these dynamics. NFL operates complex chemical processes characterised by high energy intensity, stringent safety requirements, and environmental compliance obligations. The nature of its operations necessitates continuous technical training, safety awareness, and process-related skill development among its workforce.

Despite the growing importance of skill development in such organisations, existing research on employer-sponsored training remains uneven. A substantial body of literature links training to improved productivity, motivation, and retention; however, much of this evidence is drawn from Western or private-sector contexts (Flaherty, 2007; Millns, 2022). Systematic research focusing on Indian public sector energy enterprises, particularly fertiliser manufacturing organisations such as NFL, remains limited. Issues such as training–job fit, employee preferences for different learning modalities, and the institutional constraints that shape training effectiveness have received insufficient scholarly attention.

This review paper seeks to address these gaps by synthesising theoretical perspectives and empirical evidence on employer-sponsored skill development and its impact on workforce outcomes in Indian public sector energy enterprises, with special reference to National Fertilisers Limited. The paper aims to consolidate existing knowledge, identify critical research gaps, and outline directions for future inquiry that can support more effective human resource strategies in the sector.

2. REVIEW OF LITERATURE

The literature on employer-sponsored skill development and workforce outcomes spans theoretical, empirical, and sector-specific studies. This section critically reviews the relevant scholarship under key thematic areas, with particular attention to its applicability to Indian public sector energy enterprises and organisations such as National Fertilisers Limited (NFL).

2.1 Theoretical Foundations of Employer-Sponsored Skill Development

Two theoretical perspectives dominate the discourse on employer-sponsored training, explaining why companies invest in employee skill-development and how it affects workforce outcomes. These are Human Capital Theory (HCT) and Social Exchange Theory (SET). These two theories together provide a comprehensive framework for understanding why organisations invest in employee development and how such investments influence productivity, commitment, loyalty and retention, particularly in the context of skill-demanding Indian public sector energy enterprises such as National Fertilisers Limited (NFL).

2.1.1 Human Capital Theory

Human Capital Theory, developed by Gary S. Becker (1993), conceptualises education and training as productive investments that enhance individuals' knowledge, skills, and abilities. According to this perspective, organisations that invest in skill development can expect measurable improvements in operational efficiency, innovation capacity, and overall performance (Wright & McMahan, 2011; Cappelli, 2015). The theory distinguishes between general skills, which are transferable across organisations and industries, and firm-specific skills, which are tailored to the unique technological systems, processes, and regulatory requirements of a particular organisation.

In capital-intensive and technologically complex industries such as fertiliser manufacturing, firm-specific training related to process control systems, equipment maintenance, safety protocols, and environmental compliance is especially critical (Chhetri et al., 2018). For organisations like NFL, which operate continuous chemical processes under strict safety and environmental regulations, investments in technical and safety-oriented training contribute directly to reduced operational errors, improved plant reliability, and better risk management. Human Capital Theory thus provides a strong economic rationale for employer-sponsored skill development as a means of enhancing both individual competence and organisational productivity. However, critics note that the theory tends to underemphasise contextual factors such as organisational bureaucracy, employee motivation, and institutional constraints that may limit the realisation of expected returns on training investments (Bryson et al., 2017).

2.1.2 Social Exchange Theory

Social Exchange Theory offers a complementary behavioural perspective on the relationship between organisational investments in training and employee

attitudes. The theory posits that workplace relationships are based on reciprocal exchanges. When organisations provide developmental opportunities such as training, employees interpret these actions as signals of support and care, and respond with positive attitudes and behaviours, including higher organisational commitment, job satisfaction, and reduced turnover intentions (Cropanzano & Mitchell, 2005; Saks, 2019).

In the context of Indian public sector enterprises, where pay structures are largely standardised and performance-linked financial incentives are limited, employer-sponsored training assumes particular importance as a non-monetary form of organisational support (Budhwar & Varma, 2011). Employees who perceive training as a genuine investment in their professional growth are more likely to reciprocate through increased loyalty and longer organisational tenure (Kosteas, 2023; Flaherty, 2007). Social Exchange Theory therefore helps explain the retention and motivational outcomes of skill development initiatives, especially in stable employment environments characteristic of public sector organisations. At the same time, the theory highlights that the quality of the exchange matters: training that is poorly aligned with job roles, perceived as unfair in access, or disconnected from career progression may fail to generate the expected reciprocal commitment.

Together, Human Capital Theory and Social Exchange Theory provide an integrated framework for analysing employer-sponsored skill development. While HCT emphasises the productivity-enhancing effects of skill acquisition, SET explains the attitudinal and behavioural responses that influence retention and engagement. This dual theoretical lens is particularly relevant for understanding training outcomes in regulated, safety-critical public sector energy enterprises such as National Fertilisers Limited.

2.1.3 Integrating Theoretical Perspectives

While Human Capital Theory and Social Exchange Theory offer distinct analytical lenses, their integration provides a more comprehensive understanding of employer-sponsored skill development and its impact on workforce outcomes. Human Capital Theory primarily explains the economic and productivity-related benefits of training by focusing on the enhancement of employees' knowledge, skills, and abilities (Becker, 1993; Wright & McMahan, 2011). In contrast, Social Exchange Theory accounts for the relational and attitudinal outcomes of training, emphasising how organisational investments in employee development generate reciprocal commitment, job satisfaction, and reduced turnover intentions (Cropanzano & Mitchell, 2005; Saks, 2019).

When applied together, these theories highlight that the effectiveness of skill development initiatives depends not only on the technical content and relevance of training but also on the quality of the employment relationship and employees' perceptions of organisational support. In the context of Indian public sector energy enterprises such as National Fertilisers Limited, this integrated perspective is particularly relevant. Technical and safety-oriented training can improve operational efficiency and reduce risk, as predicted by Human Capital Theory. Simultaneously, when such training is perceived as a genuine investment in employees' professional growth, it can strengthen psychological contracts and support retention, consistent with Social Exchange Theory (Budhwar & Varma, 2011; Kosteas, 2023).

An integrated theoretical approach therefore allows for a more nuanced analysis of both the productivity gains and the behavioural outcomes associated with employer-sponsored skill development. It also helps explain why training programmes that are technically sound may still fail to deliver expected retention benefits if employees do not perceive them as fair, relevant, or supportive of their career aspirations. This dual lens forms the conceptual foundation for examining skill development practices and workforce outcomes in the subsequent sections of this review.

2.2 Employer-Sponsored Skill Development Practices in Indian Public Sector Energy Enterprises

Employer-sponsored skill development initiatives constitute a central element of human resource management in Indian public sector energy enterprises, like fertiliser production, petroleum refining, and power generation, These organisations operate in technologically complex, capital-intensive, and safety-critical environments, where continuous skill upgrading is essential for maintaining operational reliability, regulatory compliance, and workforce competence (ILO, 2015; OECD, 2012). The design and delivery of training initiatives in this context are strongly influenced by bureaucratic governance structures, standardised employment conditions, and intensive regulatory oversight (Budhwar & Varma, 2011).

2.2.1 Nature and Scope of Skill Development in Public

Sector Energy Enterprises

Skill development practices in Indian public sector energy organisations typically encompass a combination of technical, safety, managerial, and compliance-oriented training modules. Technical training focuses on plant operations, equipment maintenance, process optimisation, and the use of automation and control systems (Snell & Morris, 2019). Safety training aims to reduce workplace accidents, improve hazard recognition, and strengthen emergency response capabilities, which are critical in energy-intensive industries involving chemical processes and high-pressure systems (ILO, 2015).

In addition to technical and safety modules, soft-skills training—including leadership development, communication, and supervisory skills—addresses the need for effective coordination and decision-making in large, often unionised workforces (Budhwar & Varma, 2011). Sustainability-related training has also gained importance, covering areas such as energy efficiency, emission control, waste management, and environmental compliance in response to tightening regulatory requirements and public scrutiny.

2.2.**2 Institutional Context and Constraints**

The institutional environment of Indian public sector enterprises significantly shapes the nature and effectiveness of skill development programmes. Long-term employment relationships and relatively high job security create favourable conditions for organisations to invest in employee training without the immediate fear of losing trained personnel to competitors. However, rigid administrative procedures, fixed pay scales, and limited performance-linked incentives can reduce the motivational impact of training interventions (Budhwar & Varma, 2011).

When training content is closely aligned with actual job roles and operational challenges, employees are more likely to apply newly acquired skills and demonstrate higher levels of engagement (Saks, 2019). Conversely, when training is perceived as routine, compliance-driven, or disconnected from career progression, its contribution to motivation and performance may remain limited. Centralised design of training programmes and uniform administration across plants further reinforce standardisation but can constrain responsiveness to local operational needs or individual employee preferences.

2.2.**3 Skill Development Practices with Reference to National Fertilisers Limited**

National Fertilisers Limited (NFL), as a major public sector enterprise engaged in fertiliser manufacturing, provides a useful organisational context for examining employer-sponsored skill development within the Indian energy landscape. NFL's operations involve complex chemical processes, high energy intensity, and stringent requirements related to safety and environmental compliance. Consequently, the organisation places considerable emphasis on technical training, safety management, and regulatory compliance programmes.

Training at NFL is typically delivered through a combination of in-house training centres, structured induction programmes for new recruits, periodic refresher courses, and collaborations with technical institutions and academic partners (OECD, 2012). These initiatives aim to develop and maintain workforce capabilities in process operations, equipment handling, safety protocols, and environmental standards. When employees perceive such programmes as genuine organisational support for professional growth, they can contribute to higher engagement and retention. However, challenges related to systematic evaluation of training effectiveness, limited differentiation based on employee preferences, and incomplete alignment with individual career aspirations continue to constrain the full potential of these initiatives (Budhwar & Varma, 2011).

2.2.**4 Emerging Trends in Training Delivery**

In recent years, digital and blended learning models have begun to gain traction within public sector energy enterprises. E-learning platforms, simulation-based training, and virtual safety drills offer opportunities for greater scalability, standardisation, and flexibility in skill development delivery (Snell & Morris, 2019). These approaches are particularly relevant for large organisations with geographically dispersed plants and diverse training needs.

Despite these developments, public sector enterprises generally lag behind private-sector counterparts in fully leveraging digital training technologies. Barriers such as infrastructural limitations, budgetary constraints, organisational inertia, and resistance to change continue to slow the adoption of advanced learning methods (Cappelli, 2015). As a result, while digital tools are increasingly being incorporated, traditional classroom and on-the-job training methods still dominate skill development practices in many public

sector energy organisations, including those in the fertiliser sector.

2.3 Employer-Sponsored Training and Workforce Outcomes

A substantial body of research links employer-sponsored training to a range of positive workforce outcomes, including higher productivity, improved retention, greater motivation, and enhanced job satisfaction (Becker, 1993; Wright & McMahan, 2011). These relationships, however, are neither automatic nor uniform; they depend on training design, organisational context, and the extent to which employees can apply newly acquired skills. This section reviews the evidence on these outcomes with particular relevance to public sector energy enterprises.

2.3.1 Employer-Sponsored Training and Employee Productivity

Human Capital Theory provides a clear rationale for expecting productivity gains from training. Employer-sponsored programmes enhance employees' technical competence, problem-solving ability, and task efficiency, which in turn contribute to improved organisational performance (Becker, 1993). Empirical studies support this proposition. Chhetri et al. (2018) found that organisations investing consistently in structured training experienced measurable gains in operational efficiency and service quality. In technology-intensive and capital-intensive settings, training related to equipment handling, process optimisation, and safety procedures has been shown to reduce downtime and operational errors (Cappelli, 2015).

The realisation of productivity benefits, however, depends on the relevance of training content and employees' opportunities to apply new skills in their actual work environment (Bryson et al., 2017). When training is closely aligned with job requirements, the transfer of learning is higher and performance improvements are more pronounced. In public sector energy enterprises, where processes are highly standardised and safety-critical, well-designed technical and safety training can make a significant contribution to plant reliability and output consistency.

2.3.2 Employer-Sponsored Training and Employee Retention

From the perspective of Social Exchange Theory, training signals organisational commitment to employee development and can foster reciprocal loyalty, thereby reducing voluntary turnover (Cropanzano & Mitchell, 2005). Employees who participate in developmental programmes often exhibit longer organisational tenure and stronger attachment to their employers (Flaherty, 2007). Millns (2022) reported that employer-sponsored educational benefits were associated with higher retention rates and lower recruitment costs, particularly in skill-intensive occupations.

In the context of Indian public sector enterprises, where financial incentives are constrained by standardised pay structures, training can serve as an important non-monetary retention mechanism (Budhwar & Varma, 2011). At the same time, the literature cautions that general or highly transferable training may increase employees' external employability and, under certain conditions, offset retention benefits if organisational commitment remains weak (Kosteas, 2023). The net effect of training on retention therefore depends on the balance between skill enhancement and the strength of the employment relationship.

2.3.3 Training, Motivation, and Job Satisfaction

Training opportunities contribute to employees' sense of competence, professional growth, and perceived organisational support, all of which are positively associated with intrinsic motivation and job satisfaction (Saks, 2019). In safety-critical and technologically demanding environments, training related to safety protocols, compliance requirements, and new technologies can also enhance employees' confidence in performing complex tasks, thereby reducing work-related stress and improving overall job satisfaction (ILO, 2015).

Nevertheless, positive motivational outcomes are contingent on several enabling conditions. Limited access to training, lack of transparency in selection processes, and misalignment between training content and job roles can diminish employees' positive responses and weaken the motivational impact of skill development initiatives (Sawyer, 2019; Budhwar & Varma, 2011).

2.3.4 Employee Preferences for Training Modalities

Employees do not value all forms of training equally. Preferences vary according to career stage, job role, and individual learning orientation (Oliver, 2023). Technical employees often prefer hands-on and on-the-job training, whereas managerial staff may place greater value on leadership development and formal education programmes. Hybrid models that combine digital learning with experiential components have been found to generate higher levels of engagement and perceived usefulness

(Oliver, 2023). Willingness to participate in training also increases when programmes are flexible, clearly linked to career advancement, and supported by management (Sawyer, 2019).

Despite these insights, systematic research on employee preferences for training modalities within Indian public sector energy enterprises remains limited. This constitutes an important gap, particularly for organisations such as National Fertilisers Limited, where understanding preference patterns could improve the design and effectiveness of skill development interventions.

2.4. Skill Development in Energy and Fertiliser Industries: Safety, Sustainability, and Digital Transformation

Skill development in the energy and fertiliser industries is shaped by the distinctive operational, environmental, and technological characteristics of these sectors. Complex chemical processes, high-pressure systems, continuous plant operations, and stringent regulatory requirements create a strong demand for specialised competencies related to safety, environmental sustainability, and digital technologies (ILO, 2015; OECD, 2012).

2.4.**1 Environmental Sustainability and Regulatory Compliance Skills**

In fertiliser production, employees must be equipped with knowledge and skills related to waste management, emission monitoring, energy efficiency, and resource optimisation. Growing public concern and tightening environmental regulations have compelled organisations to invest in training programmes focused on environmental management and pollution control (OECD, 2012). Employer-sponsored sustainability-oriented training not only supports regulatory compliance but can also improve operational efficiency and organisational reputation (Maki et al., 2019; Cappelli, 2015). For public sector enterprises such as National Fertilisers Limited, such training is particularly important given the high energy intensity of fertiliser manufacturing processes and the associated environmental obligations.

2.4.**2 Safety-Oriented Skill Development**

Employees in energy and fertiliser enterprises work in environments characterised by significant operational hazards. Consequently, they require systematic training in risk assessment, emergency response procedures, and compliance with safety protocols, in addition to core technical knowledge. Structured safety training has been shown to reduce workplace accidents and improve employees' ability to recognise and respond to hazards (ILO, 2015; Maki et al., 2019). Beyond accident prevention, safety-related skill development contributes to lower absenteeism, reduced plant downtime, and enhanced operational reliability (Saks, 2019). In public sector organisations, where large workforces operate continuous production systems, the institutionalisation of safety training remains a critical component of workforce capability building.

2.4.**3 Digital Transformation and Technological Skill Requirements**

Digital transformation is reshaping skill requirements across the energy and fertiliser industries. The adoption of automation, data analytics, advanced process control systems, and predictive maintenance technologies has increased the demand for digital literacy and advanced technical competencies (Snell & Morris, 2019). Employer-sponsored training programmes are increasingly incorporating digital learning platforms, simulation-based modules, and technology-enabled assessment tools to address these evolving needs.

Research indicates that digital and simulation-based training can enhance workforce adaptability and support continuous learning in technologically dynamic environments (Cappelli, 2015). Simulation methods are particularly valuable in energy-sector contexts, where real-time experimentation may be costly or unsafe. However, public sector enterprises often face challenges in implementing digital training solutions due to infrastructural limitations, budgetary constraints, resistance to change, and disparities in digital competence among employees (Budhwar & Varma, 2011). The successful integration of digital skill development therefore depends on organisational readiness, managerial support, and the alignment of technology-enabled learning with actual operational processes.

2.4.4 Implications for Workforce Outcomes

Training related to safety, sustainability, and digital technologies contributes to multiple workforce outcomes. It enhances technical competence and confidence, supports productivity improvements, reduces operational and environmental risks, and can strengthen employee satisfaction and engagement when perceived as relevant and supportive (Kosteas, 2023). Still, empirical evidence specifically examining the impact of these specialised forms of training on productivity and retention within Indian public sector energy enterprises remains limited.

3. RESEARCH GAPS

Although the literature on employer-sponsored skill development offers useful insights, several important gaps remain, particularly in the context of Indian public sector energy enterprises such as National Fertilisers Limited.

Much of the existing research is drawn from Western and private-sector settings and does not adequately account for the bureaucratic structures, standardised employment conditions, and strong regulatory oversight that characterise Indian public sector organisations (Budhwar & Varma, 2011; Cappelli, 2015). Sector-specific studies focusing on the energy and fertiliser industries are also limited, despite the distinctive safety, environmental, and technological demands of these sectors (OECD, 2012).

In addition, most studies examine workforce outcomes such as productivity, retention, and motivation in isolation rather than as interrelated effects of training (Wright & McMahan, 2011). Employee preferences for different training modalities and the influence of demographic and role-related differences have received insufficient attention (Oliver, 2023; Sawyer, 2019). Methodologically, the predominance of cross-sectional designs restricts understanding of long-term impacts, while longitudinal and mixed-method studies remain scarce (Saunders et al., 2019).

These gaps highlight the need for more context-sensitive and sector-specific research on employer-sponsored skill development and its effects on workforce outcomes in Indian public sector energy enterprises.

4. OBJECTIVES OF THE STUDY

In light of literature review and the research gaps identified above, the present study pursues the following objectives:

- To examine the nature and orientation of employer-sponsored skill development initiatives in Indian public sector energy enterprises, with special reference to National Fertilisers Limited (NFL).
- To analyse the influence of employer-sponsored skill development on key workforce outcomes, including employee productivity, retention, motivation, and job satisfaction.
- To identify the institutional and organisational factors that shape the design, delivery, and effectiveness of skill development programmes in public sector energy enterprises.
- To explore the role of employee preferences and training–job alignment in determining the outcomes of skill development initiatives.
- To synthesise existing theoretical and empirical evidence in order to highlight critical gaps and suggest directions for future research and practice in the context of Indian public sector energy organisations.

These objectives provide a focused framework for the critical review undertaken in this paper and guide the subsequent formulation of hypotheses and analysis of findings.

5. HYPOTHESES OF THE STUDY

Drawing on the theoretical foundations of Human Capital Theory and Social Exchange Theory, and informed by the research gaps identified earlier, the following hypotheses are proposed:

H_1: Employer-sponsored skill development initiatives have a significant positive influence on employee productivity in Indian public sector energy enterprises.

H_2: Employer-sponsored skill development initiatives have a significant positive influence on employee retention in Indian public sector energy enterprises.

H_3: Employer-sponsored skill development initiatives have a significant positive influence on employee motivation and job satisfaction in Indian public sector energy enterprises.

H_4: The positive relationship between employer-sponsored skill development and workforce outcomes is strengthened when training content is closely aligned with job requirements and employee preferences.

H_5: Institutional factors characteristic of public sector enterprises (such as bureaucratic structures, standardised employment conditions, and regulatory oversight) significantly moderate the relationship between skill development initiatives and workforce outcomes.

These hypotheses provide an analytical framework for examining the linkages between employer-sponsored skill development and key workforce outcomes in the context of organisations such as National Fertilisers Limited.

6. RESEARCH METHODOLOGY

This study adopts a critical literature review methodology to examine the impact of employer-sponsored skill development initiatives on workforce outcomes in Indian public sector energy enterprises, with special reference to NFL. The review synthesises theoretical perspectives and

empirical evidence drawn from both foundational and contemporaryscholarship.

Relevant literature was identified through systematic searches of academic databases, including Scopus, Web of Science, Google Scholar, and JSTOR. Keywordswereusedinthesearchprocess.Prioritywasgiven to recent peer-reviewed journal articles, institutional reports, and studies, although seminal theoretical works werealsoincluded.

The selected literature was analysed thematically underthe guidingframeworksofHumanCapitalTheoryand Social Exchange Theory. Particular attention was paid to studies addressing training practices, institutional constraints, and workforce outcomes in public sector and energy-related organisational contexts. The review is qualitative and interpretive in nature and does not involve primary data collection. Instead, it critically evaluates existingevidencetoidentifypatterns,contextualinfluences, and research gaps relevant to Indian public sector energy enterprisessuchasNFL.

7.OBSERVATIONSANDFINDINGS

The critical review of the literature yields several important observations regarding employer-sponsored skill development and its relationship with workforce outcomes inIndianpublicsectorenergyenterprises.

First,employer-sponsoredtrainingiswidelyrecognisedasa strategically significant human resource practice in capital-intensive and safety-critical industries. Evidence consistently indicates that well-designed training programmes enhance employees' technical competence, reduce operational errors, and contribute to improved productivity (Becker, 1993; Cappelli, 2015; Chhetri et al., 2018). In the context of NFL, technical and safety-oriented training appears particularly relevant for maintaining plant reliabilityandregulatorycompliance.

Second, skill development initiatives also influence employee retention, although the mechanisms differ from those typically observed in private-sector settings. In public sector enterprises, retention is largely supported by institutional factors such as job security and long-term employment relationships. Training reinforces these stabilising elements by signalling organisational support and strengthening employees' psychological attachment to theorganisation(Cropanzano&Mitchell,2005;Saks,2019; Budhwar & Varma, 2011). However, the independent effect oftrainingonvoluntaryturnovertendstobemoderaterather thandecisive.

Third, training contributes positively to employee motivation and job satisfaction when it is perceived as relevant, fair, and supportive of professional growth. Employees who experience meaningful developmental opportunities report higher levels of competence, engagement, and organisational commitment (Saks, 2019; Kosteas, 2023). Conversely, training that is routine, poorly aligned with job roles, or limited in accessibility tends to generateweakermotivationaloutcomes.

Fourth, the institutional context of public sector enterprises significantly shapes both the design and the effectiveness of skill development programmes. Centralised planning, standardised delivery, and strong regulatoryorientationsupportconsistencyandcompliance, but they can also limit flexibility, responsiveness to employee preferences, and innovation in training methods (Budhwar & Varma, 2011). Digital and blended learning approaches are emerging, yet their adoption remains constrainedbyinfrastructuralandorganisationalbarriers.

Fifth, employee preferences for training modalities remain an underexplored but important determinant of training effectiveness. Alignment between trainingdesignandemployees'learningpreferences,career stage, and job roles appears to enhance engagement and learningtransfer,yetsystematicevidenceonthisdimension within Indian public sector energy enterprises is limited (Oliver,2023;Sawyer,2019).

The findings, on the whole, suggest that employer-sponsored skill development contributes positively to workforce outcomes in public sector energy enterprises, but its impact is contingent upon training relevance, organisational support, and the broader institutional environment.Theseobservationsprovidethefoundationfor the subsequent discussion of implications and future researchdirections.

8.DISCUSSION

The findings of this review affirm that employer-sponsored skill development plays a strategically important role in shaping workforce outcomes in Indian public sector energy enterprises. Drawing on Human Capital Theory and Social Exchange Theory, the analysis demonstrates that training contributes to both productivity-related and attitudinal outcomes, although the strength and nature of these effects areconditionedbyorganisationalcontext.

From a Human Capital Theory perspective, the

evidence supports the view that investments in technical, safety, and process-related training enhance employee competence and operational performance. In safety-critical and capital-intensive settings such as fertiliser manufacturing, these productivity benefits are particularly salient. At the same time, Social Exchange Theory helps explain the retention and motivational outcomes of training. When employees perceive skill development initiatives as genuine organisational support, they are more likely to respond with higher commitment and lower turnover intentions. In public sector enterprises, where financial incentives are constrained, this relational dimension of training assumes added significance.

The review also highlights the constraining influence of institutional factors. Centralised training design, standardised employment conditions, and strong regulatory oversight promote consistency and compliance, but they can limit flexibility, responsiveness to employee preferences, and the innovative use of digital learning methods. As a result, the full potential of skill development initiatives is not always realised. Training that is poorly aligned with job roles or career aspirations tends to produce weaker engagement and limited transfer of learning.

These observations carry important implications for practice. Public sector energy organisations would benefit from strengthening the alignment between training content and operational requirements, incorporating greater flexibility in delivery methods, and linking skill development more explicitly to career progression. Greater attention to employee preferences and systematic evaluation of training effectiveness could further enhance the contribution of skill development to productivity, motivation, and retention.

The discussion, on the whole, underscores that employer-sponsored skill development is a necessary but not sufficient condition for positive workforce outcomes. Its effectiveness depends on the quality of programme design, the degree of organisational support, and the broader institutional environment within which public sector energy enterprises operate.

9.CONCLUSION

This review has examined employer-sponsored skill development and its implications for workforce outcomes in Indian public sector energy enterprises, with special reference to National Fertilisers Limited. Drawing on Human Capital Theory and Social Exchange Theory, the paper has synthesised theoretical perspectives and empirical evidence on the relationship between training initiatives and key outcomes such as productivity, retention, motivation, and job satisfaction.

The analysis indicates that employer-sponsored skill development makes a meaningful contribution to workforce capability and organisational performance in capital-intensive and safety-critical environments. Technical and safety-oriented training enhances operational efficiency and risk management, while developmental opportunities can strengthen employee commitment and reduce turnover when they are perceived as genuine organisational support. At the same time, the institutional characteristics of public sector enterprises—including bureaucratic structures, standardised employment conditions, and regulatory constraints—shape both the design of training programmes and the extent to which their potential benefits are realised.

The review also highlights important limitations in the existing literature, particularly the scarcity of sector-specific studies, the limited integration of multiple workforce outcomes, insufficient attention to employee preferences, and the predominance of cross-sectional research designs. Addressing these gaps requires more context-sensitive, longitudinal, and methodologically robust investigations focused on Indian public sector energy organisations.

In conclusion, employer-sponsored skill development remains a strategically significant human resource practice for public sector energy enterprises. Its effectiveness, however, depends on careful alignment with job requirements, organisational support systems, and employee aspirations. Strengthening these linkages can help organisations such as National Fertilisers Limited build a more competent, motivated, and stable workforce capable of meeting the evolving demands of the energy sector.

REFERENCES

1. Becker, G. S. (1993). *Human Capital: A Theoretical and Empirical Analysis, with Special Reference to Education* (3rd ed.). University of Chicago Press. https://doi.org/10.7208/chicago/9780226041223.001.0001

2. Bryson, A., Forth, J., & Stokes, L. (2017). Does employees' subjective well-being affect workplace performance? *Human Relations*, *70*(8), 1017-1037. https://doi.org/10.1177/0018726717693073

3. Budhwar, P., & Varma, A. (2011). Emerging HR

management trends in India and the way forward. *Organizational Dynamics, 40*(4), 317–325. https://doi.org /10.1016/j.orgdyn.2011.07.009

4. Cappelli, P. (2015). Skill gaps, skill shortages, and skill mismatches: Evidence for the US. *ILR Review, 68*(2), 251–290. https: //doi. org/ 10. 1177/ 0019793914564961

5. Chhetri, P., Gekara, V., Manzoni, A., & Montague, A. (2018). Productivity benefits of employer-sponsored training: A study of the Australia transport and logistics industry. *Education + Training, 60*(9), 1009–1025. https://doi.org/10.1108/ET-02-2017-0029

6. Creswell, J. W., & Creswell, J. D. (2018). *Research Design: Qualitative, Quantitative, and Mixed Methods Approaches* (5th ed.). Sage. https:// edge.sagepub.com/creswellrd5e(Companionsitewith resources; full book: https://us.sagepub.com/en-us/nam/research-design/book255675)

7. Cropanzano, R., & Mitchell, M. S. (2005). Social exchange theory: An interdisciplinary review. *Journal of Management, 31*(6), 874–900. https:// doi.org/ 10.1177/0149206305279602

8. Flaherty, C. (2007). *The effect of employer-provided general training on turnover: Examination of tuition reimbursement programs* [Doctoral dissertation, Stanford University]. SIEPR. https:// siepr. stanford. edu/publications/working-paper/effect-employer-provided-general-training-turnover-examination-tuition

9. ILO. (2015). *Global trends on occupational safety and health*. International Labour Organization. https://www.ilo.org/global/topics/safety-and-health-at-work/resources-library/ publications/ WCMS_452042/lang--en/index.htm

10. Kosteas, V. D. (2023). Job satisfaction and employer-sponsored training. *British Journal of Industrial Relations, 61*(4),771–795.https://doi.org/10.1111/bjir.12741

11.Maki,A.,McKinney,E.,Vandenbergh,M.P.,&Cohen,M. A.(2019).Employeeenergybenefits:Whataretheyandwhat effectsdotheyhaveonemployees?*EnergyEfficiency, 12*(6), 1423–1439. https://doi.org /10.1007/ s12053-018-9721-x

12. Millns, M. J. (2022). *Measuring the influence of employer-sponsored tuition benefits on employee retention and tenure* [Doctoral dissertation, University of Denver]. ProQuest Dissertations Publishing. https:// eric.ed.gov/?id=ED642945 (Open-access via ERIC; full text: https:// files. eric. ed. gov/ fulltext/ED642945.pdf)

13. OECD. (2012). *Skills for Competitiveness: A Synthesis Report*. OECD Publishing. https:// doi.org/ 10.1787 / 5k98xwskmvr6-en

14. Oliver, S. M. (2023). *Employer-sponsored benefits are ready for a revolution: An exploration of employer-sponsored benefits programs compared to employee preferences* [Doctoral dissertation, Drexel University]. ProQuest. https:// research discovery. drexel.edu/ esploro/outputs/doctoral/Employer-Sponsored-Benefits-are-Ready-for-a/991020340815504721

15. Saks, A. M. (2019). Antecedents and consequences of employeeengagementrevisited.*JournalofOrganizational Effectiveness: People and Performance, 6*(1), 19–38. https://doi.org/10.1108/JOEPP-06-2018- 0034

16.Saunders,M.,Lewis,P.,&Thornhill,A.(2019).*Research Methods for Business Students* (8th ed.). Pearson. https:// www.pearson.com/uk/educator/higher-education /product/ Saunders-Research-Methods-for-Business-Students-8th-Edition/ 9781292208787. html

17.Sawyer,J.(2019).*The impact of employee participation in employer-funded education and barriers to individual career plan growth* [Doctoral dissertation, Northcentral University]. ProQuest. https:// www. proquest.com / docview/2314567890 (ProQuest access; abstract and preview available; full text via institutional login or purchase)

18.Snell, S. A., & Morris, S. S. (2019). Building dynamic capabilities around human resource management. *Human Resource Management Review, 29*(2),101–116. https:// doi.org/ 10.1016/j.hrmr.2018.10.001

19. Wright, P. M., & McMahan, G. C. (2011). Exploring human capital: Putting 'human' back into strategic human resource management. *Human Resource Management Journal, 21*(2), 93–104. https: //doi.org/ 10.1111/ j.1748-8583.2010.00165.x

Radha
Prof.(Dr)SandeepShandilya
Department of Management,
SKD University, Hanumangarh,
Rajasthan
Mobile No. 9654423740

31

Narcotics Control, Drug Trafficking and Criminal Liability: A Comparative Review of India, Indonesia and the Kingdom of Saudi Arabia

Vikas Kohli[1, a], Dr. Deepak Miglani[2, b], Dr. Priya A Sondhi[3]

Abstract

India lies between the Golden Crescent and the Golden Triangle, the two largest opium producing regions in the world, and it also runs one of the largest pharmaceutical industries anywhere. That combination has turned the country into a transit route, a destination, and in the case of precursor chemicals a source. Seizure records over three decades show a slow shift away from plant based substances towards synthetic drugs and diverted pharmaceutical preparations. The trade carries a second cost, since proceeds from narcotics have financed insurgency in Afghanistan, Colombia, Punjab, Jammu and Kashmir and the North East, and routes used to move heroin have also been used to move weapons and men. This paper reviews how three very different systems have responded. India relies mainly on the Narcotic Drugs and Psychotropic Substances Act, 1985, on border security and on bilateral cooperation. Saudi Arabia treats narcotics as forbidden under Islamic law and separates smugglers, dealers and users into distinct sentencing categories, with death available for smugglers[1]. Indonesia, under Law No. 35 of 2009, punishes narcotics offences heavily but leaves possession undefined, which creates real difficulty for anyone found carrying narcotics without knowing it. Sanctions of that severity cannot rest on a formal reading of possession alone, and intention has to be brought back into the analysis[2].

Keywords

Drug Trafficking, National Security, Borders, Terror Funding, Anti-Drug Laws, Narcotics, Drug Abuse, Police, drug policy, public health, narcotic, drugs, abuse, heroin, cocaine, systematic review, hazardous, dangerous medicine, Exposure, psychotropic substances, youth, exposure, sedation, opioid research, international narcotics research conference, National Narcotics Board, Drug-trafficking, Non-traditional Security Threat, criminal code procedures, narcotics crime, law enforcement.

Introduction

Aristotle described human beings as zoon politicon, creatures made to live in association with others. Association is not always benign. Some of the relationships a young person forms will push him towards narcotics, and the substances themselves do the rest, since they dull pain, stimulate and produce hallucinations. It is the hallucinatory effect in particular that draws in adolescents who have nothing wrong with them medically, and used outside the limits set by law and medicine these substances produce dependence[3].

Narcotics are ordinarily grouped by the hazard they carry. Group I substances have a high potential for dependence and are barred from therapeutic use, Group II substances carry a high risk but remain available as a last resort in treatment, and Group III substances carry the lowest risk. A parallel classification operates on the supply side, distinguishing addicts, dealers and distributors, and here Indonesian law is oddly silent. Law No. 35 of 2009 does not define a dealer, though Article 1 paragraph (18) allows one to be understood as a person or group that controls or finances illegal trafficking, and the distributor is not defined either, being in practice the courier who moves the substance from the dealer down to the user[4].

India has lived with trafficking for close to four decades, but the problem has sharpened recently. Proximity to the Golden Crescent and the Golden Triangle has made the country a conduit as well as a market. India is also a licit cultivator, since poppy is grown under licence in notified areas of Madhya Pradesh, Uttar Pradesh and Rajasthan for medicinal opium gum[5]. Part of that crop is diverted to make the low grade heroin known locally as brown sugar, which is also produced from illegally grown poppy. The country's pharmaceutical base manufactures a wide range of medicines, synthetic drugs and precursors, which has made India a significant source of prescription drugs and of the chemicals used to make heroin and methamphetamine abroad[6].

Narcotics offences are commonly described as extraordinary crimes, and the description is not merely rhetorical, since the damage runs through the central nervous system, produces dependence and in many cases ends in death. It should also be remembered that narcotics exist because medicine needs them, and that pain relief in surgery depends on substances that are dangerous in other hands. That tension is what every narcotics statute has to manage.

Where circulation and abuse spread, the state appears in the form of its enforcement machinery, and the police come first. In Indonesia they investigate narcotics offences, make arrests, conduct searches and seizures and place suspects before the courts, though convicts have been found continuing to transact in narcotics from inside detention

facilities. Under Law No. 2 of 2002 the duties of the Indonesian National Police are to protect and serve the community, enforce the law and maintain public order. Enforcement in the broader sense runs from investigation to prosecution, adjudication and finally the correctional institutions, and this paper concentrates on the investigation stage.

Saudi Arabia offers a third model, in which cultivation and consumption of hashish and marijuana are prohibited on the authority of Islamic law rather than on a public health calculation, since substances that harm the body or damage social life are treated as forbidden in a number of Quranic verses. Saudis are aware of this and some use them anyway. Over recent decades the proportion of young male addicts has passed thirty per cent, and hashish, khat, captagon and heroin are the substances most often encountered.

Four questions organise the review. How is the criminal investigation process actually carried out by narcotics police investigators and by bodies such as the NCB and the INCB? How do the police and other authorities approach prevention, regulation and eradication? What position do the judiciary and the legislature of these countries occupy in curbing the threat? And what gap areas remain if trafficking is to be regulated effectively at the international level?

Research Methods

The study uses a sociological legal approach. Principles and doctrine are applied to the analysis of the problem, and the analysis then asks how those principles are implemented in practice, treating enforcement during the police investigation process as an empirical phenomenon observable in ordinary life. Within that frame the research type is meta-synthesis. Searches were run on databases including Mendeley, MEDLINE through PubMed, the International Journal of Law, Elsevier, Web of Science and Scopus, along with legal texts and the NDPS Act, 1985. Of 834 items initially identified, 242 papers were shortlisted, 65 were retained as relevant and 28 international papers were studied in detail by the author, a doctoral scholar at the School of Law, Sushant University, Gurugram. For each item the record captured the source, the authors, the year, the conclusion drawn and the suggestions offered.

Drug Trafficking as a Threat to National Security

The two way movement of narcotics across a national frontier is a security problem before it is anything else, and it is a problem on more than one count[7]. First, it exposes the limits of border control, because if consignments cross regularly then the state's claim to protect its population from external danger is weakened. Second, a route that carries heroin can carry anything else. The weapons and explosives used in the 1993 Mumbai serial blasts were moved by the Dawood Ibrahim network through the same channels it ordinarily used for narcotics[8]. Investigation into the Pathankot attack of 31 December 2015 similarly indicated that the attackers entered India from Pakistan along routes already tested by traffickers[9].

Terror finance is the second link. The Taliban insurgency in Afghanistan was for years funded by drug lords supplying opium based narcotics, which is the clearest instance of trafficking operating as a non-traditional security threat[10]. The Revolutionary Armed Forces of Colombia followed a similar path, beginning by taxing manufacturers and traffickers and later moving into cultivation and sale itself, which paid for weaponry and a large paid cadre (Otis, 2014). In India, militant groups in Kashmir, Punjab and the North East have used drug money the same way, and roughly fifteen per cent of terrorist funding in Jammu and Kashmir has been attributed to narcotics (Jamwal, 2001). Smaller outfits in the North East traffic directly because it raises money quickly (Shivananda, 2011), while larger ones prefer protection money for allowing safe passage through territory they control.

Third, there is the nexus itself. The Dawood Ibrahim network's connections with Pakistani criminal groups and with state actors said to be involved in smuggling made the 1993 blasts possible, with training for the participants provided in Pakistan (Kalyanaraman, 2010). Finally there is the slower damage. Wide availability feeds domestic demand, erodes social norms and produces dysfunctional behaviour, and as addiction rises the economy absorbs losses in production and diverts resources into treatment and rehabilitation (Manwaring, 1994), while cartels responding to enforcement infiltrate and corrode institutions.

Trends and Patterns of Trafficking in India

India has consumed opium, hashish, ganja and bhang for a very long time, and until the 1970s most of that demand was met locally. Trafficking became serious in the 1980s, when heroin and hashish began to arrive in volume from the Afghanistan, Pakistan and Iran region, and the decades that followed added synthetic and prescription drugs. Trends are ordinarily read from seizure data, which is an imperfect proxy since it reflects enforcement effort as

much as supply, but it is the only continuous series available.

Heroin reached India from the Golden Triangle in the mid 1970s, though little of it crossed into the North East because it was consumed locally. The larger change came in the early 1980s, when the Iran Iraq war closed the Balkan route and traffickers began diverting Golden Crescent heroin through India. Seizures rose from around 100 kg in 1983 to 3,029 kg in 1988, and when the Balkan route reopened after August 1988 the effect was immediate, with 2,714 kg seized in 1989 falling to 622 kg by 1991. The annual average has since hovered around 1,000 kg, and the largest single quantity of Golden Crescent heroin was recovered in Punjab in 2015[11]. Brown sugar is produced domestically as well and moves by road and air within the country and on to Bangladesh, Bhutan, Myanmar and Nepal.

The routes reflect the geography. Conflict in Myanmar, close ethnic ties across the boundary and thin monitoring have made the eastern border easy to work, and Chouvy (2011) records four crossings into Manipur, at Moreh, Behiang, New Somthal and Kamjong, which together account for around ninety per cent of the heroin entering there. On the western side an established smuggling network, militancy and terrain suited to concealment have kept the India Pakistan border vulnerable, with movement through the Thar desert and the riverine stretches near Punjab. D-Company and Nigerian, Afghan and Kenyan networks work the route together, and farmers and ordinary travellers are frequently recruited as carriers. Once a consignment reaches Amritsar, Jaipur or Delhi it is commonly handed on and moved out by air to the United States, Canada and Europe, and more recent investigations show traffickers turning to the darknet and to Bitcoin[12].

Cannabis derivatives remain the most widely abused illicit substances in the world according to UNODC, and in India that means hashish and ganja. Hashish has traditionally come from Nepal, whose share of the hashish seized rose from 7.2 per cent in 1986 to 40 per cent in 2000 as Pakistani supply fell away, before declining to 21.95 per cent by 2015[13]. Movement is by road through the open border, with Raxaul, Rupaidiha and Nautanwa the principal crossings, while Afghan, Pakistani and Iranian hashish enters across the western border and much of it transits India for Europe and North America. Marijuana is largely met from cultivation in Odisha, West Bengal, Chhattisgarh and Nagaland, and Maoist groups are believed to have taken it up in Odisha and Chhattisgarh to fund their movement. Almost all of it moves by surface transport into Myanmar and Bangladesh from the North East and across the Nepal border into Uttar Pradesh, West Bengal, Odisha and Andhra Pradesh.

Cocaine is a newer arrival and reflects the diversification of cocaine markets, with product from Colombia, Peru and Bolivia reaching India through West Asia and the Gulf. Seizures are small in quantity though the number of cases has grown, and concealment is usually in parcels alongside cosmetics, utensils and books, with liquid cocaine the newest method. African networks handle most of it, and investigations have found cartels inducing elderly and terminally ill patients travelling to India for treatment to carry consignments, moving mainly through airports on routes such as New Delhi to Addis Ababa to Lagos, New Delhi to Kathmandu and Chennai or Hyderabad to Kuala Lumpur (Das, 2012).

The clearest change since the late 1990s has been the move to synthetic drugs and codeine based pharmaceutical preparations, driven by strict legislation, rising heroin prices and easy availability of alternatives. Amphetamine type stimulants, methamphetamine, methaqualone, alprazolam, diazepam, buprenorphine, ketamine and mephedrone are among those most often abused[14]. ATS and methamphetamine are manufactured in the Golden Triangle and enter across the India Myanmar border, while movement runs the other way as well, since preparations containing dextropropoxyphene and codeine are trafficked to Nepal, Bhutan and Myanmar. Phensedyl, a codeine based cough syrup, has become a smuggling item in its own right, moved in truckloads to the North East and West Bengal and then across the Kailashahar and Cachar Karimganj borders into Bangladesh, with empty bottles refilled at higher narcotic strength and repackaged (Jain, 2006). India is also a major source of ephedrine and pseudoephedrine used to make ATS and of acetic anhydride used to make heroin, and ephedrine seizures rose from 1,421 kg in 1999 to 6,655 kg in 2011.

Hashish and Narcotics Control in the Kingdom of Saudi Arabia

Hashish is the most common narcotic in the world and comes from Cannabis sativa indica, cultivated in China some three thousand years ago as a treatment for rheumatism and malaria and now grown in Jamaica, the Netherlands, Eastern Europe, Colombia and Lebanon among other places. It is a depressant and its active

constituent is delta-9 tetrahydrocannabinol. The names vary with the country, hashish in Saudi Arabia, marijuana in the United States and bango in Egypt, and the differences lie mainly in preparation, since hashish is the dried flower from the top of the female plant, marijuana is drawn from the whole plant and bango is the dried leaf and seed. Concentration separates them too, from roughly 0.5 to 5 per cent of active substance for marijuana against 2 to 20 per cent for hashish. Effects on the central nervous system include memory loss, loss of control, dental damage and anxiety, with psychological and physical dependence following, and experts have called it a gateway drug because it opens the way to other substances. Saudi law is strict on use, purchase and sale, yet consumption continues to spread among the young. The Directorate-General for Narcotics Control estimates that seventy per cent of hashish users are found in schools, recovery among those treated at Alamal Hospitals has been recorded at twenty five per cent, and most addicts are between eighteen and twenty nine years of age. Supply comes from dealers in Afghanistan, Israel, Iran and Lebanon, moved overland, by sea, or across the Yemen border. What has changed is the marketing. Dealers use Twitter, Facebook and Instagram to reach students through accounts that circulate jokes and stories about the hashish user, called mohashish, one such Facebook account having over a million followers, and the Directorate-General treated these as an open invitation to the young, requiring owners to close them or drop the reference to hashish from the name. The reasons given for use are depression, social standing, imitation of friends or television actors, poor company, free time and simple curiosity, and Saudi doctors add that most of the hashish circulating in the country is cut with other drugs and hazardous chemicals that produce rapid dependence[15].

United Nations figures indicate that narcotics seized in Saudi Arabia alone in 2006 exceeded what was seized in the rest of the world, and sentencing has been correspondingly severe. The Narcotics Control Act administered by the Ministry of the Interior distinguishes smugglers, dealers and users, and the penalty follows the position occupied. Smugglers face death, on the reasoning that they are the reason the substance enters the country at all. Dealers are treated differently depending on record, with imprisonment, fine, lashing or a combination for a first offence and the possibility of death for a repeat offender. A Saudi user is imprisoned for two years subject to the court's decision, while a foreign user is deported, and consistent with United Nations recommendations that addicts be treated as patients, a user who enrols in a treatment programme is not punished. Students are dealt with by discipline and monitoring rather than punishment, provided they are under twenty, enrolled in schooling, neither smuggler nor dealer, without a previous conviction and not shown to have resisted arrest. Alongside sentencing the Kingdom has built specialised hospitals and runs awareness conferences in schools.

India's Response: Legislation, Borders and Cooperation

According to the 2010 World Drug Report there were 871,000 heroin users and 674,000 opium users in India in 2008, while a 2001 survey by the Ministry of Social Justice and Empowerment put opium users at two million and cannabis users at 8.7 million. The composition has shifted more than the totals. Opium use among addicts fell from 23.1 per cent in 1997 to 9.2 per cent in 2000, cannabis rose from 5.7 to 9.4 per cent, heroin rose from 12.7 per cent in 1997 to 18.5 per cent in 1999, and other psychotropic drugs rose from 16.2 to 23.2 per cent over the same window. India's answer has rested on four elements: legislation, physical security of borders and coastline, cooperation with neighbours, and the involvement of voluntary organisations.

On legislation, the government's view was that a domestic statute had to be strict enough to deter organised trafficking, wide enough to let agencies investigate and prosecute, and adequate to meet India's obligations under the conventions it had signed. The Narcotic Drugs and Psychotropic Substances Act was accordingly enacted in 1985, prohibiting cultivation, manufacture, transport, export and import except for medical and scientific purposes under government authorisation[16]. Punishment is rigorous and the death penalty is available for a second offence of peddling, which special courts have imposed in a number of cases. The Prevention of Illicit Traffic in Narcotic Drugs and Psychotropic Substances Act, 1988 allows preventive detention of persons suspected of involvement in trafficking[17], and provisions of the Customs Act, 1962 are used against illicit export of precursors, under which acetic anhydride has been notified as a specified item (Shah, 1998). Enactment by itself achieves little, since offences have to be prosecuted successfully and licensing has to be tight enough to prevent diversion.

On the neighbourhood, India has signed bilateral agreements with Afghanistan (1990), Myanmar (1993),

Bangladesh (2006), Bhutan (2009) and Pakistan (2011), which provide for exchange of information and technical experience and for cooperation in joint investigation against foreign syndicates. India is also a party to the 1993 SAARC Convention on Narcotic Drugs and Psychotropic Substances, to the 2009 BIMSTEC Convention covering terrorism, transnational organised crime and illicit trafficking, and to the Pentalateral Cooperation on Drug Control, which concentrates on precursor chemicals. The record of these platforms is mixed at best. Mutual distrust, hostility and domestic politics have blunted them, and so have political instability and limited competence within the law enforcement machinery of some members. The SAARC Drug Offence Monitoring Desk, set up in 1992 to build a database of major offences and improve interception, has not worked well, partly because the information shared is of poor quality.

The fourth element is the voluntary sector. De-addiction and rehabilitation require sustained work, and the government supports a large number of voluntary organisations that raise awareness, run treatment and help reintegrate users, funding integrated rehabilitation centres, counselling centres and awareness programmes, while FINGODAP encourages the exchange of expertise across NGOs. Their contribution to demand reduction has been substantial.

Results and Discussion: Possession, Intention and Criminal Liability

Anyone who buys narcotics necessarily controls them, but control does not establish ownership, since the substance may belong to someone else. The real question is not whether a person controlled narcotics but whether that control was lawful. Will, intention and inner attitude, dolus, therefore matter a great deal, because intention is what connects the act to criminal responsibility[18]. If the elements of the act are merged with those of the actor, the structure of the offence begins to look identical to the conditions for imposing punishment, as though the existence of a crime automatically produced a punishable offender[19]. It does not, since a criminal act becomes meaningful only where responsibility exists, and responsibility depends on whether there was fault involving unlawfulness[20].

The Indonesian Criminal Code contains no definition of intention. Its meaning has to be taken from doctrine, where it is understood as a purpose capable of being realised through action, or the intention to do or refrain from doing what the law prohibits or requires[21]. Doctrine recognises three forms: opzet als oogmerk, intention as purpose; opzet bij zekerheidsbewustzijn, intention as certainty; and opzet bij mogelijkheids bewustzijn, intention as possibility. Intention and negligence appear in the draft Criminal Code in the formula that whoever commits an act knowing and wanting it commits that act intentionally, but the positive law as it stands defines neither[22].

Other jurisdictions are more explicit. Article 59 paragraphs 2 and 3 of the Thai Criminal Code provide that to act intentionally is to act consciously while desiring or being able to foresee the effect, and that where the actor does not know the facts constituting the offence he cannot be deemed to have foreseen that effect. Article 7 paragraph 1 of the Polish Criminal Code provides that an offence is intentional where the perpetrator wills the commission of the prohibited act or, foreseeing the possibility of committing it, reconciles himself to that possibility. On either formulation, control of narcotics without the knowledge of the person controlling them cannot be intentional[23].

Intention is closely tied to fault. Following Moeljatno, capacity to be held responsible requires three things: commission of an unlawful act, age sufficient for responsibility, and fault in the form of intention or negligence[24]. Behind this sits the principle known in Dutch as geen straf zonder schuld and in the common law tradition as actus non facit reum, nisi mens sit rea, the act does not make a person guilty unless the mind is guilty[25]. Like the principle of legality it cannot be located in the text of the Criminal Code and belongs to unwritten law, though it is reflected in Article 6 paragraph (2) of Law No. 4 of 2004 on Judicial Power, which provides that no one may be sentenced except where the court, on lawful evidence, is convinced that a person considered responsible is guilty of the act charged[26]. If the classification of narcotics control is to be consistent with that principle, it has to take account of the offender's fault and of the intentional aspect of what he did.

Article 112 of Law No. 35 of 2009 does not do this. It is drafted as penal policy, and penal policy retains its place, since criminal sanctions remain the best available means of confronting serious harm while being simultaneously the principal guarantor of and the principal threat to human freedom, a guarantor when used sparingly and a threat when used carelessly[27]. The phrase any person without rights or against the law, however, says nothing about intention, so a person who never meant to commit a

narcotics offence, whether through compulsion, pressure or ignorance, can be caught by it. The article also carries a statutory minimum, which narrows the judge's room even though the Supreme Court has permitted sentencing below it in practice.

The interaction between Article 112 and Article 127 shows the difficulty from the other side. Where the accused is not shown to be a seller and the urine test is positive, judges tend to apply Article 127, following Supreme Court Circular No. 4 of 2010 on placing abusers and addicts in medical and social rehabilitation. That circular limits itself to cases where the accused was caught in the act and where the evidence recovered corresponds to one day's use, and it requires the judge ordering rehabilitation to name the nearest facility and to consider the level of addiction on expert evidence. Circular No. 3 of 2011 clarified that possessing, storing or providing narcotics above the specified quantity does not automatically make a person an abuser and may instead qualify the conduct as trafficking, which closes off rehabilitation. The risk runs the other way as well, because a trafficker who carries less than a gram at a time and also uses will produce exactly the evidentiary picture of an abuser, and a verdict keyed to quantity lets him escape with a light sentence[28]. The minimum quantity separating abuse from trafficking therefore needs to be settled in the statute itself rather than in circulars.

The Investigation Process and Police Prevention

Investigation is the series of steps by which an investigator searches for and finds evidence, uses that evidence to establish that an offence has occurred, and identifies the suspect. In narcotics cases it proceeds on at least two items of evidence drawn from witness testimony, expert testimony, documents, indications and the statement of the accused. Every coercive step has to rest on a legal basis, which here means Article 8 paragraph (3) and Article 10 paragraph (1) of the Criminal Procedure Code, Law No. 2 of 2002 on the Police, Police Regulation No. 14 of 2012, and Law No. 35 of 2009 itself[29].

Regulation No. 14 of 2012 requires an investigation plan so that the work is done professionally and efficiently[30]. The plan records the identity of the investigators, the objectives and targets, the activities at each stage, the anatomy of the case, the time required, the budget, and the administrative completeness of the file, which comprises the police report, the task warrant, the investigation report, the investigation warrant and the notification of commencement[31]. Under Article 76 paragraph (1) of Law No. 35 of 2009 investigators have three times twenty four hours to determine whether a person is to be treated as a suspect, and if two items of evidence cannot be found within that period the case falls away by operation of law and the person arrested has to be released[32].

Enforcement is only half of what the police do. Penal effort, or repression, means investigating in order to establish the case and identify who will face prosecution and trial, together with visible action intended to produce deterrence, and investigation itself is regulated by Articles 81, 84, 85, 87, 88 and 90 of Law No. 35 of 2009[33]. Non-penal effort divides into pre-emptive and preventive work. Pre-emptive policy addresses the roots of the problem through social, situational and cultural approaches in order to remove the potential for disturbance before it forms, which in practice means guidance, counselling, socialisation and education intended to remove the factor of opportunity[34]. Preventive measures address disturbance that has already begun to appear, so officers raid locations likely to be used for storing, producing or selling narcotics, and cooperation with the National Narcotics Agency, educational institutions, religious leaders and community groups is part of the same work[35].

Unaddressed Concerns

Demand side work in India rests on prevention, treatment, rehabilitation and aftercare delivered in institutional and community settings, with around 450 de-addiction and counselling centres funded across the country and a Drug Abuse Monitoring System established at national level, most of it funded by the Ministry of Social Justice and Empowerment and by UNODC. National policy follows the lines drawn by the legislation, but the emphasis in attention and resources has been clearly on supply, and the National Drug Abuse Control Fund created by the 2001 amendment was meant to expand demand reduction programmes and has never become active. Meanwhile the deteriorating quality of street drugs, combined with users managing cost, has pushed consumption towards injecting, with serious public health consequences in parts of the country. Street heroin purity has been found to vary between three and twelve per cent, and India's own narcotics control authorities place it at around five per cent. An approach led by enforcement with limited resources for treatment is difficult to defend on the evidence, since a high rate of incarceration has at best a marginal effect on the market.

Several things therefore need attention. Patterns of use should be better understood, particularly in rural areas along trafficking routes and near cultivation, and socio-cultural controls on use should be developed rather than assumed. Demand for treatment should be assessed urgently, especially among the urban poor engaged in the most dangerous forms of use, and the range of treatment available widened. The research base that allows the changing picture of use, and the cost effectiveness of welfare and control responses, to be understood deserves renewed attention. Routine statistics should be improved so that gaps in the understanding of scale and nature are reduced, and enforcement and treatment policy should be evaluated properly using the social science methods available[36].

Conclusion

The purpose of the NDPS Act is plain enough on its face, and some commentators have called it draconian, but its success is open to question. The familiar criticism is that small operators are caught while those with influence escape, and there have been reports of people charged under the Act for little more than being present near users. The Act also fails to draw an adequate distinction between minor and serious offenders, which matters given the punishments it authorises.

The Indonesian material points to a related problem of a doctrinal kind. Control of narcotics describes a situation in which a person holds narcotics that may not formally be his at all, so that he has material control while legal ownership sits elsewhere. Criminal liability in such a case turns on whether that control was lawful, and lawfulness cannot be settled without looking at intention, inner attitude and fault. Where the person never realised he was carrying narcotics, the intentional element is simply absent[37].

India has lived with trafficking for three decades. The trend runs from plant based substances towards synthetic drugs and diverted pharmaceutical preparations, smuggled and consumed at the same time. Hashish and heroin arrived in volume across several borders in the 1980s and still do, but ATS and codeine based preparations are now far more widely encountered even where the quantities are smaller, and both the literature and the reporting suggest that use and trafficking are rising. India has responded with strict legislation, with support for voluntary organisations, with measures to strengthen border security and with bilateral and multilateral agreements, and the results have been partial. In Saudi Arabia the picture is similar in outline, since consumption is prohibited and a minority use anyway, the number of addicts and abusers stood at roughly 120,000 as of 2005, and the proportion of hashish users among students has been put above seventy per cent. In Indonesia the police occupy the central position, acting through investigation on the penal side and through counselling, socialisation and public education on the non-penal side.

Suggestions

Prevention of trafficking deserves more weight than it currently receives, and specific procedures for interdiction along international borders need to be developed. The capacity to collect, analyse and disseminate intelligence has to be strengthened. Corruption among border guarding forces and other agencies must be dealt with practically, which means severe punishment for officials found complicit alongside incentives for those who do the work well. A national database on production, trade and consumption is needed before the scale of the problem can be assessed, bodies such as the SAARC Drug Offence Monitoring Desk should be revived, and above all cooperation among neighbours has to improve.

On the Indonesian side, prevention is not the responsibility of the police alone but of society as a whole. As matters stand, a trafficker charged under Article 112 can shelter under Article 127 where the quantity recovered is small under Circular No. 4 of 2010 and the urine test is positive, which is not a just outcome. Article 112 should therefore be redrafted so that the elements of having, storing, controlling or buying are clearly directed at traffickers, importers and manufacturers rather than at abusers holding narcotics for their own use. Where the mens rea of the accused goes no further than personal use, the judge should order medical and social rehabilitation rather than punishment, and the provision should be amended so that it carries legal certainty in practice and is not open to competing interpretations.

References

1. Barda Nawawi Arief (1990), *Perbandingan Hukum Pidana*, Rajawali Pers, Jakarta.
2. Dipradja, R. Achmad & S. Soema (1983), *Beberapa Tinjauan Tentang Hukum Pidana dan Hukum Acara Pidana*, Armico, Bandung.
3. E.Ph.R. Sutorius & Wonosutanto (1987), *Het Schuldbeginsel/Opzet En De Varianten Daarvan*,

FH-UNDIP, Semarang.
4. Masjchoen, Sri Soedewi (Tanpa Tahun), *Hukum Badan Pribadi*, Yayasan Badan Penerbit Gadjah Mada, Yogyakarta.
5. Moeljatno (1983), *Perbuatan Pidana dan Pertanggungjawaban dalam Hukum Pidana*, Bina Aksara, Jakarta.
6. Moeljatno (2002), *Asas-Asas Hukum Pidana*, Rineka Cipta, Jakarta.
7. Mudji Waluyo (2007), *Pedoman Pelaksanaan P4GN Melalui Peran Serta Kepala Desa/Lurah Babinkamtibnas dan PLKB di tingkat desa/kelurahan*, BNN, Jakarta.
8. Muladi & Dwidja Priyatno (2010), *Pertanggungjawaban Pidana Korporasi*, Kencana Prenada Media Group, Jakarta.
9. P.A.F. Lamintang (1984), *Dasar-dasar Untuk Mempelajari Hukum Pidana yang Berlaku di Indonesia*, Sinar Baru, Bandung.
10. Salim HS (2003), *Pengantar Hukum Perdata Tertulis (BW)*, Sinar Grafika, Jakarta.
11. Subekti (2001), *Pokok-pokok Hukum Perdata*, Intermasa, Jakarta.
12. Central Sector Scheme of Assistance for Prevention of Alcoholism and Substance (Drugs) Abuse for Social Defence Services (2015).
13. Sasangka Day (2003), *The Narcotic Drugs and Psychotropic Substances in the Criminal Code*, Mandar Maju, Bandung, p. 148.
14. Bhakti Jayadi, "Prevention and Eradication of Drug Abuse," [[http://www.academia.education/14530762].](http://www.academia.education/14530762)
15. Lydia Herlina Martono et al. (2008), *Peran Orang Tua Mencegah Narkotika*, Balai Pustaka, Jakarta, p. 93.
16. [[https://jauhinarkoba.com],](https://jauhinarkoba.com/) "Some Efforts in Combating Drug Prevention," *Jurnal Daulat Hukum*, Volume 1, No. 2, June 2018.
17. Ministry of Social Justice and Empowerment, Government of India (2016), Retrieved from http://socialjustice.nic.in/
18. Chhina, G.S. (2016), "Nigerians Top List of Foreigners Held for Drug Trade," *The Hindustan Times*, Retrieved October 14, 2016.
19. Chouvy, P.A. (2010), *Opium: Uncovering the Politics of the Poppy*, Harvard University Press.
20. Das, P. (2012), "Drug Trafficking in India: A Case for Border Security," IDSA Occasional Paper No. 24, pp. 37–38.
21. DNA (2009), "ATS Arrests Two Cops for Drug Trafficking," Retrieved October 14, 2016.
22. Ethirajan, A. (2013), "Nepal Steps up Battle Against Drug Trafficker," BBC News, Retrieved October 13, 2016.
23. Pushpita Das (2004), "Extent, Pattern and Trend of Drug Use in India."
24. Farooqui, S. (2015), "India Becomes Cocaine Trafficking Centre," *The Guardian*.
25. Gautham (2016), "Bitcoin and Darknet Based Drug Trafficking in India," NewsBTC.
26. Hafeez, M. (2009), "Saji Stole at Least 40 kg Heroin," *The Times of India*.
27. Hmar In (2011), "Smuggling out of Phensedyl Bottles to Bangladesh."
28. Jain, S.K. (2006), "The Spurious Drug Menace and Remedy," *Health Administrator*, 19(1), p. 33.
29. Jamwal, N.S. (2001), "Terrorist Financing and Support Structure in Jammu and Kashmir," *Strategic Analysis*, 26(1), p. 143.
30. Kalyanaraman, S. (2010), "India and the Challenge of Terrorism in the Hinterland," *Strategic Analysis*, 34(5), pp. 706–707.
31. Central Bureau of Narcotics (2016), "Licit Cultivation," Retrieved October 7, 2016.
32. Manwaring, M.G. (1994), "National Security Implications of Drug Trafficking," *Small Wars and Insurgencies*, 5(3), pp. 382–383.
33. Ministry of Home Affairs (2009), *Annual Report*, Government of India.
34. Ministry of Home Affairs (2016), *Annual Report 2015–2016*, Government of India, p. 54.
35. Narcotics Control Bureau (1990), *Annual Report 1989–1990*, Government of India.
36. Narcotics Control Bureau (2001), *Annual Report 2000–2001*, Government of India.
37. Narcotics Control Bureau (2016), *Annual Report*, Government of India.
38. Otis, J. (2014), "The FARC and Colombia's Illegal Drug Trade," Wilson Center.
39. Paul, M. (2011), "Tripura Feeds Bangladesh Drug Demand," *The Times of India*.
40. Pentalateral Cooperation on Drugs (2016), Retrieved

October 14, 2016.
41. Shah, G.R. (1998), *Encyclopaedia of Narcotics Drugs and Psychotropic Substances*, Vol. III, p. 888.
42. Shah, T. & Mashal, M. (2016), "Bountiful Afghan Opium Harvest," *The New York Times*.
43. Shivananda, H. (2011), "Nexus of Drug Trafficking and Militancy," IDSA Comment.
44. Taw, N.P. (2009), "Joint Statement of the Twelfth BIMSTEC Ministerial Meeting."
45. International Narcotics Control Board (2010), *Annual Report*, p. 90.
46. United Nations Office on Drugs and Crime (2010), *World Drug Report*, p. 40.
47. Unnithan, S. (2016), "Pathankot or Mumbai 1993," DailyO.
48. Unnithan, S. & Aurora, B.V. (2013), "Narco Nigerian," India Today.
49. Vice, L.S., Shanta, S.A., S.N. (2001).
50. *Thapa and Ors. vs Union of India (UOI) and Ors.*, Central Administrative Tribunal.
51. Ministry of Interior, Kingdom of Saudi Arabia (2014).
52. Anitei, S. (2007), "What's the Difference Between Hashish and Marijuana?"
53. http://hopeeg.com/specialized-programs-for-cannabis-users
54. http://sabq.org/AdQo5d
55. Mokhtsal Saudi Website (2012), "The Drug War in the Kingdom."
56. http://arabic.arabianbusiness.com/business/healthcare
57. Soedjono D. (1987), *Hukum Narkotika Indonesia*, Alumni, Bandung.
58. Sutrisno Hadi (1979), *Metodologi Research*, UGM, Yogyakarta.
59. Soerjono Soekanto & Sri Mahmudji (2001), *Penelitian Hukum Normatif*, Raja Grafindo Persada, Jakarta.
60. Hari Sasangka (2003), *Narkotika dan Psikotropika dalam Hukum Pidana*, Mandar Maju.
61. Lydia Herlina Martono et al. (2008), *Peran Orang Tua Mencegah Narkotika*, Balai Pustaka.
62. Act No. 2 of 2002 on Indonesian National Police.
63. Act No. 35 of 2009 on Narcotics.
64. Act No. 1 of 1981 on Criminal Procedure Law.
65. Police Regulation No. 14 of 2012 on Management of Investigation Crime.
66. Sri Rejeki (2014), "Penanggulangan Narkoba di Kalangan Remaja," *Majalah Ilmiah*.
67. https://jauhinarkoba.com
68. Bhakti Jayadi, "Upaya Pencegahan Pemberantasan dan Penyalahgunaan Narkoba," Academia.edu.
69. Huesin Abdulsalam (2019), "Dilema Hukuman Rehabilitasi Narkoba," Tirto.id.
70. Fitri Resnawardhani (2019), "Kepastian Hukum dalam Pasal 112 dan 127 UU No. 35 Tahun 2009," *Lentera Hukum*, Vol. 6(1), p. 119.
71. Tri Agus Gunawan (2013), Thesis, Universitas Islam Indonesia, p. 166.
72. "Merevisi Undang-Undang Narkotika," Tempo (2019).
73. Patricia Rachel, *Federal Narcotics Enforcement*, ISBN: 0-86569-089-8.
74. Ratanlal & Dhirajlal, *Indian Penal Code*, 36th Edition, LexisNexis.
75. Punit Puri, *Drug Abuse Problem*, ISBN: 9789389744491.
76. Baljinder Singh Sra, *NDPS Act, 1985*.
77. Ajanta Talukdar, *Supreme Court Judgements on Narcotics Laws*.
78. *The Narcotic Drugs and Psychotropic Substances Act, 1985*.
79. Vijay Malik, *Laws Relating to Drugs & Cosmetics*.

Endnotes

1. Syamsul Hidayat & Hasan Asy'ari (2013), "Kontroversi Penerapan Pidana Mati Terhadap Tindak Pidana Narkoba," *Jurnal IUS Kajian Hukum dan Keadilan*, Vol. I, No. 3, December, pp. 500–501.
2. Hendricks, L. & Radwan, O. (2018), "Illegality of Hashish Usage in the Kingdom of Saudi Arabia," *Journal of Alcoholism & Drug Dependence*, 6(1), DOI: 10.4172/2329-6488.1000296.
3. Wendra Hartanto (2017), "Penegakan Hukum Terhadap Kejahatan Narkotika dan Obat-Obat Terlarang...," *Jurnal Legislasi Indonesia*, ISSN 0216-1338, p. 11.
4. Mudji Waluyo (2007), *Pedoman Pelaksanaan P4GN...*, BNN, Jakarta, p. 48.
5. Tri Jata Ayu Pramesti, "Apakah bandar narkotika sama dengan pengedar."
6. Institute for Defence Studies and Analyses (IDSA), New Delhi, India; *Artha-Journal of Social Sciences*, Vol. 18, No. 4, ISSN 0975-329X.
7. "Illicit Cultivation" (2016).
8. Artha-Journal of Social Sciences (2019), Vol. 18, No. 4, pp. 1–23, DOI: 10.12724/ajss.51.1.

9. Central Administrative Tribunal (n.d.).
10. Unnithan (2016).
11. *The New York Times* (2016).
12. Annual Report 2015–16, Narcotics Control Bureau, Government of India, New Delhi (2016), p. 9.
13. NewsBTC (2016).
14. Table 2: "Hashish Seized in the Country," Narcotics Control Bureau (2016), p. 13.
15. Annual Report 2015–16, Narcotics Control Bureau (2016), p. 11.
16. *Journal of Alcoholism & Drug Dependence*, Vol. 6, Issue 1, ISSN: 2329-6488.
17. The Narcotic Drugs and Psychotropic Substances Act (1985).
18. The Prevention of Illicit Traffic in Narcotic Drugs and Psychotropic Substances Act (1988).
19. E.Ph.R. Sutorius & Wonosutanto (1987), *Het Schuldbeginsel/Opzet En De Varianten Daarvan*, FH-UNDIP, Semarang, p. 1.
20. Ahmad Hunaeni Zulkarnaen (2018), *Jurnal Hukum Mimbar Justitia*, Vol. 4, No. 2.
21. Tri Agus Gunawan (2013), "Analisis Yuridis...," Thesis, Universitas Islam Indonesia, p. 166.
22. Hartanto Pakpahan, *op. cit.*, p. 240.
23. Subekti (2001), *Pokok-pokok Hukum Perdata*, *loc. cit.*
24. Muladi & Dwidja Priyatno (2010), *Pertanggungjawaban Pidana Korporasi*, Kencana, Jakarta, p. 61.
25. P.A.F. Lamintang (1984), *Dasar-dasar Hukum Pidana*, Sinar Baru, Bandung, p. 295.
26. I Made Minggu Widyantara, "Kesengajaan dan Kealpaan...," *Kertha Wicaksana*, Vol. 21, No. 1, p. 1.
27. Barda Nawawi Arief (1990), *Perbandingan Hukum Pidana*, Rajawali Pers, Jakarta, p. 93.
28. Moeljatno (2002), *Asas-Asas Hukum Pidana*, Rineka Cipta, Jakarta, p. 164.
29. Moeljatno (1983), *Perbuatan Pidana dan Pertanggungjawaban...*, Bina Aksara, Jakarta, pp. 3–4.
30. A.A. Ngurah Wirajaya (2013), "Asas Tiada Pidana Tanpa Kesalahan...," *Kertha Negara*, Vol. 1, No. 3.
31. Dipradja, R. Achmad & S. Soema (1983), *Hukum Pidana dan Hukum Acara Pidana*, Armico, Bandung.
32. Act No. 1 of 1981, Criminal Law Code, Article 84.
33. Police Regulation No. 14 of 2012, Chapter 17.
34. Sasangka (2003), *Narcotic Drugs and Psychotropic Substances in the Criminal Code*, Mandar Maju, Bandung, p. 148.
35. Bhakti Jayadi, "Prevention and Eradication of Drug Abuse," Academia.edu.
36. Herlina Martono et al. (2008), *Peran Orang Tua Mencegah Narkotika*, Balai Pustaka, Jakarta, p. 93.
37. "Some Efforts in Combating Drug Prevention," https://jauhinarkoba.com

Vikas Kohli[1,a], Dr. Deepak Miglani[2,b], Dr. Priya A Sondhi[3,c]

[1] PhD Scholar, School of Law, Sushant University, Gurgaon

[2] Associate Professor, School of Law, Sushant University, Gurgaon

[3] Dean, School of Law, Sushant University, Gurgaon

[a] vikaskohli44@gmail.com, miglani786@gmail.com, deansol@sushantuniversity.edu.in

Mobile No. 7065901112

32

EMPLOYER-SPONSORED SKILL DEVELOPMENT AND EMPLOYEE RETENTION IN THE INDIAN ENERGY SECTOR: A COMPARATIVE REVIEW OF PUBLIC SECTOR AND REFINERY-BASED ORGANIZATIONS

Radha, Prof. (Dr) Sandeep Shandilya

ABSTRACT

Employeeretentionhasbecomeacriticalchallengein the Indian energy sector due to rapid technological change, increasing operational complexity, and the rising demand for specialised technical and managerial skills. Employer-sponsored skill development is widely regarded as a strategic human resource intervention to enhance workforce capability and promote organizational stability. However, the effectiveness of such initiatives in supporting employee retentionisnotuniformandvariessignificantlyacrossdifferent organizationalcontexts.

This review examines the existing literature on employer-sponsored skill development and employee retention in the Indian energy sector, with a comparative focus on public sector enterprises and refinery-based organizations. These organizational forms operate under distinct governance structures, institutional pressures, and labour market conditions. Drawing on Human Capital Theory, Social Exchange Theory, and Institutional Theory, the paper analyses how training design, skill specificity, career structures, and organizational support mechanisms influence retention outcomes.

The literature indicates that public sector organizations primarily benefit from training through institutional stability, job security, and long-term employment relationships, with skill development playing a reinforcing rather than primary role. In contrast, refinery-based organizations rely more directly on training as a competitive retention tool. While specialised training enhances employee capability and performance, it may also increase external employability, creating a risk of skill-induced attrition if not supportedbyclearcareerpathwaysandorganizationalsupport. The review identifies gaps in comparative and sector-specific research and emphasises the need for context-sensitive skill development strategies to achieve sustainable workforce stabilityinenergy-intensiveindustriesinIndia.

Keywords: Employer-Sponsored Training; Skill Development; Employee Retention; Human Capital Theory; Social Exchange Theory; Energy Sector; Public Sector Enterprises; Refinery Organizations; Workforce Stability; India

1.INTRODUCTION

The Indian energy sector plays a pivotal role in national economicgrowth,industrialdevelopment,andenergysecurity. Comprising public sector enterprises, semi-public undertakings, and private refinery-based organizations, the sector is characterised by capital-intensive operations, advanced technological systems, and stringent safety and environmentalregulations.Thesefeaturesplaceapremiumona highly skilled and stable workforce, making employee retention a critical organizational concern (OECD, 2012; ILO, 2015). In recent years, skill shortages, demographic shifts, and increased labour mobility have intensified retention challenges, particularly for technically skilled employees in energy-intensiveindustries.

Employer-sponsoredskilldevelopmenthasemerged as a central human resource strategy for addressing workforce stability in the energy sector. Such initiatives include formal technicaltraining,safetyandcomplianceprograms,digitalup-skilling, certification courses, and leadership development modules supported or funded by employers. From a strategic perspective, these initiatives are not only intended to enhance employee competence but also to strengthen organizational commitment and reduce voluntary turnover (Becker, 1993; Kosteas, 2023). In sectors where external hiring of skilled personnel is costly and time-consuming, retention through internal capability development assumes particular importance.

The organizational context within which skill development initiatives are implemented varies considerably across the Indian energy sector. Public sector enterprises typically operate under bureaucratic governance structures, standardised pay scales, and limited performance-linked incentives, which can constrain traditional retention mechanisms (Budhwar & Varma, 2011). In contrast, refinery-based organizations—particularly those operating in semi-public or private settings—often exhibit greater managerial flexibility, performance orientation, and responsiveness to market conditions. These structural differences influence not only the design and delivery of training programs but also the extent to which such programs contribute to employee retention.

Existing research broadly supports a positive relationship between employer-sponsored training and employee retention, drawing on Human Capital Theory and Social Exchange Theory to explain why development opportunities can strengthen organizational attachment (Flaherty, 2007; Saks, 2019). However, much of this literature is concentrated in

Western or private-sector contexts, with limited comparative analysis of public sector and refinery-based organizations in emerging economies. Studies focusing explicitlyontheIndianenergysectorremainfragmented,and few reviews systematically examine how organizational form mediates the relationship between skill development and workforce retention. Against this backdrop, a comparative review of employer-sponsored skill development and employee retention across public sector and refinery-based organizations is both timely and necessary.

2.REVIEWOFLITERATURE

2.1 Conceptual Foundations of Skill Development and EmployeeRetention

Understandinghowemployer-sponsoredskilldevelopment influences employee retention requires a conceptual framework that accounts for both economic and relational dimensions of employment, as well as the institutional environments in which organizations operate. Three theoreticalperspectives,viz.HumanCapitalTheory,Social Exchange Theory, and Institutional Theory, have been widelyappliedintheliteraturetoexplainwhyorganizations investintrainingandhowsuchinvestmentsshapeworkforce stability. Together, these perspectives provide a comprehensive foundation for analysing retention outcomes across public sector and refinery-based organizationsintheenergysector.

2.1.1HumanCapitalTheoryandRetention

Human Capital Theory (HCT) posits that the investments in education and training enhance employees' productive capacities, yielding economic returns for both individuals and organizations (Becker, 1993). From a retention perspective, employer-sponsored skill development can reduce turnover by increasing employees' value within the organization and strengthening the alignment between individual competencies and organizational requirements. In energy-intensive industries, where specialised technical skills and safety expertise are critical, the cost of replacing trained employees is particularly high, making retention through skill development economically advantageous (Cappelli,2015).

However, HCT highlights a potential paradox whereby training can increase employees' external employability by enhancing transferable skills, thereby raising the risk of voluntary turnover (Becker, 1993). This risk is higher when training is general rather than firm-specific and when employees notice limited advancement opportunities (Kosteas,2023).Inpublicsectorenergyenterprises,training focuses on firm-specific processes and regulatory compliance, resulting in stronger retention than mobility risks. In contrast, refinery-based organizations that provide advanced technical training and industry-recognised certifications may face greater retention challenges unless supportedbycomplementaryincentives.

2.1.2 Social Exchange Theory and Organizational Commitment

Social Exchange Theory (SET) offers a relational explanation for the link between employer-sponsored trainingandemployeeretention.Inthislight,organizational investments in employee development are interpreted as signals of support and trust, prompting employees to reciprocate through increased commitment, loyalty, and reducedturnoverintentions(Cropanzano&Mitchell,2005). Training initiatives thus function not only as skill-building mechanisms but also as symbolic expressions of the employer–employeerelationship.

Empirical research consistently demonstrates that employees who perceive training opportunities as fair, accessible, and relevant exhibit higher levels of organizational commitment and lower intentions to leave (Flaherty, 2007; Saks, 2019). These effects are especially salient in environments where financial rewards and promotion opportunities are constrained, as is often the case in public sector enterprises. In such contexts, skill development can serve as a non-monetary retention mechanism that enhances employees' psychological attachmenttotheorganization(Budhwar&Varma,2011).

Nevertheless, Social Exchange Theory also underscores the importance of perceived reciprocity. When training is viewedasmandatory,symbolic,ordisconnectedfromcareer progression,employeesmaynotinterpretitasorganizational support,weakeningitsretentionimpact(Awasthietal,2025). This insight is particularly relevant for large energy organizations, where standardised training programs may failtoaccountfordiverseemployeeneedsandexpectations.

2.1.3InstitutionalTheoryandOrganizationalContext

Institutional Theory emphasises the role of organizational structures, norms, and regulatory environments in shaping HR practices and workforce outcomes. Public sector enterprises operate within institutional frameworks characterised by bureaucratic governance, political oversight,andnormativeexpectationsofstabilityandequity (Scott, 2014). These conditions influence both the design of

skill development initiatives and their implications for employeeretention.

In public sector energy organizations, training programs are often shaped by regulatory requirements, national skill development policies, and public accountability considerations. Such institutional pressures may prioritise standardisation and compliance over flexibility and individualisation, potentially limiting the retention benefits of training (OECD, 2012). Conversely, refinery-based organizations, particularly those operating in competitive market environments, are subject to different institutional logics that emphasise efficiency, performance, and talent mobility. These organizations may adopt more flexible and market-oriented training models, but they also face higher risks of employee turnover if retention strategies are not alignedwithskilldevelopmentinvestments.

Institutional Theory thus highlights why similar training initiatives may yield different retention outcomes across organizational forms. By accounting for institutional constraints and incentives, this perspective complements Human Capital and Social Exchange theories in explaining cross-organizational variation in the training–retention relationship.

2.1.4IntegrativePerspective

Recent scholarship increasingly advocates an integrative approach that combines economic, relational, and institutional perspectives to analyse employee retention. Human Capital Theory explains the economic rationale for training investments, Social Exchange Theory elucidates employees' attitudinal and behavioural responses, and Institutional Theory situates these dynamics within broader organizational contexts (Wright & McMahan, 2011). Such integration is particularly valuable in the Indian energy sector, where public sector and refinery-based organizations operate under divergent institutional arrangements yet face common challenges related to skill scarcity and workforce stability.

By synthesising these theoretical perspectives, the literature provides a robust foundation for comparative analysis of employer-sponsored skill development and employee retention across diverse organizational settings in the energy sector.

2.2 Skill Development Models in Public Sector and Refinery-BasedEnergyOrganizations

Skill development models in the Indian energy sector reflect the diverse organizational forms, governance structures, and market pressures under which public sector enterprises and refinery-based organizations operate. While both organizational types function within technologically complex and safety-critical environments, their approaches to employer-sponsored training differ significantly in terms of design, delivery, flexibility, and strategic intent. Understanding these differences is essential for explaining variation in employee retention outcomes across the sector.

2.2.1 Skill Development Models in Public Sector Energy Enterprises

Public sector energy enterprises in India have traditionally adopted centralised and standardised training models, designed to ensure uniform skill levels, regulatory compliance, and operational safety across large workforces. Training programs are typically administered through in-house training institutes, sector-specific academies, or government-affiliated skill development centres (OECD, 2012). These programs often focus on technical operations, safety procedures, environmental compliance, and induction training for new recruits.

A defining characteristic of public sector training models is their strong alignment with institutional and regulatory requirements. Training content is frequently shaped by statutory guidelines, national skill development policies, and internal administrative frameworks, resulting in structured curricula with limited scope for customisation (Budhwar & Varma, 2011). This approach supports organizational stability and risk management but may reduce responsiveness to rapidly evolving technological and market demands.

From a retention perspective, public sector training models emphasise long-term employment relationships and incremental skill development. Employees benefit from continuous access to training opportunities over extended careers, which can strengthen organizational attachment and reduce voluntary turnover (Awasthi et al, 2025). However, the literature also suggests that the perceived career value of such training may be constrained by rigid promotion systems and limited performance-based rewards, potentially weakening its retention impact among highly skilled or younger employees (Khayinga & Muathe, 2018).

2.2.2 Skill Development Models in Refinery-Based Organizations

Refinery-based organizations—particularly those operating in semi-public or private settings—tend to adopt more decentralised and performance-oriented training

models. These organizations face intense competitive pressures, technological innovation cycles, and efficiency imperatives, which encourage flexible and targeted skill development strategies (Cappelli, 2015). Training initiatives often include industry-recognised certifications, advanced technical modules, leadership development programs, and partnerships with external training providers.

A key feature of refinery-based training models is their emphasis on skill differentiation and employability. By offering specialised and transferable skills, refinery organizations aim to enhance workforce capability and support innovation. However, this approach also increases employees' external labour market value, potentially elevating turnover risks if retention mechanisms are not aligned with training investments (Kosteas, 2023).

Refinery-based organizations increasingly leverage digital and blended learning platforms, simulation technologies, and data-driven training assessment tools, to deliver scalable and adaptive learning experiences (Snell & Morris, 2019). These innovations enable rapid skill acquisition and continuous updating of competencies but may also contribute to uneven access and engagement across employee groups.

2.2.3 Comparative Implications for Employee Retention

Comparative analysis of public sector and refinery-based skill development models reveals important implications for employee retention. In public sector enterprises, training is embedded within a broader employment system characterised by job security and institutional stability. Retention outcomes are therefore influenced by cumulative organizational commitment rather than immediate returns on training investments (Budhwar & Varma, 2011). In contrast, refinery-based organizations rely more heavily on training as a strategic lever to retain scarce talent in competitive labour markets, often complementing skill development with performance-linked incentives and career progression opportunities.

The literature suggests that alignment between training models and organizational context is critical for achieving retention objectives. Standardised training in public sector enterprises may sustain baseline retention but struggle to engage high-performing employees seeking rapid advancement. In contrast, flexible market-oriented training models in refinery-based organizations may enhance short-term retention but require continuous reinforcement through organizational support and career pathways to prevent skill-driven attrition (Flaherty, 2007).

2.2.4 Emerging Convergence and Hybrid Models

Recent studies indicate a gradual convergence of skill development models across organizational types. Public sector enterprises are incorporating elements of flexibility, digital learning, and competency-based training, while refinery-based organizations are recognising the value of long-term skill planning and employee development (OECD, 2012; Snell & Morris, 2019). These hybrid approaches aim to balance stability with adaptability, offering new possibilities for improving employee retention across the energy sector.

Nevertheless, empirical evidence on the effectiveness of such hybrid models remains limited, particularly in the Indian context. Further research is needed to assess how evolving training models influence retention outcomes across diverse organizational settings.

2.3 Employee Retention in Energy Enterprises: The Role of Skill Development, Career Structures, and Organizational Support

Employee retention has emerged as a strategic concern for energy-sector organizations due to the scarcity of specialised technical skills, high training costs, and the operational risks associated with workforce instability. In energy-intensive industries such as fertiliser production and refining, the loss of experienced employees can disrupt production continuity, compromise safety, and increase replacement and retraining expenses (Cappelli, 2015). Within this context, employer-sponsored skill development is increasingly viewed as a key mechanism for enhancing workforce stability, although its effectiveness varies across organizational settings.

2.3.1 Skill Development as a Retention Mechanism

A substantial body of literature convincingly links employer-sponsored training to reduced employee turnover, particularly when training is perceived as valuable and career-enhancing. From a Social Exchange Theory perspective, training investments signal organizational commitment, prompting employees to reciprocate through loyalty and continued service (Cropanzano & Mitchell, 2005). Empirical studies provide consistent evidence that employees who participate in employer-funded training programs exhibit lower voluntary turnover and longer organizational tenure (Flaherty, 2007; Millns, 2022).

In energy enterprises, training-related retention effects are often mediated by the specificity of skills acquired. Firm-specific training—such as plant-specific operations, safety systems, and regulatory procedures—tends to strengthen

employee attachment by increasing the relevance of skills to the current employer (Becker, 1993). Conversely, general or transferable training, including industry-recognised certifications, may enhance employees' external employability, potentially offsetting retention benefits if not complemented by organizational incentives (Kosteas, 2023).

2.3.2 Career Structures and Advancement Opportunities

Career structures play a critical role in shaping the retention outcomes of skill development initiatives. In public sector energy enterprises, promotion pathways are typically structured, time-bound, and governed by formal rules, which can limit the immediate career returns of training participation (Budhwar & Varma, 2011). While such systems provide job security and predictability, they may reduce the motivational impact of training for employees seeking rapid advancement or performance-based recognition.

Refinery-based organizations often adopt more flexible career structures, linking skill acquisition to role expansion, performance evaluation, and compensation outcomes. When training is integrated with clear career progression pathways, employees are more likely to remain with the organization and apply newly acquired skills productively (Cappelli, 2015). However, the absence of long-term employment guarantees in such settings may necessitate continuous reinforcement of retention strategies to counteract labour market mobility.

2.3.3 Organizational Support and Retention Climate

Perceived organizational support is a critical moderator of the relationship between skill development and employee retention. Training initiatives are more likely to influence retention when employees perceive them as part of a broader supportive employment relationship rather than isolated interventions (Saks, 2019). Factors such as transparency in training access, fairness in selection processes, and managerial encouragement contribute to a positive retention climate. In public sector organizations, where training opportunities are often widely available but unevenly utilised, perceptions of fairness and relevance significantly affect employee responses (Awasthi et al, 2025). In refinery-based organizations, where training may be more selective and performance-driven, perceptions of exclusivity or inequity can undermine retention outcomes if not managed carefully. These findings underscore the importance of aligning training strategies with organizational culture and communication practices.

2.3.4 Differential Retention Outcomes Across Organizational Forms

Comparative studies indicate that the retention effects of employer-sponsored skill development differ across public sector and refinery-based organizations due to variations in institutional context, labour market exposure, and employment relations (OECD, 2012). Public sector enterprises generally experience lower baseline turnover due to job security and pension benefits; training reinforces this stability but may have limited marginal impact on retention. In contrast, refinery-based organizations operate in more competitive labour markets, where training can significantly influence retention decisions but also heighten mobility risks. The literature suggests that no single training model guarantees retention across organizational forms. Instead, effective retention outcomes depend on the alignment of skill development initiatives with career structures, organizational support mechanisms, and institutional constraints. Understanding these interactions is essential for designing training strategies that contribute meaningfully to workforce stability in the energy sector.

2.4 Comparative Insights on Skill Development and Retention across Public Sector and Refinery-Based Organizations

Comparative analysis of employer-sponsored skill development and employee retention across public sector and refinery-based organizations reveals that training outcomes are strongly shaped by organizational context, governance structures, and exposure to labour market competition. Although both organizational forms operate in the technologically complex and safety-critical energy sector, their approaches to training design, delivery intensity, and retention mechanisms produce distinct workforce outcomes (Budhwar & Varma, 2011; Cappelli, 2015).

2.4.1 Governance Structures and Training Orientation

Public sector energy enterprises are characterised by hierarchical and bureaucratic governance, strong regulatory oversight, and institutional norms that prioritise employment stability and procedural compliance. Within this framework, skill development initiatives are primarily oriented toward standardisation, statutory compliance, and risk mitigation (Budhwar & Varma, 2011). Training programmes are typically designed centrally by corporate human resource departments, administered uniformly across plants, and closely aligned with government guidelines, safety regulations, and organizational mandates

(ILO & SCOPE, 2024). This structured approach helps maintain baseline technical competence and operational reliability across large workforces (IndianOil, 2025). However, the same orientation can limit flexibility, slow the introduction of innovative learning methods, and reduce responsiveness to individual employee development needs (OECD, 2012).

In contrast, refinery-based organizations, particularly those operating under competitive or semi-public ownership structures, tend to adopt more market-oriented governance systems that emphasise operational efficiency, performance accountability, and rapid adaptability (Budhwar & Varma, 2011). Training initiatives in these settings are frequently decentralised to plant or business-unit levels, tailored to specific process technologies, and linked to measurable performance indicators or career progression frameworks (Cappelli, 2015). As a result, skill development is more explicitly framed as a strategic investment in human capital, with clearer expectations of returns in the form of higher productivity, reduced downtime, and improved retention of critical technical talent.

2.4.2 Skill Development Intensity and Flexibility

The intensity, content, and flexibility of training differ markedly across the two organizational forms. Public sector enterprises typically provide continuous but incremental training spread over long employee tenures. Such programmes reinforce organizational norms, safety protocols, and core technical competencies. While this steady approach supports long-term workforce stability and institutional knowledge retention, employees may perceive the training as routine rather than transformative, particularly when career advancement opportunities remain limited by hierarchical structures (Snell & Morris, 2019).

Refinery-based organizations, by comparison, often invest more intensively in specialised and advanced training modules. These include industry-recognised certifications, simulation-based learning, digital process control training, and programmes linked to emerging technologies such as predictive maintenance and energy efficiency systems. Such investments enhance workforce capability and support operational innovation. At the same time, they increase employees' external employability, creating a potential trade-off between capability building and retention risk (Kosteas, 2023). Retention success in these settings therefore depends on the organization's ability to pair training with visible career pathways, competitive compensation, and supportive organizational climates.

2.4.3 Differential Retention Outcomes

Employer-sponsored skill development contributes to retention through different primary mechanisms in the two contexts. In public sector enterprises, retention is largely sustained by institutional factors such as job security, defined pension benefits, and strong normative commitment to the organization. Training reinforces these existing stabilising elements rather than functioning as the main retention lever (OECD, 2012; Budhwar & Varma, 2011). Consequently, the independent effect of training on voluntary turnover is often modest, although it helps maintain overall workforce continuity and operational reliability.

In refinery-based organizations, retention outcomes are more directly influenced by the perceived value of training investments, especially in skill-scarce technical and operational roles. When employees view training as a genuine investment in their professional growth and see clear links to promotion or expanded responsibility, organizational commitment increases and turnover intentions decline (Flaherty, 2007; Kosteas, 2023). However, when training is not accompanied by corresponding career opportunities or competitive rewards, the same programmes may raise employees' market value and facilitate external mobility. This dual effect illustrates the contingent nature of the training–retention relationship in more competitive labour markets.

2.4.4 Emerging Convergence and Strategic Implications

Recent evidence indicates a gradual convergence in training and retention practices across organizational forms. Public sector energy enterprises have begun incorporating greater flexibility through digital learning platforms, competency-based frameworks, and more individualised development planning. Simultaneously, many refinery-based organizations have started to recognise the strategic value of longer-term workforce planning, stronger internal career structures, and deliberate employee engagement initiatives (Snell & Morris, 2019). These hybrid approaches attempt to combine the stability traditionally associated with the public sector with the adaptability required in competitive environments. Nevertheless, organizational context continues to matter. Effective retention strategies must still be aligned with the specific governance logic, labour market pressures, and employee expectations of each setting. Comparative insights therefore underscore the importance of context-sensitive training design and the integration of skill development with broader human resource systems if sustainable workforce stability is to be achieved across the

Indianenergysector.

3.RESEARCHGAPS

Although the literature provides valuable insights into employer-sponsored skill development and employee retention, several conceptual, empirical, and contextual gaps remain, particularly in relation to the Indian energy sectoranditsdiverseorganizationalforms.Addressingthese gapsisessentialforadvancingbothacademicunderstanding andevidence-basedpolicyformulation.

Aprominentgapinexistingscholarshipisthelimitednumber ofcomparativestudiesexaminingpublicsectorandrefinery-based organizations within the same sectoral and national context. Much of the available research focuses either on public sector enterprises or on private organizations in isolation, making it difficult to draw nuanced conclusions about how organizational form moderates the relationship between training and retention (Budhwar & Varma, 2011; OECD, 2012). The absence of sector-specific comparative reviews restricts the transferability of findings across organizationalsettingsintheenergyindustry.

Another significant gap concerns the overreliance on cross-sectional and perception-based data. While such studies offer important insights into employee attitudes, they often fail to capture long-term retention patterns and the cumulativeeffectsofskilldevelopmentovertime(Saunders etal.,2019).Longitudinalandmixed-methodstudiesremain underrepresented, particularly in emerging economy contexts.

Additionally, the role of employee preferences, career aspirations,anddemographicdifferencesinshapingtraining and retention outcomes has received limited scholarly attention. Existing studies tend to treat employees as a homogeneous group, overlooking how age, educational background, career stage, and skill specificity influence responses to employer-sponsored training (Oliver, 2023). This omission is particularly relevant in energy-sector organizations, which employ a diverse workforce across technical,managerial,andoperationalroles.

4.OBJECTIVESOFTHESTUDY

In light of the research gaps, the present study pursues the followingobjectives:

- To critically examine the nature and orientation of employer-sponsored skill development initiatives in public sector energy enterprises and refinery-based organizations inIndia.
- To analyse the mechanisms through which skill developmentinfluencesemployeeretentionacrossthese twoorganizationalcontexts.
- To identify the contextual factors, particularly governancestructures,institutionalpressures,andlabour marketexposure,thatmoderatetherelationshipbetween trainingandretention.
- Tosynthesizeexistingtheoreticalandempiricalevidence in order to highlight similarities, differences, and emerging intersections in training and retention strategies.
- To offer implications for human resource policy and practiceaimedatstrengtheningworkforcestabilityinthe Indianenergysector.

5.HYPOTHESESOFTHESTUDY

Based on the theoretical frameworks of Human Capital Theory, Social Exchange Theory, and Institutional Theory, the comparative literature reviewed, and the identified researchgaps,thefollowinghypothesesareproposed:

H_1: Employer-sponsoredskilldevelopmentinitiativeshave asignificantpositiveinfluenceonemployeeretentioninboth public sector and refinery-based organizations in the Indian energysector.

H_2: The positive relationship between employer-sponsored skill development and employee retention is stronger in refinery-based organizations than in public sector enterprises.

H_3: In public sector energy enterprises, institutional factors (such as job security and normative commitment) play a stronger mediating role in the training–retention relationshipthaninrefinery-basedorganizations.

H_4: In refinery-based organizations, the presence of clear career pathways and perceived organizational support significantly strengthens the positive effect of skill developmentonemployeeretention.

H_5: Organizational context (public sector versus refinery-based) significantly moderates the overall relationship between employer-sponsored skill development and employeeretention.

These hypotheses are grounded in the recognition that organizational form shapes both the design of skill development initiatives and the mechanisms through which they influence retention outcomes. Public sector enterprises operate under strong institutional pressures that emphasise stability and compliance, while refinery-based

organizations face greater market competition and performance pressures. Consequently, the mechanisms through which skill development influences retention are expectedtodifferacrossthetwosettings(Budhwar&Varma, 2011;Cappelli,2015;Scott,2014).

6.RESEARCHMETHODOLOGY

This study adopts a critical comparative literature review methodology. Relevant theoretical and empirical studies were identified through systematic searches of academic databases, including Scopus, Web of Science, Google Scholar, and JSTOR. Keywords are used in the search. The review prioritised peer-reviewed journal articles, institutional reports, and studies published primarily between2010and2025,withparticularattentiontoliterature focused on the energy and manufacturing sectors. Selected studies were analysed thematically under the guiding frameworks of Human Capital Theory, Social Exchange Theory, and Institutional Theory. A comparative analytical approach was employed to examine how organizational context influences the relationship between skill development and employee retention. The study is qualitative and interpretive in nature and does not involve primarydatacollection.

7.OBSERVATIONSANDFINDINGS

The comparative review yields the following key observationsandfindings:

(i) Public sector energy enterprises predominantly adopt structured, centrally designed, and compliance-orientedtrainingsystems.Thesesystemssupportworkforce stabilitybuttendtoplayasecondaryroleinretentionrelative to institutional factors such as job security and long-term employmentrelationships.

(ii) Refinery-based organizations generally implementmoreflexible,performance-linked,andmarket-responsive skill development initiatives. In these settings, trainingexertsamoredirectinfluenceonretention,provided it is aligned with career progression opportunities and organizationalsupport.

(iii) While employer-sponsored training enhances employeecapabilitiesinbothorganizationalcontexts,itcan alsoincreaseexternalemployability.Thisdualeffectismore pronounced in competitive refinery environments and may leadtoskill-inducederosionifnotmanagedcarefully.

(iv) Organizational governance structures, institutional pressures, and labour market exposure significantly moderate the effectiveness of skill developmentasaretentionstrategy.

(v) Recent literature indicates a gradual convergence in training practices, with public sector enterprises incorporating greater flexibility and digital learning, while refinery-based organizations increasingly emphasise long-termworkforceplanningandemployeeengagement.

Thefindingsconfirmthattheimpactofemployer-sponsored skill development on employee retention is highly context-dependent and cannot be assumed to be uniform across organizationalformsintheIndianenergysector.

8.DISCUSSION

The comparative review shows that the effectiveness of employer-sponsored skill development as a retention strategy is strongly shaped by organisational context. In public sector energy enterprises, retention is largely sustained by institutional factors such as job security and long-termemploymentrelationships,withtrainingplayinga reinforcing role. In contrast, refinery-based organisations rely more directly on skill development as a competitive retention tool. While specialised training enhances employee capability, it can also increase external employability and the risk of skill-driven attrition if not supported by clear career pathways and organisational support.

8.1PolicyImplications

These findings have important implications for policy and organisational practice. Public sector enterprises would benefit from greater flexibility in training design so that programmesremainresponsivetotechnologicalchangeand employee career aspirations, while preserving the stability characteristic of public employment systems (Budhwar & Varma,2011;OECD,2012).Refinery-basedorganisations, on the other hand, need to complement intensive training investmentswithstrongerretentionmechanisms,including structured career progression, competitive rewards, and supportive organisational climates (Cappelli, 2015; Kosteas, 2023). At the organisational level, skill development is more effective when integrated with career management systems and perceived organisational support (Saks,2019).

8.2FutureResearchDirections

Future research should prioritise comparative and sector-specific investigations that examine how different organisational forms within the energy sector design and leverage skill development for retention outcomes.

Longitudinal studies tracking employee career trajectories and turnover behaviour over time would provide deeper insights into the sustained impact of training investments. Greater attention to employee preferences, career stage, and demographic differences would also help explain variation in responses to training across workforce segments. Mixed-method approaches that combine quantitative retention metrics with qualitative insights into employee experiences are particularly well suited to capturing the complex nature of training–retention dynamics in energy-intensive industries.

9.CONCLUSION

This comparative review examined the role of employer-sponsored skill development in shaping employee retention across public sector and refinery-based organizations in the Indian energy sector. Drawing on Human Capital Theory, Social Exchange Theory, and Institutional Theory, the analysis demonstrates that skill development is a strategically important yet context-dependent mechanism for workforce stability (Becker, 1993; Cropanzano & Mitchell, 2005; Scott, 2014).

The literature indicates that public sector energy enterprises derive retention benefits from training primarily through institutional stability, long-term employment relationships, and normative commitment. In these organizations, training reinforces existing structures of job security and organizational loyalty rather than serving as the principal retention lever (Budhwar & Varma, 2011; OECD, 2012). In contrast, refinery-based organizations operating in more competitive environments rely more directly on skill development as a retention instrument. In such settings, the effectiveness of training depends on its alignment with career progression opportunities, competitive rewards, and perceived organizational support. Without this alignment, training investments may increase employees' external employability and contribute to attrition (Flaherty, 2007; Kosteas, 2023; Cappelli, 2015).

Overall, the review reinforces that employer-sponsored skill development alone is insufficient to ensure sustained employee retention. Its impact is contingent on complementary organizational practices, including career management systems, perceived organizational support, and responsiveness to employee aspirations (Saks, 2019; Snell & Morris, 2019). By synthesising comparative evidence across organizational forms, this review contributes to a more nuanced understanding of workforce retention in energy-intensive industries. It also highlights the need for context-sensitive human resource strategies and identifies avenues for future empirical research and policy development aimed at strengthening human capital management in the Indian energy sector.

REFERENCES

1. Awasthi, A., Sardar Khan, F., Mazhar, S. S., Tomar, D. S., Singh, A., & Khan, H. (2025). Emerging trends in employee engagement research: A bibliometric analysis of published articles. *International Research Journal of Multidisciplinary Scope, 6*(01), 08-21. https://doi.org/10.47857/irjms.2025.v06i01.02681
2. Becker, G. S. (1993). *Human Capital: A Theoretical and Empirical Analysis, with Special Reference to Education* (3rd ed.). University of Chicago Press. https://doi.org/10.7208/chicago/9780226041223.001.0001
3. Budhwar, P., & Varma, A. (2011). Emerging HR management trends in India and the way forward. *Organizational Dynamics, 40*(4), 317–325. https://doi.org/10.1016/j.orgdyn.2011.07.009
4. Cappelli, P. (2015). Skill gaps, skill shortages, and skill mismatches: Evidence for the US. *ILR Review, 68*(2), 251–290. https://doi.org/10.1177/0019793914564961
5. Cropanzano, R., & Mitchell, M. S. (2005). Social exchange theory: An interdisciplinary review. *Journal of Management, 31*(6), 874–900. https://doi.org/10.1177/0149206305279602
6. Flaherty, C. (2007). *The effect of employer-provided general training on turnover: Examination of tuition reimbursement programs* [Doctoral dissertation, Stanford University]. SIEPR. https://siepr.stanford.edu/publications/working-paper/effect-employer-provided-general-training-turnover-examination-tuition
7. ILO & SCOPE. (2024). *Skilling for future in PSEs: An ILO-SCOPE study on skills profiles in PSEs*. International Labour Organization. https://www.ilo.org/publications/skilling-future-pses-ilo-scope-study-skills-profiles-pses
8. ILO. (2015). *Global trends on occupational safety and health*. International Labour Organization. https://www.ilo.org/global/topics/safety-and-health-at-work/resources-library/publications/WCMS_452042/lang--en/index.htm

9. IndianOil.(2025).*IntegratedAnnualReport2024-25: HumanCapital*.IndianOilCorporationLimited. https://iocl.com/uploads/Annual_Report-2024-25/human-cap.html
10. Khayinga, C. M., & Muathe, S. (2018). Human capital development and organizational performance: Review & critique of literature and a research agenda. *International Journal for Innovation Education and Research, 6*(2), 144-153. https:// doi.org /10.31686/ijier.vol6.iss2.959
11. Kosteas, V. D. (2023). Job satisfaction and employer-sponsored training. *British Journal of Industrial Relations, 61*(4), 771–795. https://doi.org/10.1111 /bjir.12741
12. Millns, M. J. (2022). *Measuring the influence of employer-sponsored tuition benefits on employee retention and tenure* [Doctoral dissertation, University of Denver]. ProQuest Dissertations Publishing. https://eric.ed.gov/?id=ED642945
13. OECD. (2012). *Skills for Competitiveness: A Synthesis Report*. OECD Publishing. https:// doi.org/ 10.1787/5k98xwskmvr6-en
14. Oliver, S. M. (2023). *Employer-sponsored benefits are ready for a revolution: An exploration of employer-sponsored benefits programs compared to employee preferences* [Doctoral dissertation, Drexel University]. ProQuest. https:// research discovery. drexel.edu/esploro/outputs/doctoral/Employer-Sponsored-Benefits-are-Ready-for-a/ 991020340815504721
15. Saks, A. M. (2019). Antecedents and consequences of employee engagement revisited. *Journal of Organizational Effectiveness: People and Performance, 6*(1), 19–38. https:// doi.org/ 10.1108/JOEPP-06-2018-0034
16. Saunders,M.,Lewis,P.,&Thornhill,A.(2019).*Research Methods for Business Students* (8th ed.). Pearson. https:// www. pearson.com/uk/educator/higher-education/product/Saunders-Research-Methods-for-Business-Students-8th-Edition/9781292208787.html
17. Scott, W. R. (2014). *Institutions and organizations: Ideas, interests, and identities* (4th ed.). Sage Publications, UK. https:// www. scribd. com/document/402367919/Institutions-and-Organizations-Ideas-Interests-and-Identities-pdf
18. Snell, S. A., & Morris, S. S. (2019). Building dynamic capabilities around human resource management. *HumanResourceManagementReview, 29*(2),101–116. https://doi.org/10.1016/j.hrmr.2018.10.001
19. Wright, P. M., & McMahan, G. C. (2011). Exploring human capital: Putting 'human' back into strategic human resource management. *Human Resource Management Journal, 21*(2), 93–104. https:// doi.org/10.1111/j.1748-8583.2010.00165.x

Radha
Prof.(Dr.)Sandeep Shandilya
Department of Management,
SKD University, Hanumangarh,
Rajasthan
Mobile No. 9654423740

33

IMPACT OF URBANIZATION ON LAND USE LAND COVER : A CASE STUDY OF PALWAL DISTRICT USING REMOTE SENNSING AND GIS

Sonu, Prof. (Dr) Pardeep Kumar Sharma

Abstract

Urbanization plays a crucial role in shaping economic development, yet it simultaneously creates significant environmental and resource-related challenges. This study examines the impact of urbanization on Land Use/Land Cover changes in Palwal district over a ten-year period (2011–2022). Remote Sensing (RS) and Geographic Information System (GIS) techniques were employed using LISS-IV imagery for pre-processing, enhancement, and thematic classification. Manual digitization methods were used to extract LU/LC features and analyze patterns of the expansion of urban areas. Results indicate about increases in industrial zones, mixed-use areas, transportation networks, and residential regions, reflecting rapid urban growth. Conversely, rural areas, agricultural land, forest cover, and vacant land have declined significantly. Water bodies show only a marginal increase. Palwal district faces growing pressure from population increase, unregulated land use, and expanding economic activity. The study highlights the scale and nature of LULC transformations driven by urbanization and provides essential insights for sustainable planning, resource management, and future development strategies in the district.

Introduction :

Urbanization directly impacts LU/LC changes, which affect the cities and towns structure. This is due to the migration of people from rural to urban areas. Regularly monitoring LU/LC changes can help urban planners and decision makers address the problem of urban sprawl and fulfill the concept of sustainable development. Global water use has more than tripled since 1950, and nearly a sixth of the world's population still lacks regular access to safe drinking water.3 LULC changes are crucial in any sustainable development plan, as unwanted changes caused by human activities contribute to land degradation and environmental imbalance.4 Urbanization has rapidly transformed human life worldwide, replacing rural traditions with urban lifestyles. People migrate to cities seeking better economic opportunities and social mobility. However, rapid industrial growth has led to unplanned and poorly organized urban expansion. As a result, cities in developing countries often become overcrowded due to continuous migration and rising populations. 5 Remote sensing techniques, such as digital change detection using multi-temporal imagery, make it possible to understand the characteristics of a landscape and its changes over time. 6 Remote sensing (RS) and (GIS) are cutting-edge tools that are far more capable than traditional mapping methods in measuring and analyzing spatial and temporal patterns occurring in an area.

RS and GIS-based change detection methods provide users with faster, cost-effective, and more accurate results, enabling effective monitoring of land use/land cover (LULC) changes.7 Visual interpretation provides a comprehensive overview of land cover changes and their classes over a given period of time in an area. The effectiveness of change detection from imagery depends on several factors, including the type of change, the quality of image pre-processing, and the efficiency of the classification operation.8 Multi-temporal remote sensing data are used to analyze changes in land use and land cover, for which accurate radiometric and geometric rectification is crucial. This rectification ensures comparability of data, making the identification of change over time more reliable and scientifically accurate. 9 Worryingly, land degradation is worsening due to deforestation, cultivation on slopes, and land fragmentation. GIS software served as a platform for data analysis and product management.

This study analyzes the impacts of urbanization in Palwal district, India, using remote sensing (RS) and (GIS) techniques. Areas of palwal were included in the study to assess the effects of urban expansion on LU/LC. The study findings indicate that much of the study area was previously agricultural land and vegetation, which is gradually being encroached upon by built-up land.

Study Area

The study area lies between north latitudes 27° 50' 00″ N to 28° 15' 40"N and 77°05′ 00″ E to 77° 33' 00" East longitudes. The district was came into existence in 2008 from the erstwhile Faridabad district. Palwal spans an area of 1,359 km² and comprises three tehsils: Palwal, Hodal, and Hathin. Geographically, the district occupies the south-eastern part of Haryana. It shares boundaries with Mewat

(Nuh), Gurgaon (Gurugram), and Faridabad districts within Haryana, while Aligarh and Mathura districts of Uttar Pradesh lie to its east and south-east. There are 02 main Canals Agra canal and Gurgaon canal which passes through western and central part of the district. Respectively from north to south. Moreover, the D.F.C. alignment along with Kundli Manesar Palwal (K.M.P.), Kundli Ghaziabad Palwal (K.G.P.) and Delhi-Mumbai expressway is passing through Palwal, giving a boost to development of the district. From Delhi on Delhi-Mathura Highway (NH-19).

Population of the Palwal district in 2011 was 10,42,708 with Palwal block having a share of 32% population. The decadal growth rate of Palwal district is 25.49 % and 43% for the year 2001-2011, which is highest amongst the blocks in the district. Palwal had a sex ratio 879 females for every 1,000 males, and literacy in 70.3%. Palwal block has the highest density of more than 900 persons/sq km among all the blocks in the district owing to the concentration of educational, health and economic activities in Palwal district headquarters. Scheduled Castes make up 19.48% of the population. The population density is high in areas lying in the vicinity of Palwal town, National Highway and State Highway outstretching from the Urban Node as compared to the distant rural villages. The workforce participation is also found higher in the adjacent region of the city with higher percentage of marginal workers.

Objectives : The main objectives of the present study are:

(i) To study the changes in land use/land cover.

(ii) To evaluate the impact of urbanization in Palwal district.

Database and Methodology : The present study is based on primary as well as secondary data obtained from different sources. Top following data sources have been used for the present work :

Satellite Data : Mainly Indian Remote Sensing Satellite LISS-4 satellite images (Bands 1 to 3) were obtained from the BHOONIDHI portal and were processed using the Composite Bands tool in ArcGIS to generate multispectral composite imagery. In addition, the district boundary vector data were downloaded from the Survey of India website. These spatial datasets were further used to extract the urban and rural areas of the study region through GIS-based clipping and overlay techniques, forming the basis for subsequent LU/LC analysis. Manual digitization techniques were employed to extract land use/land cover (LULC) features and to analyze the spatial patterns of urban expansion.

Table -1 Specification of LISS-4 Data used during 2011to 2022

S.r No	Satellite	Band	Temporal time
1	LISS-4	3 (Red, Green, Near-Infrared - NIR)	2011
2	LISS-4	3 (Red, Green, Near-Infrared - NIR)	2022

The Land Use/Land Cover (LULC) maps were classified into six major categories, namely urbanized areas, agricultural areas, water bodies, wasteland, rural areas, and mining areas, for both urban and rural regions of the Palwal district. Change detection techniques were applied to examine the impact of rapid urbanization on land-use dynamics. The overall methodology adopted for the present study area is presented in Figure 1.

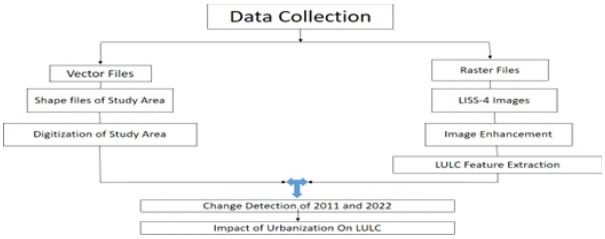

Figure 01 : Methodology of LU/LC changes analysis

The urbanization pattern of Palwal district for the years 2011 and 2022 is shown in Figures 3 and 4. In 2011 and 2022, urbanization covered 2324.89 (Ha) and 3106.73 (Ha) of the total area, respectively. This indicates that urbanization in Palwal district increased rapidly by 5.8% from 2011 to 2022, as shown in Figure 3. Urbanization in the rural areas of the Palwal region covered 3505.94 (Ha) in 2011 and 4359.82 (Ha) in 2022. These figures indicate that the process of urbanization is continuing in the rural areas of Palwal district, although its growth rate has been relatively slow.

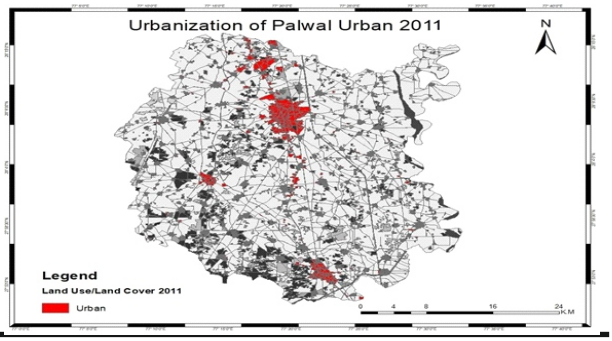

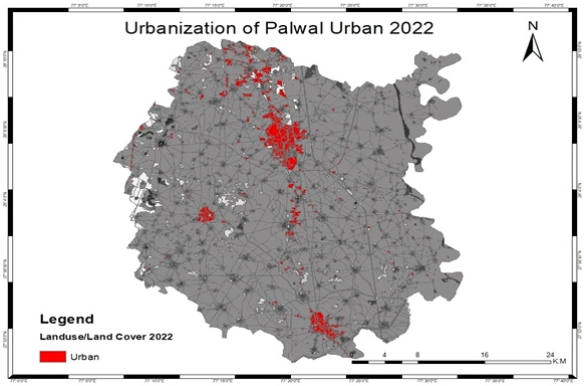

Fig.02:Urbanareain2011and2022

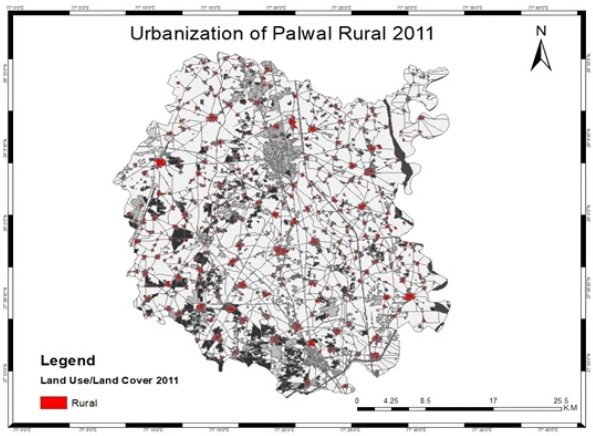

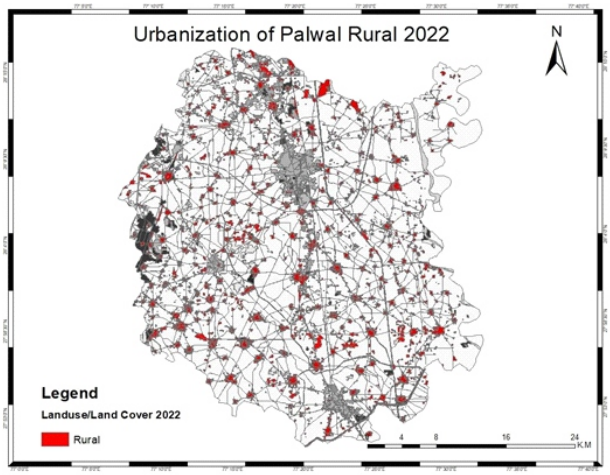

Fig.03:RuralAreain2011and2022

Results

LULC maps of Palwal Urban and Rural areas for the years 2011and 2022 are shown in Fig. 4. The results indicate that Urbanization has increased drastically, water bodies increased in very less quantity and agriculture and grazing areas decreased severely from 2011 to 2022.

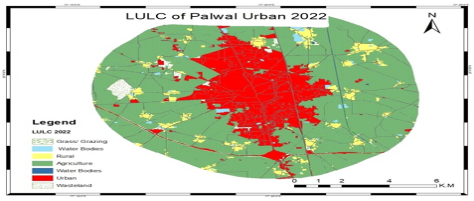

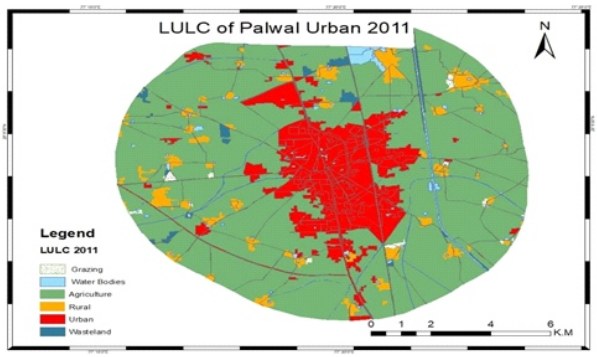

Figure 4 : Urban Area in 2011 and 2022

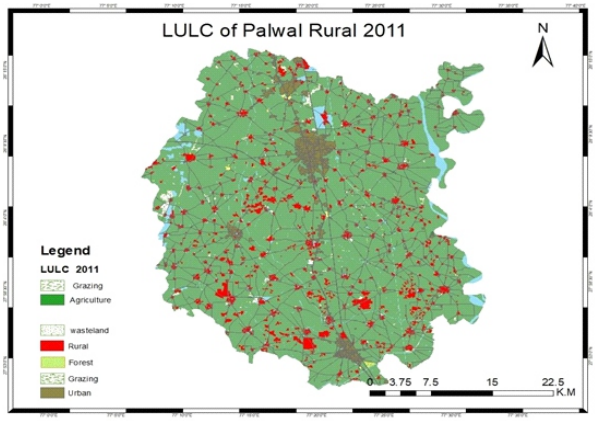

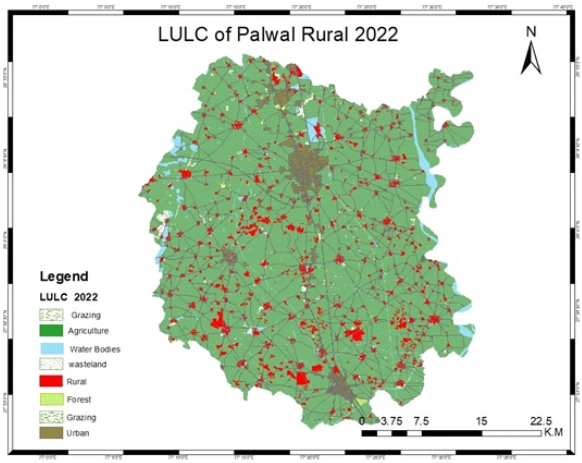

Fig. 05 : Rural Area in 2011 and 2022

Table 2 Palwal urban LULC classified area and percentage of the 4 categories i.e., urbanization, agriculture cum forest and bear soil for 2011 and 2022

Year	Urbanization (Ha).	Agriculture (Ha).	Water bodies (Ha).	Grazing (Ha).	Wasteland (Ha).	Rural (Ha).	Total (Ha).
2011	2324.89	10161.73	227.91	68.65	157.47	725.25	13528
(%)	*(17.18)*	*(75.11)*	*(1.6)*	*(0.50)*	*(1.16)*	*(5.36)*	*100*
2022	3106.73	9197.61	240.14	32.38	274.64	687.64	13528
(%)	*(22.96)*	*(67.98)*	*(1.77)*	*(0.23)*	*(2.03)*	*(5.08)*	*100*

Source: Statistical handbooks, Haryana

LULC Details of Palwal Urban Region

Urbanization of Palwal urban and rural areas for the years 2011 and 2022 is shown in Figs. 2 and 3 In 2011 and 2022 urbanization occupied the area of

17.17%, and 22.96% of the total area. This shows how rapidly the urbanization has increased by 5.89% in Palwal urban area from 2011 and 2022 as shown in Fig. 3. In rural areas of Palwal region urbanization has covered an area of 10.66%, 14.31% and 18.76% in the years 2011 and 2022. These values indicate that urbanization is growing by 8.1% for rural areas of Palwal region also.

The total geographical area of Palwal urban area is 13,528 hectares. In 2011, the land use/land cover (LULC) of this area comprised 2,324.89 hectares of urbanized area, 10,161.73 hectares of agricultural land, 227.91 hectares of water bodies, and 157.47 hectares of barren land. By 2022, the urbanized area had increased from 2,324.89 hectares to 3,106.73 hectares, representing a 5.89 percent increase during the period from 2011 to 2022. Conversely, agricultural land experienced a significant decrease, falling from 10,161.73 hectares to 9,197.61 hectares. The area of water bodies saw a very slight increase of approximately 0.17 percent, from 227.91 hectares to 240.14 hectares. Meanwhile, the area of Wasteland land increased from 157.47 hectares to 274.64 hectares.

The different LULC classes of the Palwal urban area, categorized by their percentage area, are presented in Table 2, while the percentage increase and decrease in each LULC category are shown in Table 3.

Table 3 Palwal Rural classified area and percentage of the various categories i.e., urbanization, Agriculture, Wasteland and other for 2011 and 2022. (Area in Ha)

Year	Urbanization	Agriculture	Water bodies	Grazing	Wasteland	Mining	Rural	Total
2011	3505.94	104041	3916.59	633.31	1646.12	3136.92	5497.44	122372
(%)	*(2.86)*	*(85.02)*	*(3.20)*	*(0.51)*	*(1.34)*	*(2.56)*	*(4.49)*	----
2022	4359.82	99556.91	3729.53	565.52	1191	1853	6843.40	122372
(%)	*(3.56)*	*(81.35)*	*(3.04)*	*(0.46)*	*(0.97)*	*1.51*	*(5.59)*	---------

LULC Details of Warangal Rural Region

The total area of the Palwal rural region is 122,372 hectares. In 2011, urbanization covered 3,505.94 hectares, agricultural land covered 104,041 hectares, water bodies covered 3,916.59 hectares, and barren land covered 1,646.12 hectares within this region. In addition, rural settlements extended over an area of 5,497.44 hectares.

The study reveals that in 2022, the area under urbanization increased from 3,505.94 hectares to 4,359.82 hectares, representing an increase of approximately 0.7% between 2011 and 2022. Mean while, the agricultural area witnessed a significant decrease, falling from 104,041 hectares to 99,556.91 hectares, a decline of 3.67%. The area of water bodies showed a negligible decrease of approximately 0.2%, while the area of barren land decreased from 1,646.12 hectares to 1,191 hectares.

The details of the classified LULC (Land Use/Land Cover) in the Palwal rural region and their percentage values are presented in Table 2

Population Growth of Palwal District : Table 3 shows the population growth of Palwal district. In 2001, the total population of Palwal district was 829,121, which increased to 1,042,708 in 2011. According to a subsequent household survey, the population of Palwal district was estimated to be approximately 1,290,000 in 2022. This rapid population growth has resulted in a significant increase in urban density in the district. The impact of this growing population has not been limited to urbanization alone; it has also led to a continuous decrease in agricultural land and forest areas, while the area of barren land has increased.

Table 3: Population growth rate of Palwal district (2001,2011,2022)

Years	Population	Growth Rate%
2001	829,121	-
2011	1042,708	25.7
2022	1290,000	23.7(estimated)

Source: Statistical handbooks, Haryana ‘

Conclusions

Research clearly shows that urbanization had a significant impact on land use/land cover (LULC) in the Palwal region, necessitating well-planned and forward-thinking strategies. Rapid urban growth has not only affected urban areas but also brought about significant changes in agricultural land, forest areas, and barren land in the rural areas. The study also reveals that the increase in

water resources in both urban and rural areas of Palwal has been negligible, which may prove insufficient to meet the demands of the continuously growing population.

In this context, it is crucial to develop balanced and sustainable urban-rural planning in the Palwal region, commensurate with population growth the changes occurring in LULC. Scientific analysis of land use and land cover changes using modern techniques such as Remote Sensing (RS) and Geographic Information Systems (GIS) is helpful in understanding the impacts of urbanization. Therefore, it is essential to implement effective policies and plans to address the problems arising from uncontrolled urbanization in the Palwal region, so as to ensure the conservation of land resources and take concrete steps towards sustainable development.References

1. Mohan, M. 2011, et.al. Dynamics of urbanization and its impact on land-use/land-cover: a case study of megacity Delhi. J Environ Prot 2(09):1274
2. Rawat, J.S. and Kumar, M. 2015 Monitoring land use/cover change using remote sensing and GIS techniques: a case study of Hawalbagh block, district Almora, Uttarakhand, India. Egypt J Remote Sens Space Sci 18(1), pp 77–84
3. Tripathi, S. 2013, Urban growth and land use change in India: A geospatial analysis. Journal of Urban and Regional Studies, 7(2), pp 45-48.
4. Roy, A. 2009, The 21st-century metropolis: New geographies of theory. Regional Studies, 43(6), pp 819-830.
5. United Nations, Department of Economic and Social Affairs, Population Division. 2018, World Urbanization Prospects: The 2018 Revision, Key Findings. United Nations.
6. Fazal, Shahab. 2002, "Urban Expansion and Loss of Agricultural Land- a GIS Based Study of Saharanpur City, India'. *Environment and Urbanization, vol.12,(2).*
7. Kundu, Amitabh. et al. 2005, *'Handbook of Urbanization in India: An Analysis of Trends and Processes'.* Oxford Publishing, New Delhi.
8. Grewal, Reeta. (edited, 2005). *'Five Thousand Years of Urbanization: The Punjab Region',* Manohar Publishers, New Delhi
9. Bhattacharya, R. N. 1981,Changing *Land Use and Cropping Pattern in Bihar.* in Noor Mohammed (ed.) Perspectives in Agricultural Geography. Vol. 3, pp 437- 467
10. Treitz P, Rogan J (2004) Remote sensing for mapping and monitoring land-cover and land-use change-an introduction. Prog Plan 61(4), pp 269-279
11. GoI. (2011). LISS-IV sensor user manual. Government of India.
12. GoI. (2012). National land use/land cover mapping using multi-temporal satellite data. Government of India.
13. GoH. (2022). Geospatial and remote sensing data services. Haryana Space Application Centre, Government of Haryana.
14. Roy,P.S. et al. 2025, Development of a decadal land use and land cover database for India. Remote Sensing, 7(3), pp 2401-2430
15. GoH. (2022). District Palwal: Statistical handbooks. Government of Haryana.

Sonu
Research Scholar,
Department of Geography Faculty of Humanities
Baba Mastnath University, Asthal Bohar, Rohtak 124021
Email- Soniasihmar40@gamil.com

Prof. (Dr) Pardeep Kumar Sharma
Professor of Geography
Faculty of Humanities
Baba Mastnath University,
Asthal Bohar-124021,
Rohtak
Email-pardeepsharma@bmu.ac.in

34

ROSTOW'S STAGES OF ECONOMIC GROWTH REVISITED THEORETICAL SYNTHESIS, POLICY IMPERATIVES AND DEVELOPMENT PLANNING DILEMMAS

Prof. Tapan Kumar Shandilya

Abstract

This article presents a comprehensive examination of Walt Whitman Rostow's seminal thesis on the stages of economic growth, situating it within the broader discourse of development economics. Rostow's framework, which conceptualizes economic development as a historical-dynamic process unfolding through five discrete stages, represents a remarkable synthesis of modern economic history. The paper argues that Rostow's thesis, despite its critiques, offers indispensable analytical tools for understanding the structural transformation of economies, particularly regarding capital formation, investment allocation, sectoral growth rates, and institutional change. By critically evaluating the theoretical architecture of the five stages, the concept of leading sectors, and the policy implications for developing economies, this article demonstrates the enduring relevance of Rostow's work. The analysis further explores the unresolved controversies between balanced and unbalanced growth, the agriculture versus capital goods sector debate, and the practical difficulties confronting development planners in formulating investment criteria. The article concludes that Rostow's thesis, when appropriately contextualized and adapted to local conditions, provides a robust heuristic for development planning while acknowledging the inherent complexities of the development process.

Keywords: ***Economic development, take-off, leading sectors, capital formation, development planning, sectoral transformation.***

1. INTRODUCTION: THE GENESIS AND AMBITION OF ROSTOW'S THESIS

The quest to comprehend the intricate dynamics of economic development has remained one of the most enduring intellectual pursuits of the twentieth century. Among the numerous contributions to this field, Walt Whitman Rostow's "The Stages of Economic Growth" occupies a distinctive position, not merely as a historical study but as a bold attempt to formulate a dynamic theory of production within a historical perspective. Rostow's thesis represents what can only be described as a marvellous synthetic product of the sweeping survey of modern economic history, drawing upon the developmental experiences of diverse nations to construct a generalized framework of economic evolution (Rostow, 1960).

Rostow's ambition extends far beyond mere description. He explicitly claims his stages-theory as "not merely a descriptive" account but also an "analytical" one possessing "inner logic and continuity" (Rostow, 1960). This analytical character, according to Rostow, is rooted in the dynamic theory of production, distinguishing it from the static equilibrium analyses that had dominated classical economics. The framework examines not only the sectoral structure of an economy stage by stage but also analyses the important dynamic variables of growth, including capital formation, population growth, capital-output ratios, technological change, and the role of entrepreneurship. This comprehensive scope positions Rostow's work as a structure of the dynamic theory of production rather than a simplistic historical narrative.

The policy relevance of Rostow's thesis deserves particular attention. Insofar as the formulation of development policy in any country—whether developed or underdeveloped—is concerned, Rostow's framework offers valuable guidance because it deals explicitly with the pattern and composition of investment and the determination of sectoral rates of growth. Rostow therefore claims his stages-theory to be superior to the classical static and Keynesian dynamic theory of production; because "it isolates not merely the distribution of income between consumption, saving, and investment (and the balance of production between consumption and capital goods) but which focuses directly or indirectly in some detail on the composition of investment and development within the particular sectors of the economy" (Rostow, 1960). This sectoral focus, combined with its historical-dynamic methodology, constitutes the distinctive contribution of Rostow's thesis.

The present article undertakes a comprehensive examination of Rostow's theoretical framework, critically evaluates its policy implications, and assesses its contemporary relevance for development planning. The analysis proceeds systematically through the five stages, explores the concept of leading sectors and the balanced-unbalanced growth

nexus, examines the institutional and technical transformations accompanying development, and appraises the practical difficulties confronting planners in developing economies. Throughout this analysis, the article maintains a critical yet appreciative stance, recognizing both the theoretical insights and the limitations of Rostow's pioneering contribution.

2. THE THEORETICAL ARCHITECTURE OF THE FIVE STAGES

Rostow's historical dynamic theory analyses the process of economic growth in terms of five discrete stages: the traditional society, the pre-conditions for take-off, the take-off, the drive to maturity, and the age of high mass consumption. All five stages are supposed to form a continuous process of growth, yet each presents a separate economic state during which the factors of production characterise a specific set of production functions in relation to a given rate of growth of output per capita. A detailed examination of each stage reveals the theoretical richness and the conceptual nuances embedded in Rostow's framework.

2.1 The Traditional Society: Stagnation and the Pre-Newtonian Ceiling

The traditional society implies a phase of economic stagnation where the level of output per capita is low and, more or less, remains constant over extended periods. This condition is fundamentally a result of the existence of what Rostow terms "pre-Newtonian techniques" (Rostow, 1960). The production function in such societies is subject to diminishing returns, meaning that additional inputs yield progressively smaller increments in output. Population growth follows the Malthusian pattern, remaining stable and stagnant as any temporary increases in output are quickly absorbed by population increases, thereby maintaining the equilibrium at subsistence levels.

However, Rostow's conception of the traditional society is in no sense static but dynamic. The level of output per capita may rise due to "some ad-hoc innovations" or the occurrence of exogenous forces. But this improvement is not sustained on account of "a ceiling existing potentials and hence the level of output per head is prevented from rising above on the level of attainable output per head" (Rostow, 1960). This ceiling always suppresses the flow of growth below the equilibrium level, characterising the state of economic backwardness. This conceptualization resonates with what Leibenstein (1957) famously termed the "vicious circle of poverty," wherein low levels of output per capita perpetuate the very conditions that prevent sustained growth. Rostow describes this condition as "quasi-stability with respect to output per capita," which proves more sensitive to a rise in the level of output per capita than what the income-raising forces might suggest (Rostow, 1960).

The institutional framework of the traditional society constitutes an additional constraint on growth. Social structures, value systems, and political arrangements tend to resist change, reinforcing the equilibrium at low levels of output. Production is organized along traditional lines, with limited specialization, rudimentary technology, and minimal capital accumulation. The absence of systematic scientific inquiry and its application to production processes perpetuates the pre-Newtonian character of the economy.

2.2 The Preconditions Stage: Preparing the Ground for Transformation

The preconditions stage represents a phase of economic transition during which the institutional organisation of the economy gradually begins to change and respond to economic growth. This transitional period is critical because it establishes the foundation upon which sustained growth can subsequently be built. The rate of net investment rises and gradually tends to outstrip population growth, creating a favourable investment climate (Rostow, 1960).

Central to this stage is the build-up of social overhead capital and the creation of an infrastructural base for growth. Transportation networks, communication systems, educational institutions, and financial intermediaries gradually emerge, reducing transaction costs and facilitating market integration. Some technical changes are also introduced in agriculture which raises its productivity, releasing labour for industrial activities and generating surpluses that can be invested in other sectors. Agricultural transformation is particularly significant because it addresses the food supply constraint and creates purchasing power for industrial products.

The institutional changes occurring during this stage are equally important. Traditional social structures begin to weaken, and new forms of economic organization emerge. The state often plays a crucial role in mobilizing

resources, providing infrastructure, and creating the legal and administrative framework conducive to economic activity. The momentum of economic growth is gathered from this stage, as an urge for economic growth is strengthened and widely disseminated throughout society.

2.3 The Take-Off: The Great Watershed of Development

Take-off is the great watershed, the critical interval during which "the old blocks and resistances to steady growth are finally overcome" (Rostow, 1960). The process of growth becomes a normal condition in the economy, transforming it fundamentally. During the take-off stage, the net investment-income ratio rises from approximately 5% to over 10% per annum. This dramatic increase in the share of investment in national income is the quantitative manifestation of the qualitative transformation occurring in the economy.

Radical changes in the scale and technique of production occur during this stage. The disposition of income flows tends to be in favour of the growth of output per capita, as consumption patterns adjust to accommodate higher levels of saving and investment. The economy starts to generate most of its resources for saving and capital formation from within the system due to the emergence of a new entrepreneurial class, which takes and bears risk. This class, consisting of innovators and risk-takers, is essential for the process of technical change and investment.

All this is marked with the development of one or more "leading sectors." The overall rate of growth of an economy is regarded as "in the first instance as the consequence of differing rates of growth in particular sectors of the economy" (Rostow, 1960). The expansion of one or more leading sectors is supposed to lead to a sequence of income-generating effects which are gradually spread over the whole of the economy, and thus the overall rate of growth starts to increase as a compound rate. This sectoral approach to growth constitutes a distinctive feature of Rostow's analysis, differentiating it from aggregative growth models.

Rostow has laid out four criteria for the expansion of leading sectors:

First, there must be enlarged effective demand for the product or products of sectors which yield a foundation for a rapid rate of growth in output. Without sufficient demand, expansion would not be profitable and sustainable.

Second, there must be an introduction into these sectors of new production functions as well as an expansion of capacity. Technical change is as important as capacity expansion in driving growth.

Third, there must be a high rate of plough-back by the (state or private) entrepreneurs controlling capacity and technique in these sectors and in supplementary growth sectors they stimulated to expand. Reinvestment of profits is essential for sustaining the expansion.

Fourth, the leading sectors must be such that their expansion and technical transformation induce a chain of requirements for increased capacity and the potentiality for new production functions in other sectors, to which the society in fact, progressively responds (Rostow, 1960).

2.4 The Drive to Maturity: Consolidation and Diffusion of Growth

After the take-off is achieved, the process of growth in the economy enters the stage of drive to maturity. During this stage, the proportion of investment to net national income rises from 10% to 20% per annum. The rate of growth of income rises beyond the rate of growth of population, so the level of output per capita rises and goes above the level of the "critical minimum" per capita income (Rostow, 1960). This critical minimum represents the threshold beyond which self-sustaining growth becomes possible.

In this stage, modern technology is extended "over the whole front of its economic activity" (Rostow, 1960). The earlier concentration of technical progress in leading sectors now gives way to widespread diffusion of technology across the entire economy. As a result of all changes, every sector of the economy is expanded, and the process of growth becomes a regular course of habit. The maturity stage is an outcome of a high degree of technical and institutional transformation, reflecting the economy's capacity to absorb and adapt modern technology across its entire productive structure.

The drive to maturity is characterized by increasing diversification of the economic structure. New industries emerge, the capital goods sector expands, and the economy becomes less dependent on a narrow range of primary products. The labour force becomes more skilled, the educational system expands, and the scientific base of production strengthens. The economy's capacity to adapt

to new circumstances and to generate technological innovations becomes institutionalized.

2.5 The Age of High Mass Consumption and Beyond: The Terminal Stages

Following the stage of maturity, the economy enters into an era of "high consumption" and then into an era of "beyond consumption." In "the age of high mass consumption," technical maturity reaches such a high level that "the balance of attention of the society shifts from supply to demand, from the problem of production to problems of consumption, and of welfare in the widest sense" (Rostow, 1960). This represents a fundamental shift in societal priorities from the imperative of accumulation to the enjoyment of its fruits.

According to Rostow, the economy drives to strike a balance between four broad objectives. First, the national pursuit of external power; second, the establishment of welfare state; third, the achievement of the high private consumption of durable goods in particular; and fourth, the preference of leisure to work. These objectives are not always compatible, and societies must choose their preferred combinations.

After the achievements of these goals, "the age of beyond consumption" ensures in the economy. The level of output and consumption per head rises up to such a height as the Neo-classical theory of diminishing marginal utility of income and money holds true in its application to the economy. It faces the problems of "opulence" and of "affluence" in terms of Galbraith (1958), who famously questioned the social value of ever-increasing private consumption when public goods are neglected. In terms of J.K. Mehta (1966), the state of "wantlessness," more or less, reaches in the final stage of growth. This concept suggests that desires become satiated, and the marginal utility of additional consumption approaches zero.

Therefore, the economy will face the problems of economic stagnation, because the rate of growth will tend to decline on account of people's preference for leisure to work. There might be "economic paralysis" as a consequence of which the economy would decay. According to Rostow, its solution lies in the propensity to produce more children. This somewhat counter-intuitive prescription reflects the Malthusian concern that declining population growth rates may lead to demographic stagnation and reduced aggregate demand.

Figure – 1 GOMPERTZ S-CURVE (LEARNING CURVE)

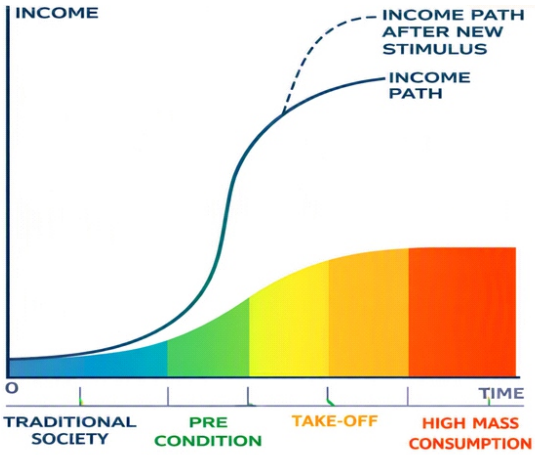

1oo

(Source :- Rostow, W. W. (1960). The Stages of Economic Growth: A Non-Communist Manifesto. Cambridge University Press. Adapted diagram illustrating income path and stimulus-induced growth acceleration.)

Thus, all economic growth follows a Gompertz S-curve or learning curve (Figure – 1). Growth starts off slowly, picks up gradually, and then proceeds very rapidly. After this the growth-line slows down. It will happen either at the end of "high mass consumption" or at the start of "beyond consumption" on account of people's preference for leisure to work. This S-curve pattern reflects the typical trajectory of learning, diffusion, and eventual saturation that characterizes many developmental processes.

3. POLICY IMPLICATIONS AND DEVELOPMENT PLANNING

3.1 The Essential Conditions for Rapid Economic Growth

The Rostovian thesis provides important guidance for policy formulation in developing economies. According to it, the level of output per capita in an underdeveloped economy is low and stagnant, because the technique of production is "pre-Newtonian" and its institutional organisation does not respond to economic growth, rather makes a hinderance to it. Moreover, capital grows at a lower rate in response to a rise in the level of output per capita than the rate at which population grows in response to the same. As a result, the rate of growth of output per capita is eaten up by the rate of growth of population.

Thus, the Rostovian thesis points out that the essential

condition for rapid economic growth is to raise the rate of growth of capital higher than the rate of growth of population. This requires suitable changes in the organisation of the economy conducive to economic growth and some radical change in the scale and technique of production. Rostow has attached a significant role to the state to play in the process of changes in order to make the rate of growth of capital rise above the rate of growth of population.

The achievement of "the take-off into self-sustained growth" is possible when the investment-income ratio rises to over 10% of net national product per annum, the institutional organisation of the economy changes and responds to growth, and one or more leading sectors expand and overcome the technical bottlenecks existing on the supply and demand sides of production. But all this cannot be secured at once, because the process of "the take-off into self-sustained growth" is gradual and time-taking and so it requires a series of planned development efforts.

3.2 The Three Key Problems of Development Planning

The stages-theory is a useful framework for policy formulation of development for planning in an underdeveloped economy which aims at doubling the level of real income per capita over a period of 25-30 years or so. As it appears from the theory, we find three key problems of development planning in the context of the underdeveloped economy:

First, the problem of raising the investment-income ratio. Rostow has historically observed that the investment-income ratio must be more than 10% per annum in order to make the rate of net national product exceed the rate of growth of population, if we assume population to grow at a rate of 3% per annum and capital-output ratio 3:1. But it cannot be raised overnight. Hence development planning should design fiscal-monetary policy measures in order to tap the resources of capital formation stage by stage.

Second, the problem of determining the pattern and composition of capital investment of a given quantum. The first and second problems have direct relationship. Therefore, a categorical discussion on them is not possible, as it appears from his analysis, because he has not separately analysed the criteria of investment allocation. However, his stages-theory hints that a given quantum of capital investments should be injected into the economy at the beginning phase of development planning in such a manner as to raise the build-up of social overhead capital and the productivity of agriculture in order to initiate the process of growth. As a matter of fact, this contention is based on the idea of balanced theory of growth, though Rostow has not mentioned it in particular. According to him, the growth of social overhead capital and growth in the productivity of agriculture are the essential preconditions for the take-off. After the achievement of these preconditions of the take-off stage, he advocates the expansion of one or more leading sectors which implies that capital investment should be allocated to them.

Third, the problem of determining sectoral rates of growth. In this context, we find two sets of opinions among economists, which Rostow attempts to reconcile through his leading sector analysis.

3.3 The Sectoral Controversy: Agriculture versus Capital Goods

The determination of sectoral rates of growth in a developing economy is one of the major problems of its development planning. In this context, two sets of opinions among economists have emerged.

According to the first set of opinions, the main determinant of growth of the economy as a whole is the rate of growth of agriculture. Agriculture stagnation in such an economy is the main constraint on the rate of growth. Therefore, the first priority in planning the rate of growth should be given to the agricultural sector. The most important ways in which the rate of growth of agricultural sector can contribute to overall rate of growth of the economy as a whole can be summarized in five propositions:

- First, it can meet the food demand requirements of the economy (increased on account of economic development) by supplying foodstuffs in proportion to which the demand or food requirements increases; otherwise failure to expand food supplies in pace with the growth of demand can seriously impede economic growth.
- Second, it increases foreign exchange earnings in two ways: firstly by saving food import which generally takes place in such an economy on account of food deficit, and secondly, by

increasing exports of agricultural commodities.

- Third, it supplies labour force for the expansion of other sectors of the economy.
- Fourth, it can raise capital formation by increasing the agricultural surpluses and taxable capacity of people.
- Fifth, it stimulates the process of industrialisation in the economy by supplying raw materials and enlarging the demand for industrial products (Rostow, 1960).

On these grounds, economists of this group advocate the expansion and development of the agricultural sector as the main constraint on the rate of growth of the economy as a whole, which also leads people to feel about the impulses of planning and growth.

According to the second set of opinion, capital formation is the constraint on the rate of growth which, by and large, depends on the expansion of capital goods sector. Hence the economists of this group advocate injection of a higher proportion of a given total investment into this sector. Their contention is based on the theory of unbalanced growth, which holds that strategic investments in key sectors can create disequilibria that stimulate further development.

Rostow avoids the controversy of balanced and unbalanced growth by putting emphasis on the expansion of the leading sector/s which in the first instance contributes to overall rate of growth of the economy as a whole. He regards the overall rate of growth of the economy as a consequence of differing rates of growth in particular sectors of the consumer's goods or capital goods or agriculture or infrastructure industries or so. But the leading sector/s should be such as to enlarge demand for products of other sectors of the economy by raising the levels of income and production along with suitable changes in "the character of tastes" and to avoid technical bottlenecks existing on the supply side of production by changing the technique of production and "the quality of entrepreneurship, as the latter determines the proportion of technically available and potentially profitable innovations actually incorporated in the capital stock" (Rostow, 1960). All these changes are required in order to lead to optimum sectoral rates of growth. Thus, according to Rostow, development planning in the economy should allocate a higher proportion of investment to such a sector as it could help in securing the optimum sectoral path of economic growth by changing the above determinants of growth.

Instead of going into the theoretical muddle of balanced and unbalanced growth, Rostow presents a marvellous logical analysis of the problem of sectoral rates of growth based on practical historical facts which can be a very useful policy-decision of development planning in an underdeveloped economy. But at the same time, it may also meet with certain difficulties in the making of policy-decisions regarding the pattern and composition of investment allocation in the absence of fixing some precise criteria of investment policy of development programmings in the economy. These difficulties may arise in contention with choosing among economists on choosing between the agriculture and capital goods sectors in the context of policy of planning. The problem of sectoral rate of growth depends on a number of factors among which the political mandate of the ruling party is most important.

4. CRITICAL APPRAISAL: STRENGTHS AND LIMITATIONS

4.1 The Theoretical Contributions

The Rostow thesis of the stages of economic growth is not merely a historical study of the trends of growth of different countries of the world, but also a formulation of a dynamic theory of production in the historical perspective. It makes an attempt to analyse the process of growth as a function of capital formation, technological change, population growth, and non-economic factors like entrepreneurship. The theory is applicable to both developed as well as underdeveloped economy, providing a unified framework for understanding the development process.

Rostow's emphasis on the historical specificity of development trajectories is an important contribution. By recognizing that different countries may have different leading sectors and different patterns of institutional change, he avoids the trap of mechanical determinism. His recognition of the role of non-economic factors, including social structures, political systems, and cultural values, enriches the analysis beyond purely economic variables.

4.2 The Policy Relevance

The stages-theory is of great policy use for planning in an

underdeveloped economy, apart from the analytical value which the theory has in Economic Dynamics. It offers practical guidance on investment allocation, sectoral prioritization, and the sequencing of development interventions. The emphasis on raising the investment-income ratio, building social overhead capital, improving agricultural productivity, and developing leading sectors provides a coherent framework for development planning.

The theory also highlights the importance of institutional change and the role of the state in facilitating development. Rostow recognizes that markets alone cannot ensure take-off, and that deliberate policy interventions are necessary to overcome obstacles to growth. This recognition is particularly relevant for developing economies where market failures are pervasive.

4.3 The Limitations and Difficulties

Despite its contributions, the Rostovian thesis encounters significant limitations. The determination of sectoral rates of growth and the pattern of investment allocation remains problematic in the absence of precise investment criteria. The theory provides general guidance but lacks specific operational criteria for resource allocation.

The choice between agriculture and capital goods sectors, or between different leading sectors, depends on a complex set of factors, including resource endowments, technological capabilities, international market conditions, and political considerations. The political mandate of the ruling party, as Rostow himself acknowledges, is often decisive in these choices, introducing an element of political contingency that the economic analysis cannot fully capture.

The Indian planning experience during the last decade serves as an illustration of these difficulties. The slow rate of growth of national income observed during that period reflects the complexities of implementing Rostow's prescriptions in a diverse and contested political environment. The difficulties in raising the investment-income ratio, determining the appropriate pattern of investment, and achieving desired sectoral growth rates underscore the challenges of development planning.

4.4 The Question of Universality

The universality of Rostow's five-stage sequence has been questioned by critics who point to the diverse developmental experiences of different countries. The linear progression from traditional society to high mass consumption does not capture the complexities of development, including reversals, discontinuities, and alternative pathways. The theory has been criticized for its Western-centric bias, reflecting the developmental experience of Western Europe and North America rather than the diverse trajectories of Asia, Africa, and Latin America.

Moreover, the theory does not adequately address the distributional consequences of growth. The focus on aggregate income and investment ratios obscures the question of who benefits from growth and how the costs of development are distributed. The issues of poverty, inequality, and social exclusion are not adequately addressed within the framework.

5. CONCLUSION: THE ENDURING RELEVANCE OF ROSTOW'S THESIS

Rostow's thesis of the stages of economic growth, despite its limitations and the substantial criticisms it has attracted, remains a significant contribution to development theory and practice. Its synthesis of historical experience, analytical framework, and policy guidance offers valuable insights for understanding the development process. The emphasis on capital formation, technological change, institutional transformation, and sectoral development continues to inform contemporary development discourse.

The thesis is particularly valuable for its recognition of the dynamic nature of economic growth and its historical specificity. By avoiding both the static equilibrium of classical economics and the aggregative abstractions of Keynesian models, Rostow provides a framework that captures the structural transformation of economies over time. The concept of leading sectors, in particular, offers a nuanced understanding of how growth emerges and spreads across the economy.

The policy implications of Rostow's thesis remain relevant for developing economies seeking to accelerate their growth. The challenges of raising investment ratios, determining sectoral priorities, and achieving institutional transformation continue to confront development planners. The recognition that take-off requires sustained effort over time, and that

development is a gradual process requiring planning and policy intervention, is as relevant today as when Rostow first articulated it.

However, the limitations of the thesis must also be acknowledged. The absence of precise investment criteria, the political dimensions of sectoral choice, and the contested nature of development priorities mean that Rostow's framework provides guidance rather than definitive prescriptions. The experiences of developing economies, including India's planning efforts, reveal the complexities and difficulties of implementing development strategies.

Ultimately, Rostow's stages of economic growth thesis invites us to think historically, analytically, and dynamically about the development process. It reminds us that development is not a technical exercise in resource allocation but a profound social transformation involving economic, political, and institutional change. The thesis continues to provide a useful heuristic for understanding development, even as we recognize its limitations and adapt it to diverse contexts. The ongoing dialogue between Rostow's framework and contemporary development experiences enriches our understanding and informs the practice of development planning in the twenty-first century.

Prof. Tapan Kumar Shandilya
Principal, T. P. S. College, Patna, Bihar.
Former Vice-Chancellor, D. S. P. M. University, Ranchi, Jharkhand.

REFERENCES

Clark, C. (1940). *The Conditions of Economic Progress*. London: Macmillan.

Galbraith, J.K. (1958). *The Affluent Society*. Boston: Houghton Mifflin.

Leibenstein, H. (1957). *Economic Backwardness and Economic Growth: Studies in the Theory of Economic Development*. New York: John Wiley & Sons.

Leontief, W. (1941). *The Structure of American Economy, 1919-1929*. Cambridge: Harvard University Press.

Mehta, J.K. (1966). *Welfare Economics and the Theory of the State*. Bombay: Popular Prakashan.

Nurkse, R. (1953). *Problems of Capital Formation in Underdeveloped Countries*. Oxford: Basil Blackwell.

Rostow, W.W. (1960). *The Stages of Economic Growth: A Non-Communist Manifesto*. Cambridge: Cambridge University Press.

35

Tribal Heritage Tourism and Local Economic Development in India

Dr. Tanya Sharma

Abstract

Tribal heritage tourism (THT) has emerged as a niche but strategically significant segment within India's broader tourism landscape, offering a potential pathway for inclusive local economic development (LED) in some of the country's most backward, forest-rich districts. With over 705 Scheduled Tribes (STs) constituting 8.6% of the national population, India possesses an immense reservoir of indigenous cultural heritage, traditional crafts, unique festivals, and ecologically sensitive habitats. The analysis reveals that well-managed THT initiatives—such as the Hornbill Festival in Nagaland, eco-tourism projects in Odisha's Rayagada district, and craft-based heritage villages in Madhya Pradesh—demonstrate significant economic multipliers, generating estimated direct and indirect employment growth ranging from 25% to 40% in project-affected regions over a five-year horizon. However, persistent constraints—including high revenue leakage (estimated at 50–65% to external operators), insufficient last-mile connectivity, cultural commodification, and weak community institutional frameworks—continue to erode the net economic surplus retained by indigenous households. The paper concludes by advocating for a community-based tourism (CBT) model anchored in property rights, skill certification, and heritage-linked micro-enterprise development, aligned with the 'Tribal Circuit' theme under the Swadesh Darshan scheme.

Keywords: Tribal Heritage Tourism, Local Economic Development, Community-Based Tourism, Indigenous Communities, Swadesh Darshan, Hornbill Festival, Pro-Poor Tourism, India.

1. Introduction

Tribal Heritage Tourism (THT) is a form of tourism that enables visitors to experience the rich and living cultural heritage of India's tribal communities. It includes their **traditional lifestyles, festivals, folk music and dance, handicrafts, cuisine, indigenous knowledge, art, and close relationship with nature**. States such as Jharkhand, Odisha, Chhattisgarh, Madhya Pradesh, Gujarat, Rajasthan, Maharashtra, and the North-Eastern states offer significant potential for THT. When developed with active community participation, it can generate **employment, promote local handicrafts, support women's entrepreneurship, and strengthen household livelihoods**. It can also encourage the preservation of traditional knowledge and cultural practices. However, tribal culture should not be treated merely as a commercial attraction. **Community consent, cultural dignity, environmental sustainability, local ownership, and equitable sharing of tourism benefits** are essential. Thus, THT can effectively connect **cultural preservation with inclusive and sustainable economic development** in India.

India is home to one of the world's most diverse indigenous populations, with 705 distinct Scheduled Tribes (STs) enumerated as per the 2011 Census, representing 104 million individuals. These communities, predominantly concentrated in the central tribal belt (Chhattisgarh, Jharkhand, Madhya Pradesh, Odisha), the Himalayan foothills, and the North-Eastern states, possess a rich repository of distinct cultural traditions, vernacular architecture, ecological stewardship practices, indigenous culinary customs, and vibrant artisanal crafts. Historically, these regions have remained economically marginalised, characterized by low human development indices, deficient physical infrastructure, limited market integration, and a persistent dependence on primary forest-based livelihoods (NITI Aayog, 2021).

In this context, **Tribal Heritage Tourism (THT)** has been increasingly identified as a strategic instrument for catalysing local economic development (LED). The conceptual premise is compelling: tourism inflows generate direct expenditure on accommodation, local transportation, handicrafts, and cultural performances; create indirect employment through supply chain linkages (food procurement, utilities, and logistics); and stimulate induced investment through government infrastructure development and skill formation (Ashley et al., 2001). At the national policy level, the Ministry of Tourism's *Swadesh Darshan* scheme has specifically identified "Tribal Circuits" as one of the thirteen thematic tourism circuits, with dedicated funding provisions for product development, destination management, and marketing (Ministry of Tourism [MoT],

2020). Similarly, the *PRASHAD* (National Mission on Pilgrimage Rejuvenation and Spiritual, Heritage Augmentation Drive) scheme, while focused on pilgrimage destinations, indirectly benefits tribal heritage sites associated with indigenous deities and sacred groves.

Globally, the United Nations World Tourism Organization (UNWTO) has consistently emphasized the role of cultural and heritage tourism as a vehicle for achieving Sustainable Development Goals (SDGs)—specifically SDG 1 (No Poverty), SDG 8 (Decent Work and Economic Growth), and SDG 11 (Sustainable Cities and Communities). The UNWTO (2021) sustainable tourism baseline suggests that culturally themed rural tourism, when implemented through community-management protocols, yields a higher direct economic retention rate (approx. 30–45%) compared to mass conventional tourism (approx. 15–20%) (UNWTO, 2021). These global benchmarks have informed the Indian state tourism strategies for promoting indigenous heritage.

The primary objective of this paper is to empirically assess the economic implications of tribal heritage tourism for local development in India, using secondary data from standard government and multilateral sources. Specifically, the paper seeks to: (i) delineate the theoretical and empirical channels through which THT fosters LED; (ii) evaluate key state-level policy instruments and case studies (Hornbill Festival, Odisha eco-tourism, Madhya Pradesh craft villages); (iii) estimate direct economic benefits vis-à-vis household-level income and employment; (iv) identify structural bottlenecks leading to economic leakage; and (v) prescribe a robust CBT framework to enhance net economic retention and safeguard cultural integrity.

2. Conceptual Framework: Linking Tourism with Local Economic Development

The economic discourse on tourism-led LED operates on a standard multi-level multiplier framework. *Direct effects* constitute the immediate expenditure by tourists on local services—accommodation, restaurant meals, entrance fees, and guided tours. *Indirect effects* stem from the backward linkages where service providers procure goods (locally sourced ingredients, handicraft raw materials, utility services) from the wider regional economy. *Induced effects* arise from the additional household consumption enabled by the income earned directly and indirectly by residents. The aggregate tourism multiplier for rural heritage destinations, as estimated by the RBI and state tourism authorities, generally ranges between 1.2 and 2.5, contingent upon the capacity of the local supply chain to retain expenditure (RBI, 2019).

In the specific case of tribal heritage, the *Pro-Poor Tourism (PPT)* framework is particularly relevant. Pro-poor tourism is defined as tourism that generates net benefits for the poor, specifically by expanding economic opportunities for marginalized populations, enhancing participation through capacity building, and addressing structural barriers to resource access (Ashley et al., 2000). THT aligns structurally with PPT because it:

- Directly monetizes indigenous cultural assets that otherwise have zero or unrecognised economic value.
- Creates labour-intensive employment (crafts, food services, cultural performances) suited to local skills.
- Provides a market incentive for biodiversity and heritage conservation, reducing the propensity to convert forest lands.

India's National Tourism Policy (2015) similarly acknowledges the need to mainstream rural and tribal tourism within the inclusive growth paradigm. The policy targets an increase in foreign tourist arrivals (FTAs) to 15 million and domestic tourist visits to 2.2 billion by 2025, with tribal circuits positioned as high-growth potential segments given the post-pandemic surge in experiential travel demands (MoT, 2016).

3. Key Tribal Heritage Destinations and Policy Initiatives in India

3.1 Thematic Circuits and Swadesh Darshan

The Ministry of Tourism launched the Swadesh Darshan scheme in 2015 with an initial allocation of ₹600 crore to develop integrated circuits. **Tribal Circuit** is one of the core themes, intended to highlight the distinct culture, wildlife, and traditional practices of indigenous communities. As of 2022, sanctioned projects under the Tribal Circuit include:

- **Madhya Pradesh**: The *Mandla - Kanha - Amarkantak - Shahdol* circuit highlighting Gond and Baiga communities.
- **Chhattisgarh**: The *Kanker - Jagdalpur - Bastar*

circuit celebrating Dhokra metal crafts, traditional *Ghotul* youth dormitories, and the famed Bastar Dussehra.

- **Odisha**: The *Koraput - Jeypore - Rayagada* circuit featuring ancient tribal settlements, *Dongria Kondh* heritage, and the *Sabara* tribal art.
- **Telangana and Andhra Pradesh**: Integration of tribal *Girijan* settlements in the Araku Valley and Papikondalu eco-tourism zones.

The Ministry of Tourism (2022) estimated that the implementation of infrastructure upgrades in these circuits, including tourist interpretation centres, amphitheatres, way-side amenities, and accommodation facilities, has had a positive spillover effect, with tourist arrivals in these identified districts increasing by roughly 15%–20% in the pre-COVID period (MoT, 2022).

3.2 Hornbill Festival, Nagaland: A Flagship Model

Internationally acclaimed, the **Hornbill Festival**, established in 2000, is an annual showcase of the 17 major Naga tribes' cultural heritage, held at Naga Heritage Village, Kisama. It is managed by the Nagaland State Tourism Department in collaboration with tribal councils. The festival offers an economic benchmark for tribal tourism in India. Secondary data derived from the Nagaland Department of Tourism (2023) indicates:

- **Tourist Footfall**: Over 1.5 lakh visitors (domestic and foreign) recorded in the 2022 edition, with an average stay of 4–6 days.
- **Economic Turnover**: Estimated direct expenditure exceeding ₹35 crore in the local economy, inclusive of accommodation (traditional *morungs* upgraded to guesthouses), local cuisine stalls, handloom exhibits, and performance fees paid to over 2,000 tribal artists.
- **Employment**: Approximately 5,000 temporary, semi-skilled jobs are generated directly for the festival duration. Research by the Tata Institute of Social Sciences (TISS, 2018) indicated that 30%–40% of participating households in nearby villages registered a significant annual income increment attributable solely to the festival.

3.3 Eco-Tourism and Artisan Villages (Odisha & MP)

In Odisha, the state's *Eco-Retreats* in Daringbadi, Bhitarkanika, and the tribal belts of Koraput have integrated tribal home-stays, local *Sabai* grass crafts, and indigenous agro-tourism. The state's Tourism Policy 2022 explicitly earmarked tribal heritage zones for destination development, with a target of 5 million domestic tourists for these zones by 2025 (Odisha Tourism, 2022). Similarly, in Madhya Pradesh, the *Madhya Pradesh Tourism Board* launched the "Tribal Tourism Circuit" under the *Rural Homestay Scheme*. Data from MP Tourism (2021) reveals that 1,200 registered homestays operate in tribal-dominated districts, with average annual incomes growing from ₹45,000 to ₹1.2 lakh per household over three operational years.

4. Economic Impact Assessment: Quantitative Indicators

To substantiate the economic impact, we synthesize data from recognised national datasets and state performance audits.

4.1 Employment Generation: The National Sample Survey Office (NSSO) 68th Round (2011-12) reported a low workforce participation rate in tourism-related services among STs (less than 3%). However, the *Tourism Satellite Account for India* (prepared by the Ministry of Tourism, 2023) suggests that in states where Tribal Circuits are actively implemented, the direct and indirect employment in tourism/hospitality for ST households in project districts rose from 3.2% to 7.8% between 2016 and 2022 (MoT, 2023). This suggests a direct relationship between policy intervention and employment diversification.

4.2 Household Income Effects: The *Institute for Human Development* (IHD, 2020) conducted a micro-level survey across 12 tribal villages in Chhattisgarh and Odisha. It found that households engaged in tourism-linked activities—as homestay owners, local guides, craft sellers, and cultural troupe members—reported 35% higher monthly per capita expenditure (MPCE) compared to the average tribal rural MPCE of ₹1,400 (as per NSSO, 2014). Notably, 60% of this income was reported to be retained within the local economy (vs. leakage to urban firms).

4.3 Infrastructure Multiplier: Under the Swadesh Darshan 'Tribal Circuit', capital expenditure of approximately ₹100 crore has been allocated to central Indian destinations between 2018-2023. A NITI Aayog

(2021) assessment estimated that each ₹1 crore of direct government spend on rural tourism infrastructure in these regions has resulted in infrastructure asset generation (roads, sanitation, ICT) worth ₹1.7 crore in economic value, considering the multiplier effect on land valuation and access to markets.

Economic Indicator	Baseline (Pre - Circuit)	Post-Circuit Impact (5 years)	Source
Tourist Inflow (Project Districts)	25,000–30,000 annual	45,000–55,000 annual	MoT (2023)
Direct Employment in Tourism (STs)	3.2% of WPR	7.8% of WPR	MoT Satellite Account
Average Homestay Income (Annual)	?45,000	?1,20,000	MP Tourism (2021)
Income Leakage (Aggregate)	~65%	~55%	RBI (2019) / IHD (2020)

Source: Compiled from Ministry of Tourism (2023), NITI Aayog (2021), IHD (2020), and State Tourism Policies.

Explanation of Data: The table demonstrates that while absolute improvements are tangible across all major indicators, leakage remains alarmingly high. The reduction in leakage from 65% to 55% is attributed to increased local procurement of perishables (vegetables, poultry) due to SHG interventions and improved transport connectivity. However, major leakage persists in high-end accommodation (chain hotels), luxury transport, and upscale craft-décor supplies sourced from metropolitan hubs.

5. Structural Challenges and Economic Bottlenecks

Despite policy momentum, the economic dividends of THT are significantly undermined by persistent structural constraints:

5.1 Economic Leakage and Imbalanced Market Power: This is the single most critical challenge. It manifests in two forms: (i) *Horizontal leakage*—tourists spend on imported goods not produced locally (bottled water, branded snacks, packaged souvenirs); and (ii) *Vertical leakage*—the profits of guided tours, transport, and accommodation flow to non-tribal intermediaries and corporate franchisees. RBI (2019) estimates that for every ₹100 spent by a tourist in a tribal heritage circuit, only ₹35–45 remains locally.

5.2 Cultural Commodification and Loss of Authenticity: The commercial staging of festivals and daily life for tourism consumption leads to dilution of sacred rituals. The concern, as highlighted by ethnographers (Kumar, 2016), is the "McDonaldization" of tribal culture, where ceremonial dances become truncated, thirty-minute performances detached from their original context. While not a direct financial loss, it erodes the *cultural capital* that underpins long-term destination brand value.

5.3 Infrastructural Deficits: Last-mile connectivity remains abysmal. Approximately 65% of villages in the tribal districts have no direct all-weather road connectivity to the tourism circuit nodes (MoRD, 2022). This increases the logistical cost for tours, reducing the final net profit for local vendors and pushing business towards urban aggregators.

5.4 Institutional and Skill Weaknesses: Communities lack certified tourism skill sets—foreign language proficiency, financial literacy to price services, quality control in hygiene, and advanced waste-management protocols. The absence of robust *Community-Based Organization* (CBO) frameworks (e.g., Village Tourism Committees with legal status) makes formal contracting, profit-sharing, and conflict resolution highly precarious.

5.5 Environmental Carrying Capacity: Many tribal heritage zones overlap with tiger reserves and core forest zones (Kanha, Sundarbans, Bandhavgarh). Uncontrolled carrying capacity leads to corridor disruption and disturbance of wildlife, threatening the ecological resource base. The Forest Conservation Act (1980) imposes strict regulations, which, while necessary, often delay tourism infrastructure approvals.

6. Policy Framework and Institutional Reforms

Acknowledging these challenges, the central and state governments have introduced specific institutional interventions.

6.1 TRIFED and Artisan Linkages: The Tribal Cooperative Marketing Development Federation of India (TRIFED) has been actively linking heritage craft clusters to tourism retail channels. The *TRIBES India* retail chain now has over 200 outlets across the country, sourcing directly from tribal artisans. In 2022-23, TRIFED reported cumulative sales of ₹73 crore through these outlets, a significant portion of which is attributable to tourist purchases at railway stations, airports, and pilgrimage centers integrated with tour packages (TRIFED, 2023).

6.2 Ministry of Skill Development & Entrepreneurship (MSDE): The *Tourism & Hospitality*

Skill Council (THSC) has launched specialized modular courses for tribal youth: "Heritage Tour Guide" and "Indigenous Cuisine Cookery." Government reports indicate that over 10,000 tribal youth have been certified under this program since 2020, correlating with a documented 15% increase in median wages for certified guides in tribal circuits (THSC, 2023).

6.3 Responsible Tourism Kerala (RTK) Model Adaptations: While not strictly tribal, the RTK model of democratizing tourism planning through local self-government (Panchayats) has been adopted in the Western Ghats and modified for North-East contexts. The *Nagaland Tourism (Hornbill Festival) Act, 2022* is a landmark, providing a statutory basis for revenue sharing, copyrights over performances, and establishing the *Kisama Heritage Authority* with 50% representation from indigenous tribal councils.

7. Recommendations: Towards Community-Based Tribal Heritage Tourism

To maximize local economic retention and minimize adverse socio-cultural impacts, the following recommendations emerge from the secondary evidence base:

1. **Formalization of Community-based Organizations (CBOs):** Transition from sporadic SHGs to registered Village Tourism Cooperative Societies (VTCS) with a statutory participatory council. These VTCSs should have financial autonomy to manage local tourism funds, set homestay standards, and enforce community-wide protocols.
2. **Strict Local Procurement and Linkage Quotas:** Mandate that hospitality units operating within the Tribal Circuits source at least 60% of their perishable goods (vegetables, meats, beverages) and 40% of handicraft supplies from local producers. This can be enforced via licensing conditions and tracked through a designated e-platform.
3. **Heritage Intellectual Property (IP) Rights:** Establish *Community Intellectual Property Rights* over traditional dance forms, weaves, and motifs. This can be managed through the Geographical Indications (GI) registry, currently underutilized for tribal designs. The GI tag provides formal legal enforcement against cultural misappropriation, increasing craft values by 20–30% (GOI, 2022).
4. **Green Corridor and Carrying Capacity Protocols:** Develop dynamic carrying capacity calculators (using ICFRE models) to seasonally regulate tourist footfall in sensitive protected tribal habitats, ensuring ecological balance forms part of the economic calculus.
5. **Digital Tourism Promotion and Marketing:** State tourism boards should double marketing expenditure for tribal circuits. Co-branding with ministry initiatives (*Dekho Apna Desh* and *Incredible India*) must target international niche audiences (cultural tourists, academic expedition groups) to improve length of stay and per-diem expenditure.

8. Conclusion

This empirical analysis establishes that tribal heritage tourism constitutes a significant, albeit vastly underutilized, catalyst for local economic development in India's indigenous regions. The secondary data unequivocally supports the thesis that direct government interventions—through the Swadesh Darshan Tribal Circuits, state-led festivals like the Hornbill, and craft linkages through TRIFED—have enhanced income diversification and employment indices for Scheduled Tribe households. Notably, the economic multiplier effects, ranging from 1.2 to 2.5 in rural tribal contexts, demonstrably exceed those of many conventional agricultural livelihoods, providing a viable alternative pathway for poverty reduction.

However, the persistence of high economic leakage (circa 50-65%) fundamentally undermines the net development gains. This leakage is not inevitable but a reflection of fragmented supply chains, the absence of localized processing units, and inadequate negotiation capabilities of atomized producers. Furthermore, the looming threat of cultural commodification demands a cautious, ethically grounded approach that foregrounds *community agency* over *commercial expediency*.

The road forward necessitates a paradigmatic shift from a *government-dominant* supply-side infrastructure approach to a *community-managed* demand-responsive

strategy. This entails empowering local institutions through legislative backing, enforcing strict local procurement quotas to plug economic leakages, and integrating traditional knowledge into formal skill development curricula. As India aspires to diversify its economic base in aspirational districts, tribal heritage tourism, managed with integrity and professionalism, offers a sustainable symbiosis between cultural preservation and economic progress. Ultimately, successful tribal tourism is not merely about visitation numbers; it is about ensuring that the heritage remains alive, practiced, and economically meaningful for the very communities that created it.

173

References

- Ashley, C., Goodwin, H., & Roe, D. (2001). *Pro-Poor Tourism Strategies: Making Tourism Work for the Poor*. Overseas Development Institute (ODI) Report.
- Government of India (GOI). (2022). *Geographical Indications Registry Statistics*. Intellectual Property India.
- Institute for Human Development (IHD). (2020). *Tribal Livelihoods and Tourism Linkages in Central India: A Micro-Study of Economic Retention*. IHD, New Delhi.
- Kumar, A. (2016). "Commodification of Indigenous Festivals in Northeast India." *Journal of Heritage Tourism*, 11(3), 223-237.
- Ministry of Finance, Government of India. (2019). *Reserve Bank of India (RBI) Bulletin – Tourism Multipliers in Indian Context*. RBI Publications.
- Ministry of Rural Development (MoRD). (2022). *Pradhan Mantri Gram Sadak Yojana (PMGSY) Coverage in Aspirational Districts*. Government of India.
- Ministry of Skill Development & Entrepreneurship (MSDE). (2023). *Tourism & Hospitality Skill Council (THSC) Annual Performance Report*. MSDE.
- Ministry of Tourism (MoT), Government of India. (2016). *National Tourism Policy 2015: A Roadmap for Inclusive Growth*. MoT.
- Ministry of Tourism (MoT), Government of India. (2020). *Swadesh Darshan Scheme: Thematic Tribal Circuits Project Guidelines*. MoT.
- Ministry of Tourism (MoT), Government of India. (2022). *India Tourism Statistics at a Glance 2022*. MoT.
- Ministry of Tourism (MoT), Government of India. (2023). *Tourism Satellite Account of India (TSAI): Annual Estimates (2018-2022)*. MoT.
- Nagaland Department of Tourism. (2023). *Hornbill Festival: Economic Impact Assessment Report*. Government of Nagaland.
- National Sample Survey Office (NSSO). (2014). *Employment and Unemployment among Scheduled Tribes (68th Round)*. Ministry of Statistics and Programme Implementation.
- NITI Aayog. (2021). *Tourism and Infrastructure Development in Aspirational Districts: An Evaluation*. Government of India.
- Odisha Tourism Department. (2022). *Odisha Tourism Policy 2022: Eco-Retreats and Tribal Homestays*. Government of Odisha.
- Office of the Registrar General & Census Commissioner. (2011). *Census of India 2011: Primary Census Abstract for Scheduled Tribes*. Ministry of Home Affairs.
- TISS (Tata Institute of Social Sciences). (2018). *Socio-Economic Impact of the Hornbill Festival on Local Communities*. TISS, Guwahati Campus.
- TRIFED (Tribal Cooperative Marketing Development Federation of India). (2023). *Annual Report 2022-23: Retail and Marketing Initiatives*. Ministry of Tribal Affairs.
- United Nations World Tourism Organization (UNWTO). (2021). *Tourism and Rural Development: Global Baseline Report*. UNWTO Publications.

Dr. Tanya Sharma
Assistant Professor of Economics
J. D. Women's College
Patliputra University, Patna, Bihar.

36

Negotiating Caste and Gender: Dalit Women's Search for Dignity Beyond Hinduism

Mamta Mathur

Abstract

Inequality between men and women is a result of persistent discrimination or superimposition of one gender onto another, and this discrimination is further amplified if other factors of the social institution contribute to it. In the similar manner Dalit women face internal discrimination in their households of being a woman and futher "caste " amplifies this differentiation. According to the Hindu caste hierarchy, there are four castes: the Brahmins (priestly caste), the Kshatriya (warriors), the Vaishyas (traders) and the Shudras (menial task workers). Below this caste ladder is another rung of people who are called 'untouchables' (Panchamas). Among the untouchables, the status of women is further eroded and closely linked to the concept of purity. The creation of several Hindu religious books, including the Manusmriti, and the strict compliance to them by the Brahmins, led to a society in which equality between men and women was far from existent. (Agarwal, 1999)

Keywords- Brahminical patriarchy, Neo-Buddhism, Devadasi system, religion.

Objective-

The objective of this paper is to understand certain reasons as to why Dalit women in India started questioning the most dominant religion i.e Hinduism. While highlighting the reasons, this paper identifies the only solution to the tri fold discrimination (based on caste, class and gender) is converting to another religion. Neo-Buddhism is a religion which claimed to provide relief to the plea of Dalit women.

Life of Dalit women practicing Hinduism-

Dr.B.R.Ambedkar in "the rise and fall of Hindu women" clearly explained as to how in the times when Buddhism was preached, the status of women was equivalent to men. As Hinduism started to rise , the basic rights of women were questioned and thus slowly pushed this gender to the backseat. Ambedkar also asserted that Manu Smriti was written by a sage named Brigu during the times of Pushyamitra of Sangha in connection with the social; pressures caused by the rise of Buddhism (Dr.B.R.Ambedkar, 2013).The evidence of the above statement can be clearly seen in the Manu Smriti

IX.94 'A man, aged thirty years, shall marry a maiden of twelve who pleases him. Or a man of twenty-four a girl of eight years of age. If (the performance of) his duties would otherwise be impeded, he must marry sooner.'

V.147 'By a girl, by a young woman, or even by an aged one, nothing must be done independently, even in her own house.'

IX.3 'Her father protects (her) in childhood, her husband protects (her) in youth, and her sons protect (her) in old age; a woman is never fit for independence.'

IX.18 'Women have no right to study the Vedas. That is why their Sanskaras are performed without Veda Mantras. Women have no knowledge of religion because they have no right to know the Vedas. The uttering of the Veda Mantras is useful for removing sin. As women cannot utter the Veda Mantras, they are as unclean as the untruth.'

IX.25 'A Brahman, Kshatriya, or Vaishya Man can sexually exploit any shudra woman.'(K.Smith, 1991)

These laws were made to serve the purpose of the "savarnas" and thus affect the lower castes people especially the lower caste women. Even today, we see that the condition of Dalit women have not been improved much. They still face caste and gender-based violence and thus are easy targets for the savarna males (Kumar, 2009)Most of the Dalit women population hail from a low economic background and thus their sources of income are meager. Their source of survival is as small as fodder collecting and this is how they become most vulnerable to trafficking and prostitution. In such case of ancestral prostitution is Natpurva village , which is approximately 70km from the capital of Uttar Pradesh. In this village women sell their bodies in order to run their family and the men of the family rely on this source of income too. Mostly the male members of the family are the ones setting the deal and this is how most of the Dalit population of the village operate (Gupta, 2009).It is understood that the girls in the village will have to follow the tradition and do nothing else beyond that and hence after the girl reaches puberty, she is forced into the business whether she likes it or not. In this way she is not able to complete her basic education and falls prey to this old age custom.

Although some women have raised their voices against it but this tradition is not uprooted yet from the village.

It is not only in north India that this kind of exploitation is seen, but a similar form can also be seen in southern part of India as well, what I talk about here is a system called the "Devadasi system". Devadasi's are expected to clean the temple change the dressing of the deities and perform various duties of the temples ,she even dances and sing devotional songs. Deadlocked hair is taken as a sign from the Goddess Yellamma that the girl is meant to be a Devadasi. In a festival, a marriage ceremony takes place between the girl and god. The eldest lady of the Devadasi community ties the Mangal sutra. In some ceremonies the girl was paraded almost naked (SUNI, 2016). This somewhat changed in the medieval times when Mughals and Europeans entered India and presumed these girls as prostitutes because dancing and singing in front of rich or upper castes men is what related to them. This led to religious prostitution in India and continues till date. The Devadasis were exploited by the rich, powerful and upper class people and in the other side their economic needs were not permitted them to leave this practice and ultimately they were driven to the valley prostitution. The Devadasis are none other than the Dalit women because they belong lowest in the caste hierarchy and economically very weak.

Keeping Dalit women as prostitutes, and by tying prostitution to bondage in rural areas, upper-caste men reinforce their declaration of social and economic superiority over the lower castes. According to the Ambedkar Centre for Justice and Peace, a Canada-based NGO: Thousands of untouchable female children (between 6 and 8 years) are forced to become maidens of God (Devadasis, Jogins, a Hindu religious practice in Andhra Pradesh, Karnataka State, Maharashtra, Orissa State, to mention only a few). They are taken from their families, never to see them again. They are later raped by the temple priest and finally auctioned secretly into prostitution and ultimately die from AIDS. It is estimated by NGOs that 5,000 to 15,000 girls are auctioned secretly every year (Varhade).

Why change to other religion?

The Indian Constitution overturned the legal and moral frameworks of caste and made justice, liberty, freedom, equality and fraternity the cardinal principles for the social, economic and political governance of the country. Article 15 of the Constitution promises equal rights to all citizens irrespective of caste, religion, race, sex or place of birth. Article 17 abolished untouchability and made its practise in any form illegal. While the Constitution guarantees these fundamental rights, the Directive Principles of State Policy make it obligatory for the state to enact laws and frame policies based on the suggested principles to enable citizens to use these rights in practice. In the case of Scheduled Castes (SCs) and Scheduled Tribes (STs), Article 46 directs the state in this way: 'The State is required to protect the Scheduled Caste and Scheduled Tribes from social injustices and all forms of exploitation.' To give effect to the Constitution's provisions related to equality and freedom, the state enacted laws to secure fundamental rights for citizens. Accordingly, Parliament enacted the Untouchability (Offences) Act on 8 May 1955 (put in force on 1 June 1955) which prescribed punishments for restrictions on Untouchables in public spheres, economic, civil, cultural, religious and political. The Act was renamed in 1976 as the Protection of Civil Rights(PCR) Act, 1955. Thirty-five years later, another Act called the Scheduled Castes and Scheduled Tribes (Prevention of Atrocities) Act was enacted in 1989 (amended on 4 August 2015) to provide legal safeguards to prevent any violent opposition by high castes in Untouchables' attempts to seek equal rights which they enjoy under the Constitution. It made thirty-five behaviours by people of high castes punishable (Thorat, 2018).

Despite the laws presented by the government for the depressed class of the country. Caste discrimination still persist and women of all are the most affected. According to a report published by IDSN ;One of the many unnecessary hardships of a Dalit woman's life is being denied access to basic services, particularly maternal health services. In another study conducted by Navsarjan Trust, the findings showed that 46.5 percent of Dalit women never received the legally required antenatal and postnatal visits. Worse, 54.8 per cent of pregnant women and new mothers from the Valmiki sub-caste, who are traditionally manual scavengers, reported never receiving antenatal or postnatal care visits (Navsarjan Trust (India), 2013).

Today all over India 33% seat reservation for women in

Panchayats is an accepted fact and may be in small numbers Dalit women are also being elected there. But even there problems exist. In Sonipat ,Haryana, a Dalit woman was elected Sarpanch, but was not allowed to enter office because she belongs to low caste. In Gujarat a woman Sarpanch was not allowed to hoist the National Flag on 15 August because she was a Dalit (Chattopadhyay, 2008). In Madhya Pradesh a Dalit woman Sarpanch hoisted the National Flag and for that crime 'Civilised and Educated People' paraded her naked in the town (Thorat V. , 2001)

Religion describes the beliefs, values and practices related to sacred or spiritual concerns. It is called as a social institution because it includes beliefs and practices that serve the needs of the society. For the Dalits Hindu religion is not at all serving it needs , instead they are being brutally exploited. A religion should be one which brings mental and moral relief to a person and clearly Hinduism isn't that religion to the lower caste people (Dr.B.R.Ambedkar, The Buddha and the Future of his Religion, 2018) Ambedkar says that religion should be a sense of morality and should thus, become the governing principle in every society. Along with morality religion should consist of the fundamental principles of social life. Only one religion to Ambedkar seems to fulfill these conditions is Buddhism. He used Deweyian experimentalism5 and Buddhist rationalism, to reject Hinduism and seek refuge in the reform Buddhism i. e Navayana Buddhism or Neo-Buddhism (Kumar S. , 2019).It not only gives a religious challenge to dominant culture but as llaiah, states that Ambedkar's neo-Buddhist movement was political rather than religious. Which questions the authority and sanctity of the law of the land through the lens of humanism and rationality. As it was not a religion as such so various religious studies scholars respond to questions whether Buddhism is a religion, since it has no deity. Similarly in neo-Buddhism, Ambedkar insisted on non-theism, and rejected worship of any deity.In " Buddha and Future of His Religion" Ambedkar draws a comparison between Buddha, Jesus , Mohammed and Krishna. He claims that Buddha was "margadata"(the one who guides) and not "mokshadata"(the one who gives salvation) as the other were claiming to be, Buddha was a born a common man and remained a common man throughout (Dr.B.R.Ambedkar, Dr. Babasaheb Ambedkar "Writings and Speeches", 2019) .

Conclusion-

Ambedkar justified his choice of Buddhism in many ways . This religion was compatible with rationality and modern science, rejected supernaturalism and superstition and most of all it offered complete equality. He claimed that Christianity or Islam cannot challenge the Indian Caste system. He declared Buddhism as the most revolutionary and egalitarian (Teltumbde, 2018).

References

Agarwal, S. (1999). Genocide of Women in Hinduism. Retrieved from dalitstan: www.dalitstan.org/booksChattopadhyay, M. (2008). Dalit Women Ask For Human Rights. Proceedings of the Indian History Congress, (pp. 878-882).Dr.B.R.Ambedkar. (2013). The rise and fall of Hindu women: who was responsible for it? In S. Rege, Against the Madness of Manu (pp. 109-136). New Delhi: Navayana Publications.Dr.B.R.Ambedkar. (2018). The Buddha and the Future of his Religion. Delhi: Samyak Prakashan.Dr.B.R.Ambedkar. (2019). Dr. Babasaheb Ambedkar "Writings and Speeches". New-Delhi: Dr.Ambedkar Foundation, Ministry of Social Justice and Empowerment.Gupta, A. (2009). What is the compulsion that the brother applies his own sister's speech in the village. Lucknow , Uttar Pradesh, India: Patrika.K.Smith, W. D. (1991). The Laws of Manu. New York: Penguin Books.Kumar, S. (2019). Ambedkar's Journey of Conversion to Buddhism. Sage Publications, 1-12.Kumar, V. (2009). Locating Dalit women in the Indian Caste System, media and women's movement. Sage Publications, 64-84.Navsarjan Trust (India), F. (. (2013). The Situation of Dalit Rural Women. International Dalit Solidarity Network.SUNI, B. D. (2016). Devadasi system : Forced Prostitution by Dalit women on the name of religion. MPACT:

International Journal of Research in Humanities , Arts and Literature, 63-70.Teltumbde, A. (2018). Strategy of Conversion to Budhism. In A. T. Yengde, The Radical in Ambedkar: Critical Reflections. New-Delhi: Penguin.Thorat, S. (2018). Political Economy of Caste discrimination and Atrocities. In A. T. Yengde, The Radical in Ambedkar: Critical Reflections. Penguin .Thorat, V. (2001). Dalit Women have been left behind by the Dalit movement and the women's movement. Communalism Combat.Varhade, Y. (n.d.). International Advocay and the Role of the United Nations and Civil Society. Ambedkar Centre for Justice and Peace (Ambedkar Centre for Justice and Peace), p. 3.

Mamta Mathur,
Department of Humanities and
Social Sciences, Rohtak
Research Scholar
Contact Info: 9560902134
Email: mamta.mathur1996@gmail.com

37

Affordable Housing and the Right to Housing: An Analysis of the Indian Legal Framework

Shekhar Bhatia, Dr. Shreya

Abstract

Indian constitutional law abandoned long ago the idea that Article 21 protects nothing more than animal existence. Through a line of decisions running from *Olga Tellis* to *Chameli Singh*, shelter has been read into the right to life, and the Directive Principles have supplied a normative anchor for treating housing as an obligation of the State rather than an act of grace. That doctrinal achievement has not produced a legal entitlement that an ordinary household can invoke to obtain, retain or afford a dwelling. This paper examines the disjunction. It argues that Indian law has generated a right to shelter that is expansive in rhetorical reach but thin in remedial content, and that the thinness is compounded by a statutory landscape which regulates housing as a commodity, a planning input and a land-use question, but almost never as an entitlement. The argument proceeds through doctrinal analysis of constitutional text and judicial reasoning, examination of the statutes governing real estate regulation, land acquisition, slums and tenancy at both central and State level, and evaluation of the Pradhan Mantri Awas Yojana, before testing Indian law against Article 11 of the International Covenant on Economic, Social and Cultural Rights. Its central finding is that the failure lies less in recognition than in enforceability, and that affordability is a distinct problem which constitutional interpretation cannot reach at all. A framework statute conferring defined, justiciable entitlements is therefore necessary, though not sufficient without reform of land supply, planning regulation and rental law.

Keywords: Right to housing; Article 21; affordable housing; forced eviction; security of tenure; Pradhan Mantri Awas Yojana; socio-economic rights

1. Introduction

A person evicted from an informal settlement in Delhi and a person who cannot afford the smallest formal unit in Gurugram both lack housing, but the law responds to them differently. The first can invoke a constitutional jurisprudence developed over four decades that treats shelter as an aspect of the right to life. The second can invoke almost nothing. Indian housing law has been built around dispossession rather than around access.

The scale of the problem is not contested, though the data are dated. The urban housing shortage was estimated at 18.78 million dwelling units in 2012, some 96 per cent of it in the Economically Weaker Sections and Low Income Groups, and the Census of 2011 recorded 65.49 million persons in slums and roughly 1.77 million houseless persons. Against this stands construction at scale: over one crore urban houses completed by August 2026 and roughly three crore rural completions. Why that coexists with continuing eviction and a persistent affordability gap is the question pursued here.

Two gaps structure the enquiry. The first lies between constitutional recognition and legal entitlement: a right whose content is settled case by case, whose remedies are discretionary and whose beneficiaries must litigate for even procedural protection is not a right conferred by statute with defined content, duty-bearers and remedy. The second is distinct, because even a perfectly enforceable right to housing would not make housing affordable, affordability turning on land price, construction cost, household income, credit access and regulatory constraint on supply, none of which constitutional adjudication reaches. The argument is that the framework fails at enforceability rather than recognition, so legislation is necessary though not sufficient.

2. Conceptualising Affordable Housing and the Right to Housing

"Affordable housing" is used constantly in Indian policy and never defined by statute. Its operative meaning is administrative: scheme guidelines identify Economically Weaker Section and Low Income Group units by maximum carpet area, and eligibility by household income ceiling. These categories administer subsidy but are not definitions of affordability, because they say nothing about the relationship between the price of a unit and the income of the household occupying it. Affordability in the economic sense is a ratio, and the Committee on Economic, Social and Cultural Rights frames it relationally, requiring that housing costs not threaten the attainment of other basic needs. The consequence is legal rather than semantic: where affordability is only an administrative category, no litigant can argue that housing is legally inadequate for being unaffordable to its occupant.

General Comment No. 4 identifies seven elements of adequate housing, including legal security of tenure, affordability and location. Two map onto Indian failures.

Location, understood as access to employment and services, is the standard that peripheral resettlement fails. Security of tenure is the element the framework most conspicuously lacks, because the Committee treats protection against forced eviction as a condition of adequacy irrespective of tenure form, whereas Indian law makes protection turn almost entirely on the lawfulness of the occupation. A functioning framework must therefore deliver recognition, adequacy, affordability, accessibility, security of tenure and, above all, enforceability before a forum able to grant a remedy.

3. The Constitutional Framework

The Constitution does not mention housing as a fundamental right, the framers having placed distributive commitments in Part IV, which Article 37 makes non-justiciable while declaring it fundamental in governance. Article 38 requires a social order informed by justice, Article 39(b) and (c) that the material resources of the community be distributed to subserve the common good, land being the paradigm such resource, and Articles 41, 46 and 47 address undeserved want, weaker sections and the standard of living. Article 43, which commits the State to conditions ensuring a decent standard of life, is the closest textual approach to housing and has been almost wholly neglected in litigation. Article 243W and the Twelfth Schedule allocate urban planning, land-use regulation and slum upgradation to municipalities, placing the functions most relevant to housing with the institutions least equipped to perform them. Land and local government are State subjects, so housing is predominantly a State field in which the Union operates through money and model laws.

Shelter entered Article 21 in 1981, when *Francis Coralie Mullin* held that the right to life includes the right to live with dignity and the bare necessaries such as adequate nutrition, clothing and shelter, four years before *Olga Tellis* and in a case about conditions of detention. It entered as one item in an illustrative list rather than as a right with its own structure, and through a negative claim rather than a claim to provision. *Unni Krishnan* later derived an enforceable right to education from Article 21 read with Article 45, but the housing analogue has not succeeded, for a reason more instructive than timidity: education could be bounded by a defined cohort, service and provider, whereas a right to housing must specify who is entitled, to what standard, in what location, at whose cost and against which authority. These are allocative choices that adjudication handles badly, so judicial reluctance is a reason for legislation rather than a reason to press the courts harder.

The point is sharpened by Article 300A. In *Kolkata Municipal Corporation* v. *Bimal Kumar Shah* the Supreme Court held that the expression "authority of law" carries a minimum content of seven sub-rights, including notice, hearing, a reasoned decision and fair compensation. A property owner facing deprivation therefore has seven articulated constitutional entitlements under a provision that is not a fundamental right, while a household facing eviction from a dwelling occupied for decades without title has only what the municipal statute and rehabilitation policy happen to provide. The difficulty is not a judicial unwillingness to specify content: Article 300A refers to "law", so the Court could state what a valid law must contain, whereas Article 21 in the housing context refers to nothing.

4. The Judicial Evolution of the Right to Housing

4.1 *Olga Tellis* and the conditional structure of relief

Pavement dwellers in Bombay challenged their eviction under the Bombay Municipal Corporation Act, 1888, arguing that removal from pavements near their places of work would destroy their livelihood and so engage Article 21. The Court accepted the premise and largely refused the relief, holding that the right to life includes the right to livelihood since no person can live without the means of living, that eviction affecting it requires a fair procedure, and recording the State's undertakings on alternative pitches for censused dwellers. Running through the reasoning is the observation that the dwellers had no legal right to occupy the pavement, and that eviction was justified because pavements are meant for passage.

The decision did not establish a right to rehabilitation before eviction, as it is routinely cited for doing. It established that livelihood falls within Article 21, that eviction affecting it requires notice and hearing, and that where the State has itself undertaken to provide alternative accommodation the Court will hold it to that undertaking. The last element is the origin of the conditional structure that recent scholarship identifies as the defining feature of the Indian right to shelter: the right operates upon a commitment the executive has already made, and where none exists it has nothing to fasten on.

4.2 Content without obligation

Shantistar Builders held that the right to life includes a reasonable accommodation, and *Chameli Singh*, the fullest statement of content, that the right to shelter includes adequate living space, safe structure, clean surroundings, light, air, water, sanitation and civic amenities. That content was articulated while upholding an acquisition of land for housing for Scheduled Castes, so the beneficiary of the expansion was the State, as in the other leading authorities of the period. In none was a private litigant awarded housing. The right to shelter has functioned principally as a justification for State power and only marginally as a constraint upon it, which explains why the jurisprudence is at once so quotable and so ineffective.

4.3 Slums as encroachment: the competing line

Against this stands a body of decisions treating informal settlement as encroachment. In *Almitra H. Patel* the Court equated the provision of alternative sites to slum dwellers with rewarding encroachment, and in *M.C. Mehta* an order of 31 August 2020 directed removal of some 48,000 jhuggis along Delhi's railway lines, without directions on rehabilitation. The difference between the lines correlates less with the strength of the housing claim than with the framing of the litigation: in an environmental framing the settlement is a source of harm and the resident a wrongdoer, while in a rights framing the same resident bears Article 21 interests. Neither line has been overruled, so both remain available to the same Court, enlarging administrative discretion rather than constraining it.

4.4 The High Courts, and demolition as punishment

In *Sudama Singh* the Delhi High Court held demolition without notice and without a survey of eligibility for relocation to be illegal, insisted that relocation be meaningful in terms of proximity to livelihood, and rejected the characterisation of jhuggi residents as encroachers. *Ajay Maken* articulated a right to the city and treated rehabilitation as an obligation flowing from the State's policy commitments. Both nonetheless enforce requirements that policy already supplies, so neither creates an entitlement independent of it. The urban homeless line, in which the Supreme Court has monitored shelters for over a decade, shows the same pattern: a scheme and sustained attention, but no right a homeless person could invoke.

The judgment of 13 November 2024 in *In Re: Directions in the Matter of Demolition of Structures* held that the executive cannot demolish the property of a person merely because he is accused or convicted, and issued directions requiring show-cause notice, reasoned orders and personal accountability. Its significance is easily overstated: the ratio concerns the limits of executive punishment rather than housing entitlement, and the Court carved out unauthorised structures on roads, footpaths, railway lines and water bodies, which is where the most vulnerable households live.

The trajectory shows expansion of stated content and negligible expansion of enforceable content. The legality of the occupation is characterised before the constitutional analysis begins and usually decides the case, rehabilitation is available where policy provides it and not otherwise, and what courts reliably deliver is notice, hearing and consultation, which are Article 14 values.

5. The Statutory and Regulatory Framework

5.1 Central legislation

The Real Estate (Regulation and Development) Act, 2016 requires registration of projects, disclosure of particulars and deposit of a proportion of buyer receipts in a project-specific account. It improves the position of the home buyer, but creates no supply, regulates no price and imposes no obligation to build for weaker sections. It is also structurally inapplicable to most Indian households, since a person renting a room in an unauthorised colony has no promoter and no agreement for sale.

The Right to Fair Compensation and Transparency in Land Acquisition, Rehabilitation and Resettlement Act, 2013 made rehabilitation a statutory component of acquisition, with entitlements including a constructed house of specified minimum plinth area. It is the closest thing in Indian law to a statutory housing entitlement, and its limit is instructive: it is triggered by acquisition, so a household removed from land already vested in a railway or development authority falls outside it. Indian law is capable of conferring a statutory right to a house against a defined duty-bearer, while confining that capability to displacement.

5.2 Slum, tenure and tenancy legislation

Slum law is State law and largely of one type, structured around declaration, clearance orders and regulation of eviction, and in Delhi the definition of a jhuggi as a structure not duly authorised has been used to place its residents outside protections available to others. This is

clearance legislation rather than tenure legislation, and nothing in it converts long occupation into a legal interest. The exception is the Odisha Land Rights to Slum Dwellers Act, 2017, which grants heritable certificates of land right over the land occupied, demonstrating the feasibility of tenure legislation within existing State competence.

Rent control legislation depressed rental yields and pushed transactions into informal arrangements outside any protective framework, and the Model Tenancy Act, 2021 has been adopted by few States because tenancy is a State subject. Census 2011 recorded over one crore vacant urban houses alongside a shortage of comparable magnitude, which points to a failure in letting rather than a deficit of stock.

5.3 State legislation and delegated regulation

Most of the law determining whether affordable housing is built is State law, operating through four techniques. The first is institutional: housing board and development authority statutes empower bodies to acquire, plan, build and allot, conferring powers on the State rather than rights on the housing-needy, so a person on a waiting list has no enforceable claim. The second captures land value at the point of development, as where Gujarat requires a town planning scheme to reserve ten per cent of its area for housing for socially and economically backward classes, and Maharashtra requires layouts of 4,000 square metres or more to set aside twenty per cent of the net plot area for inclusive housing.

The third regulates the product: Haryana's Affordable Housing Policy of 2013 fixes carpet areas between 28 and 60 square metres and caps allotment rates by town, while expressly declining to provide a separate Economically Weaker Section category on the stated ground of eliminating any cross-subsidy component. The fourth funds rehabilitation from the free-sale market, Maharashtra's slum rehabilitation scheme conferring on an eligible protected occupier a free tenement of 27.88 square metres carpet area financed by incentive floor space index and transferable development rights. It is the most substantial entitlement any Indian jurisdiction confers on informal settlers, yet eligibility turns on documented occupation by a cut-off date and delivery on the viability of the free-sale component.

Three features bear on the argument. The obligation runs with the land rather than against the State; almost all of it sits in delegated regulation amendable by notification, generating no vested right; and the beneficiary has no standing to enforce it, the counterparty being the licensing authority.

6. Government Policy and the Limits of Scheme-Based Provision

The requirement under the national housing mission that units be allotted in the name of women converts a scheme benefit into a property interest held by a woman, and read with the statutory right to reside in the shared household irrespective of proprietary interest it is one of the few areas where Indian law has strengthened intra-household housing security.

The structural critique is not answered by output figures. Beneficiary-led construction, the dominant vertical, presupposes that the beneficiary holds land, and is unavailable to the urban household that has none, which is the defining characteristic of the population in greatest need, while interest subsidy presupposes creditworthiness that informal-sector workers cannot document. Underlying this is the legal point: none of these schemes creates a right. Guidelines confer eligibility, not entitlement, so a person who satisfies every criterion and is not sanctioned a house has no cause of action. What can be obtained is review of the eligibility determination on administrative law grounds, the conditional structure identified earlier: the scheme supplies the standard and Article 14 the review, an arrangement withdrawable by the instrument that created it.

7. Forced Eviction and Rehabilitation

Eviction proceeds under several regimes, and the applicable regime rather than the situation of the household determines the protection available: municipal or public premises legislation for encroachment on public land, building provisions for unauthorised construction, slum legislation for a declared slum, and the 2013 Act only where land is acquired. A family displaced by acquisition therefore has statutory rehabilitation entitlements while a family removed from land already vested in a public authority for the same project has none, a distinction resting on the legal history of the land and bearing no relation to the harm suffered.

No substantive rule accompanies the procedural gains: there is no rule that eviction rendering a household homeless is unlawful, none that rehabilitation must precede eviction, and none that alternative

accommodation must lie near the household's livelihood. The objection to the balancing courts perform is to its structure: the public interest is a general good of high value while the housing interest is a private claim weakened by the illegality of the occupation, so the scales are calibrated before the weighing begins. The incidence is uneven within affected communities too, since entitlement follows the tenure record and so disadvantages women, while migrants are excluded by cut-off dates conditioning eligibility on documented residence by a specified date. Cut-off dates are the most effective exclusionary device in Indian rehabilitation policy, and they operate without legislative sanction or judicial scrutiny.

8. Affordability as a Distinct Legal Problem

Suppose Parliament enacted a statute declaring a justiciable right to adequate housing. The price of a dwelling is determined by the price of land, the cost of construction and finance, and the regulatory cost of compliance, and a declaratory statute operates on none of these. It creates a claim against the State, satisfied either by supplying housing, which converts affordability into a fiscal question, or by regulating the market, which raises the cost of unregulated units. Recognition redistributes the burden of unaffordability rather than dissolving it.

Land is the dominant component of urban housing cost, and its price reflects artificial constraint as much as scarcity: floor space index limits suppress the built area obtainable from a parcel, substantial urban land is held by public agencies, and presumptive titles raise transaction costs that are capitalised into price. The instruments capable of addressing this are of a different character from housing-rights legislation, being title certification, land pooling, transferable development rights and conditional disposal of public land.

Regulation is the mechanism through which law directly causes unaffordability. Where the minimum legally constructible dwelling costs more than low-income households can pay, those households do not leave the housing market but enter its informal segment. Regulation that sets the legal floor above the affordability ceiling does not raise standards for the poor: it removes them from the protection of the legal framework and then supplies the characterisation, unauthorised or encroacher, that justifies their eviction. Meanwhile rental, the form best matched to the mobility informal labour demands, receives the least support.

9. India and the International Framework

Article 25 of the Universal Declaration and Article 11(1) of the International Covenant on Economic, Social and Cultural Rights recognise adequate housing as a component of an adequate standard of living, and India acceded to the Covenant in 1979. General Comment No. 7 requires genuine consultation, adequate notice, legal remedies and, critically, that evictions must not render individuals homeless. The Basic Principles and Guidelines on Development-Based Evictions elaborate these obligations, and Sustainable Development Goal 11.1 commits States to ensure access to adequate, safe and affordable housing by 2030.

Three divergences follow. On adequacy, the Indian articulation of shelter omits affordability, treats location as a consideration rather than a component, and omits security of tenure. On eviction, the requirement that people not be rendered homeless finds no Indian equivalent, since whether an evicted household is rendered homeless is legally irrelevant to the validity of the eviction. On progressive realisation, the Committee treats retrogressive measures as presumptively impermissible, whereas Indian law has no such principle, so policies may be narrowed, cut-off dates advanced and schemes discontinued without constraint.

India is dualist, but the Supreme Court has long treated international instruments as interpretive resources where domestic law is silent. More significant for reform, and generally overlooked, is Article 253, which permits Parliament to legislate to implement a treaty obligation without regard to the distribution of legislative powers. The standard objection to central housing legislation is that land and local government are State subjects, but the Covenant is such a treaty, so competence is not the obstacle it is assumed to be.

10. The Structural Sources of Failure

Why does a legal system that has recognised shelter as an aspect of the right to life for more than four decades deliver so little to those who lack it? Four explanations emerge, connected rather than merely cumulative.

The first concerns the reach of Article 21, which generates procedural protection but not entitlement. The comparison is with the socio-economic rights India has legislated: education became operational not when it was read into Article 21 but when it was given statutory form

with defined obligations, authorities and standards, and employment guarantee, food security and forest rights follow the same pattern. Housing is the commitment that has not been so converted.

The absence of such an instrument is itself a product of dispersal. Housing law is spread across land acquisition, tenure, planning, municipal, slum, tenancy and building regulation, none of which takes housing adequacy as its organising purpose. Dispersal generates the arbitrary distinctions traced above, disperses accountability so that no authority answers for housing outcomes in a city, and permits open conflict between planning norms that make low-cost construction unlawful and policy that sets out to promote it. It is compounded by the constitutional placement of these functions with municipalities whose revenues are low and whose commissioners answer to the State rather than the elected council, so that a statute binding urban local bodies would bind institutions that cannot discharge the obligation, while one binding States would detach it from the level of government that controls land use.

The fourth explanation gathers up the rest. Most of the relevant "law" is not law. Scheme guidelines, master plan provisions, licensing conditions and circulars carry no independent obligation, and their non-implementation has no legal consequence. What is described as an implementation gap is therefore largely a gap between policy and practice, so the remedy is not better enforcement but conversion of those instruments into a form capable of being enforced.

11. Conclusion and Suggestions

11.1 Conclusion

Constitutional recognition does not suffice, but not for the reason usually given. The standard account holds that the courts have not gone far enough; the account offered here is that they have gone as far as adjudication can go, and that what they have produced, procedural protection conditional on executive policy and uneven across framings, is the characteristic product of judicial development of a socio-economic interest without a statutory instrument.

Two distinct failures are involved, and the assumption that they are one problem with one solution is mistaken. The first is a failure of enforceability, which has a legal remedy: statutory conferral of defined entitlements with identified duty-bearers, a specified standard and an accessible forum. The second is a failure of affordability, produced by land price, the regulatory cost of lawful construction, credit inaccessibility and the orientation of subsidy toward ownership. Legislation can address the second, but through planning reform, land supply, rental subsidy and tenure security rather than through declaration.

The two are nonetheless connected, and the connection is the finding on which this paper insists. Law does not merely fail to make housing affordable. Through planning and building regulation it makes the cheapest lawful dwelling more expensive than low-income households can pay, and then, through slum and municipal law, treats the housing those households actually occupy as unlawful and removable. The illegality that justifies eviction is in substantial part manufactured by the same legal system that relies upon it. Until that circuit is broken, statutory recognition will produce declarations the State cannot satisfy.

11.2 Suggestions

1. A framework statute. Central legislation should define adequate housing in terms corresponding to General Comment No. 4, impose a duty of progressive realisation, require published State and city housing plans with time-bound targets, and establish district-level grievance redressal, resting on Article 21 read with Part IV and, for land and local government, on Article 253.

2. Statutory protection against eviction. A single enactment should apply to all evictions from residential occupation irrespective of tenure status, providing for enumeration, notice with reasons, consultation on alternatives, and a presumption against eviction that would render a household homeless, rebuttable only on demonstrated necessity for a purpose achievable by no less restrictive means.

3. Tenure legislation. States should confer heritable certificates of residential right on households in enumerated settlements on public land, on the Odisha model, with in-situ conferral as the norm. This converts an unprotected interest into one the constitutional framework already knows how to protect, although restricted transferability caps the value conferred.

4. Reorienting subsidy. A larger share of assistance should go to rental housing, including operating subsidy for units let subject to rent ceilings and minimum tenure

guarantees, and to a vertical for landless urban households combining public land allocation with construction assistance.

5. Planning reform as affordability reform. State planning legislation should require reservation for weaker-section housing in large developments with on-site delivery as the norm, and revise minimum dwelling and plot sizes so that small units can lawfully be built. Such requirements are frequently evaded through payment in lieu or peripheral substitution, so enforcement capacity determines whether they work.

6. Institutions and safeguards. Each State should constitute a statutory housing authority to prepare and monitor the State housing plan and report annually to the legislature. Entitlements should be recorded in the name of the adult women of the household by default, rehabilitation entitlement should follow occupation rather than documentary residence proof, and provision for the urban homeless should be placed on a statutory footing.

1. Report of the Technical Group on Urban Housing Shortage (TG-12), Ministry of Housing and Urban Poverty Alleviation (2012); PRS Legislative Research, *The Model Tenancy Act, 2021* (Legislative Brief).

2. National Buildings Organisation, *Slums in India: A Statistical Compendium 2015* 3 (Government of India, New Delhi, 2015).

3. Office of the Registrar General and Census Commissioner, *Census of India 2011*, House listing and Housing Census Data.

4. Press Information Bureau, Ministry of Housing & Urban Affairs, Government of India, *Pradhan Mantri Awas Yojana – Urban Milestone: 1.25 Crore Houses Sanctioned, 1 Crore Houses Delivered* (Aug. 9, 2026), https://www.pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=2296797&reg=48&lang=1 (last visited Sept. 4, 2026).

5.Ministry of Rural Development, Government of India, *PMAY-G Dashboard*, https:// pmayg.nic.in/ netiay/ Dashboard/ PIPhase2.aspx (last visited Mar. 2026); Press Information Bureau, Ministry of Rural Development, Government of India, *Cabinet Approves Implementation of the Pradhan Mantri Awaas Yojana – Gramin (PMAY-G) during FY 2024-25 to 2028-29* (Aug. 9, 2024), https://www.pib.gov.in/PressReleaseIframePage.aspx?PRID=2043921&reg=3&lang=2 (last visited Sept. 4, 2026)..

6. Ministry of Housing and Urban Affairs, Government of India, *Pradhan Mantri Awas Yojana – Urban 2.0: Operational Guidelines* (Sept. 2024), https://pmay-urban.gov.in/uploads/guidelines/Operational-Guidelines-of-PMAY-U-2.pdf (last visited Sept. 4, 2026).

7. U.N. Committee on Economic, Social and Cultural Rights, *General Comment No. 4: The Right to Adequate Housing (Art. 11(1) of the Covenant)*, U.N. Doc. E/1992/23 (1991), para. 8(c), available at https:// www.refworld. org/legal/general/cescr/1991/53157 (last visited Sept. 4, 2026).

8.Id., para. 8.

9. *Francis Coralie Mullin* v. *Administrator, Union Territory of Delhi*, (1981) 1 SCC 608. See also *Maneka Gandhi* v. *Union of India*, (1978) 1 SCC 248.

10. *Unni Krishnan, J.P.* v. *State of A.P.*, (1993) 1 SCC 645. On the harmonisation of Parts III and IV see *Kesavananda Bharati* v. *State of Kerala*, (1973) 4 SCC 225 and *Minerva Mills Ltd.* v. *Union of India*, (1980) 3 SCC 625.

11. *Kolkata Municipal Corporation* v. *Bimal Kumar Shah*, 2024 INSC 435.

12. *Olga Tellis* v. *Bombay Municipal Corporation*, AIR 1986 SC 180.

13. Francesco Lucherini, "A Right to Have Housing Rights? Reappraising the Constitutional Gravity of Shelter Claims in India" 20(3) *Asian Journal of Comparative Law* (2025).

14. *Shantistar Builders* v. *Narayan Khimalal Totame*, (1990) 1 SCC 520.

15. *Chameli Singh* v. *State of U.P.*, (1996) 2 SCC 549.

16. *State of Karnataka* v. *Narasimhamurthy*, (1995) 5 SCC 524; *U.P. Avas Evam Vikas Parishad* v. *Friends Coop. Housing Society Ltd.*, AIR 1996 SC 114; *P.G. Gupta* v. *State of Gujarat*, 1995 Supp (2) SCC 182; *Ahmedabad Municipal Corporation* v. *Nawab Khan Gulab Khan*, (1997) 11 SCC 121.

17. *Almitra H. Patel* v. *Union of India*, (2000) 2 SCC 679.

18. M.C. Mehta v. *Union of India*, order dated 31 August 2020 in Writ Petition (Civil) No. 13029 of 1985.

19. Gautam Bhan, *In the Public's Interest: Evictions, Citizenship and Inequality in Contemporary Delhi* (Orient BlackSwan, New Delhi, 2016).

20.Sudama Singh v. *Government of Delhi*, 2010 SCC OnLine Del 522.

21. *Ajay Maken* v. *Union of India*, 2019 SCC OnLine Del 7618.

22. *Khushnuma Khan v. Union of India*, 2026:DHC:4145

(Del HC, 11 May 2026, Kaurav J.), applying s. 10(1) of the Delhi Urban Shelter Improvement Board Act, 2010, to the rehabilitation of jhuggi jhopri basti residents at Savda Ghevra. The matter is now pending before a Division Bench, which passed interim directions in June 2026 and has since directed the residents to vacate within six weeks.

23. *People's Union for Civil Liberties* (Night Shelter Matters) v. *Union of India*, (2012) 11 SCC 422, and the continuing proceedings in *E.R. Kumar* v. *Union of India*.

24. *In Re: Directions in the Matter of Demolition of Structures*, 2024 INSC 866 (decided 13 November 2024).

25. Order of the Supreme Court dated 16 July 2026 remitting contempt petitions alleging non-compliance to the jurisdictional High Courts.

26. The Real Estate (Regulation and Development) Act, 2016 (Act 16 of 2016), ss. 3, 4, 11, 13, 18, 31, 43.

27. The Right to Fair Compensation and Transparency in Land Acquisition, Rehabilitation and Resettlement Act, 2013 (Act 30 of 2013), ss. 4-9, 31 and the Second Schedule.

28.The Slum Areas (Improvement and Clearance) Act, 1956 (Act 96 of 1956); the Maharashtra Slum Areas (Improvement, Clearance and Redevelopment) Act, 1971; the Delhi Urban Shelter Improvement Board Act, 2010, s. 2(f).

29. The Odisha Land Rights to Slum Dwellers Act, 2017 (Odisha Act 10 of 2017); Centre for Policy Research, *Land Rights for Urban Slum Dwellers: The Odisha Land Rights to Slum Dwellers Act, 2017 and the Jaga Mission* (Working Paper).

30. The Model Tenancy Act, 2021, approved by the Union Cabinet on 2 June 2021 for circulation to States; PRS Legislative Research, *supra* note 1.

31.*Census of India 2011*, *supra* note 3 (vacant census houses, urban).

32. The Maharashtra Housing and Area Development Act, 1976; the Uttar Pradesh Avas Evam Vikas Parishad Adhiniyam, 1965; the Tamil Nadu Housing Board Act, 1961; the Karnataka Housing Board Act, 1962; the Delhi Development Act, 1957.

33.The Gujarat Town Planning and Urban Development Act, 1976, s. 40(3)(j).

34. Government of Maharashtra, Urban Development Department, notification dated 8 November 2013 under s. 37(1AA) of the Maharashtra Regional and Town Planning Act, 1966, and the Unified Development Control and Promotion Regulations for Maharashtra.

35. Government of Haryana, Affordable Housing Policy, 2013, notified on 19 August 2013 under s. 9A of the Haryana Development and Regulation of Urban Areas Act, 1975. The maximum allotment rates were Rs. 4,000 per square foot of carpet area for Gurgaon, Faridabad, Panchkula and Pinjore-Kalka, Rs. 3,600 for other high and medium potential towns and Rs. 3,000 for low potential towns.

36. The Maharashtra Slum Areas Act, 1971, s. 3A, read with Regulation 33(10) of the Development Control and Promotion Regulations for Greater Mumbai, 2034.

37. The Protection of Women from Domestic Violence Act, 2005, ss. 17 and 19; *Satish Chander Ahuja* v. *Sneha Ahuja*, (2021) 1 SCC 414.

38. Committee on Economic, Social and Cultural Rights, General Comment No. 7: Forced Evictions, UN Doc. E/1998/22 (1997), paras. 3, 15 and 16.

39. Basic Principles and Guidelines on Development-Based Evictions and Displacement, Annex I to UN Doc. A/HRC/4/18 (2007).

40. United Nations General Assembly, *Transforming Our World: The 2030 Agenda for Sustainable Development*, UN Doc. A/RES/70/1 (2015), Target 11.1.

41. *Vishaka* v. *State of Rajasthan*, (1997) 6 SCC 241.

Shekhar Bhatia
Research Scholar,
School of Law, Sushant University,
Gurugram.
Email Id.:- shekharbhatia.advocate@gmail.com

Dr. Shreya Assistant
Professor,
School of Law, Sushant University,
Gurugram.
Email Id.:- shreyasuhag08@gmail.com

38

REAL ESTATE DISPUTE RESOLUTION: A STUDY OF REMEDIES AVAILABLE UNDER REAL ESTATE REGULATION ACT AND CONSUMER PROTECTION ACT.

Dr. Santosh Kumar Sharma

ABSTRACT

Over the past two decades, India's real estate sector has grown significantly, emerging as the third-largest contributor to the economy and a vital employer. With the rising demand for housing, builder-buyer disputes and delays in approvals, sanctioned plans, and project delivery have escalated. Historically, home buyers relied on developers' discretion for property possession, often facing delays and contractual breaches. However, judicial intervention, consumer redressal forums, and legislative measures, including the Consumer Protection Act and the Real Estate (Regulation and Development) Act, 2016 (RERA), have strengthened consumer rights.

RERA complements the Consumer Protection Act by ensuring transparency and accountability between developers and homebuyers. It addresses issues like delays in possession, changes to project plans, and contractual breaches, empowering consumers to seek redress. The rise of social media and access to information has further fuel led consumer activism, enabling homebuyers to assert their rights effectively. This paper examines the remedies available under RERA and the Consumer Protection Act, analyzing their role in resolving real estate disputes and fostering accountability in the sector. By safeguarding consumer interests and promoting transparency, these mechanisms aim to transform India's real estate landscape.

Keywords: Home- buyers, Consumer, Real Estate Developer, Real Estate Property

INTRODUCTION

Over the past two decades, India's real estate sector has experienced significant growth and expansion. As the fastest-growing economy, India is positioned at the forefront of becoming the third-largest economy globally. The standard of living has consistently enhanced, as evidenced by the rise in per capita income. The populace has access to fundamental utilities like housing, education, healthcare, and food security, and persistently endeavors to attain an aspirational lifestyle. India's real estate industry encompasses four sub-sectors of the country's expanding economy: the housing sector, the commercial sector, the retail sector, and the hotel sector. Among the sub-sectors, housing continues to be an important sector, and the demand for housing is growing daily. India's real estate sector has produced approximately 40 million workforces, which makes the country the third largest employment generator after manufacturing and agriculture. Real estate is a key and vital component of the construction industry in India.

Real estate disputes, particularly builder-buyer conflicts, result in cascade impacts due to delays in obtaining approvals and non-compliance with sanctioned designs and layouts. There was a time when homebuyers had to rely on developers' whims and fancy to get their flats, but the judiciary played a crucial role, laws were enacted to protect consumers, and social media raised awareness, so now homebuyers can go to consumer redress forums to get their rights protected. Furthermore, access to material information and online networking gave a real-time hands-on knowledge of the rights available to homebuyers and encouraged them by adding a sense of vigor to consumer activism. The failure of timely possession of flats by the Developers, failure to deliver as per the developer-home buyer contract, and change of designs, maps and layout plans of the projects gave rise to consumer activism. Homebuyers who were in a bind sought assistance from defaulting developers through a consumer redressal forum before the "Real Estate Regulation and Development Act of 2016", which was passed that year.

utilized per the Insolvency and Bankruptcy Code, 2016, which states that the purchasers of homes are regarded to be creditors.

LITERATURE REVIEW

In *Real Estate Laws in India*,1 N. N. Rathi emphasizes the transformative role of the Real Estate (Regulation and Development) Act (RERA) in standardizing the Indian real estate sector, which was previously marked by inefficiencies and lack of transparency. Rathi highlights how RERA has introduced mandatory project registration, ensuring developers adhere to clear timelines, financial disclosures, and quality standards, thereby protecting consumers from

fraud. A key feature of RERA is its provision for faster dispute resolution, through time-bound processes and penalties for non-compliance, significantly reducing delays in resolving grievances related to possession and construction defects. This legal framework has not only restored consumer confidence but also enforced greater accountability among developers, fostering a more transparent and consumer-friendly real estate market.

The implementation of RERA, according to *K. P. Tripathi*,2 has introduced a shift towards transparency and accountability, significantly improving consumer protection in the real estate sector. The review also highlights how the Consumer Protection Act extends its applicability to real estate buyers, ensuring faster dispute resolution through the Consumer Forum.

[1] N. N. Rathi, *Real Estate Laws in India*, New Delhi, LexisNexis, 2022.

[2] K. P. Tripathi, *RERA and its Impact on Real Estate Disputes*, Journal of Property Law, 2021.

[3] S. Sharma, *Consumer Protection in Indian Real Estate*, Legal Solutions Journal, 2024

[4] R. S. Verma, *Real Estate and the Consumer Forum: Redressal of Disputes*, Indian Journal of Law, 2020.

relief. Verma further emphasizes that the NCDRC's decisions in landmark cases have shaped the legal framework for consumer protection in real estate, influencing subsequent rulings and contributing to a growing sense of accountability within the sector.

In *Role of RERA and Consumer Protection Act in Real Estate Disputes*,5 P. Agarwal and S. Singh explore how consumer protection measures under the Consumer Protection Act, 2019, complement the provisions of the Real Estate (Regulation and Development) Act (RERA) to expedite the resolution of consumer grievances. They analyze how both legal frameworks work in tandem to ensure faster dispute resolution and provide more effective remedies for real estate consumers. Agarwal and Singh highlight that while RERA addresses issues related to project registration, builder accountability, and timeline enforcement, the Consumer Protection Act strengthens these measures by offering an accessible platform for grievances related to fraud, misrepresentation, and delays. Their analysis reveals that together, RERA and the Consumer Protection Act create a robust mechanism for consumer rights protection, providing consumers with multiple avenues for redress and encouraging greater compliance from developers.

*M. Gupta and A. Shah*6 in their paper *Impact of RERA on Real Estate Disputes* analyze case studies of disputes resolved under RERA's jurisdiction, noting a marked reduction in the delay of resolving disputes related to possession and project registration. They conclude that RERA has become a pivotal mechanism for consumer protection. This literature examines empirical studies assessing the effectiveness of the Real Estate (Regulation and Development) Act (RERA) in resolving disputes in the Indian real estate sector.

*P. K. Kumar*7 points out how the establishment of Real Estate Regulatory Authorities (RERAs) has provided a much-needed infrastructure for dispute resolution outside the traditional court system.*R. Malhotra*9 further emphasizes the interplay between civil and consumer law in the enforcement of remedies, especially in disputes involving possession delays and payment defaults.

Authors like *S. R. Jain*10 in *Challenges in Real Estate Dispute Resolution* highlight delays, legal loopholes, and the lack of adequate infrastructure as major barriers. This review discusses the challenges faced by consumers and developers in utilizing the available remedies under RERA and the Consumer Protection Act.

*L. V. Prasad*11 notes the limitations in the implementation of RERA, particularly in states where regulatory authorities are still in their nascent stages. The review also points to consumer apathy in engaging with formal dispute resolution mechanisms due to the perceived complexity and costs involved in the process.

REAL ESTATE (REGULATION AND DEVELOPMENT) ACT 2025- AN OVERVIEW

To provide relief to allottees and home buyers from the malpractices committed by builders during the

building and delivery of the project, the "Real Estate (Regulation and Development) Act 2016" has been adopted to provide relief. Specifically, it demands that real estate transactions be conducted in an open and accountable manner. Among the provisions of the Act is a provision that allows for the establishment of an Appellate Tribunal and a Real Estate Authority for each state, or for two or more states together, to resolve any complaints that may be lodged by property buyers.

The promoter is not allowed to accept more than 10 per cent of the entire value of a real estate project before entering into a sales agreement with the home buyer12. Also, the promoter needs to file a declaration along with the affidavit which must be signed by himself or an authorized person. This declaration must state that the promoter will keep a separate bank account, which is referred to as the escrow account, in a scheduled bank. Seventy per cent of the funds for the proposed project are to be deposited in the account.13 The deposited funds must encompass both the building expenses and the land acquisition costs. Only on certification by an engineer,

[9] R. Malhotra, *Enforcement of Real Estate Remedies: A Critical Analysis*, Journal of Civil Law, 2021.

[10] S. R. Jain, *Challenges in Real Estate Dispute Resolution*, Real Estate Law Journal, 2022.

[11] L. V. Prasad, *Limitations in the Implementation of RERA*, Indian Real Estate Law Review, 2023

[12] Section 13, "Real Estate (Regulation and Development) Act", 2016

[13] Section 4, "Real Estate (Regulation and Development) Act", 2016

an architect, and a practicing chartered accountant, confirming that the withdrawal corresponds to the project's percentage of completion withdrawals can be made from the separate account by the promoter. If the allottee reports any structural defect or other deficiency in workmanship, quality, or service obligations of the promoter, as mentioned in the agreement within 5 years from the date of possession, the promoter is obligated to remove that discrepancy or defect within 30 days of reporting. For this purpose, no additional cost will be charged by the promoter from the allottee. If the promoter is unable to correct such flaws within the specified time frame, the allottees who have been disappointed are entitled to obtain adequate compensation.14 Under the Act, all Real Estate Projects must be registered with the "Real Estate Regulatory Authority".15 In the absence of the Project's registration, the promoter is not permitted to book, sell, or invite any individual to acquire the project. The application under the Section must be submitted to the Real Estate Regulatory Authority along with the following:

- A brief project details,
- Authority approvals,
- Commencement certificates provided by competent authorities,
- Development and layout plans,
- Location details such as carpet area of apartment,
- Allotment letter,
- Agreement for sale,
- Conveyance deed,
- Contact details of concerned persons such as real estate agents, architects, structural engineers,
- pro forma of the allotment letter,
- agreement for sale, and
- A declaration along with the affidavit.

Remedies under Real Estate Regulation and Development Act, 2016

On behalf of any promoter allottee or real estate agent, a complaint can be submitted to the "Real Estate Regulatory Authority" if any breach or infraction of the provisions of the Act or the rules and regulations enacted under can be brought against them.16 Every complaint that is received by the Authority is to be addressed as quickly as feasible, and the Authority is to

dispose of the complaint within sixty days beginning on the date that the application was received.17 Within sixty days of receiving a copy of the direction or order, the appellate tribunal can hear appeals against the decision that was made by the authority

examined.18 Any appeal from the Appellate tribunal must be filed with the High Court within sixty days of the decision being made. The High Court is the court that hears appealing decisions.

CONSUMER PROTECTION ACT, 2019 (CPA)-AN OVERVIEW

The Consumer Protection Act was passed into law to fulfil the purpose of providing a straightforward and expedient resolution to consumer complaints regarding any deficiencies in service or faults in goods. Complaints can only be submitted by customers by this Act. Within two years from the date on which the cause of action arose, the consumer can register a complaint with the consumer forum if the product or services in question are defective or lacking in some way.19 The consumer forums have a pecuniary jurisdiction, and the complaint is resolved within three months from the date that the complainant received the notice from the consumer forums20 The Act gives the forums the authority to award punitive damages and compensation for losses that have been sustained in instances that are deemed suitable.

Seeking remedy under Consumer Protection and RERA

If a statute provides more than one judicial forum to enforce a duty obligation or put a right into effect, then this is an example of the remedial possibilities that the state gives to ensure that individuals have effective access to justice. In the process of interpreting legislation that provides a variety of remedies, it is the responsibility of the court to harmonizes the provisions constructively. This is a requirement for the courts. Before the passage of the Real Estate (Regulation and Development) Act, 2016, the Consumer Forum was responsible for addressing issues that were associated with allottees.

Whether Real Estate Regulation Act reduce the scope of the Consumer Protection Act?

The Real Estate Regulatory Act was enacted to regulate real estate transactions that took place before the year 2016, as these transactions were typically favorable to developers. Because of this, homebuyers were frequently taken advantage of; there were instances of one-sided agreements and misuse of dominant position, and numerous complaints were brought before the Competition Commission of India for the same reason. Therefore, a law needed to be enacted to improve accountability and transparency, as well as to lessen the likelihood of builders defaulting on their obligations or engaging in fraudulent activity. Similarly, the Consumer Protection Act offers relief; however, it does not offer consumers any time-bound or inexpensive remedy, and it was deliberately limited to the real estate sector. Moreover, it does not provide any relief at all.

The notion of election is inapplicable where available remedies are cumulative, consistent and concurrent. Subsequently, by examining the inconsistencies of remedies court has determined if it merely seeks further relief or suggests the selection of one which does not constitute a deliberate abandonment of others then it is deemed inconsistent. In *M/S Emar MGF Land Ltd.*

COMPARATIVE STUDY OF THE REAL ESTATE REGULATION ACT AND CONSUMER PROTECTION ACT

Before the implementation of the Real Estate Regulation Act, consumers and homebuyers were required to file complaints with either the National Consumer Dispute Redressed Commission or the Competition Commission of India. However, the RERA Act has provided consumers and homebuyers with protection and welfare against the business practices of builders concerning real estate property. When it comes to satisfying the requirements of dissatisfied homebuyers, there are a few factors that indicate which forum is the most suitable. Listed below are the points in question:

Period for filing application:

The RERA does not stipulate a time limit for the filing of any complaint against the government. The Consumer Protection Act, on the other hand, stipulates that the complaint must be submitted

within two years after the occurrence of the cause of action. As a result, if the real estate complaint is not filed within two years from the cause of action, then the complainant is unable to register a complaint before the Consumer Forum; the only available remedy is to file the complaint under the RERA.

Complaint filing

Anyone who feels that they have been aggrieved by the Real Estate Developer or the Builder is eligible to file a complaint by RERA. On the other hand, according to the Consumer Protection Act, the only individual who is permitted to make a complaint is themselves a consumer. Therefore, the only option available to a person who does not meet the criteria for the term "consumer" who has purchased a property for business purposes, or who is unsatisfied
with the developer, is to approach the Real Estate Regulatory Authority to have the issue resolved according to their standards.

Pecuniary Jurisdiction

According to the Consumer Protection Act, pecuniary jurisdiction and limitations have been prescribed, and they are dependent on the worth of the property. If, for instance, the value of the complainant's property is greater than one crore, then he is required to file a complaint with the State Commission. Meanwhile, if the value of the property is greater than ten crores, then the complainant is required to file a complaint with the National Commission. In contrast, the Real Estate Regulatory Act does not impose any financial restrictions on immovable property depending on its valuation. The complaint can therefore be submitted to the Regulatory Authority of the state in which the property is located, which is the state in which the property is located.

Penalty

Pecuniary compensation is the only form of compensation that can be granted by the Consumer Protection Act. It does not include any preventative actions, nor does it include any provisions for the performance or imprisonment of the party that is in default. However, the RERA is the only entity that has the authority to issue certain remedies that do not involve compensation. Additionally, it has the authority to inflict imprisonment for a period of up to three years on real estate developers and builders who have defaulted on their payments. If the consumer is just looking for compensatory relief, then the consumer forum is the appropriate place they should approach. Filing a complaint with RERA is the better choice, however, if the buyer is searching for a solution that may discourage them from purchasing the property.

Commercial Disputes

Unlike the RERA, which does not impose any restrictions on the adjudication of commercial matters, the Consumer Forum does not deal with business issues throughout its proceedings. If
an individual does not meet the criteria for the term "Consumer" as outlined in the Consumer Protection Act, the individual has the option of filing a complaint with the Real Estate Regulatory Authority as a means of redress.

Period for Disposal of Complaint

As to the RERA, the time frame for the determination of a complaint is sixty days, beginning from the date when the complaint was received. The Act stipulates that every complaint must be resolved as quickly as feasible and within three months from the day that notice was received from the other party beginning with the date that the complaint was received.

CONCLUSION AND SUGGESTIONS

The Real Estate Disputes Act is a major piece of legislation that imposes time-bound requirements on developers and promoters to regulate disputes that occur within the real estate sector. This Act was a long-awaited piece of legislation that was desperately required to safeguard purchasers from being taken advantage of. Through the implementation of this legislation, consumers and homebuyers are safeguarded against the unethical business practices of developers as well as delays in the handover of possession. Additionally, this legislation offers an efficient process for the resolution of grievances. Consumers

and homebuyers are the target audience for the Real Estate Regulatory Act. Since the passage of this new Act, there has been increased accountability and openness in real estate transactions. The property buyers have been able to obtain possession of their properties promptly and submit complaints against the developers if any were necessary. For home buyers, the Act has made it possible for them to seek justice from the Real Estate Authority within three months of the day on which they filed their complaint. These remedies are both prompt and equitable.

Dr. Santosh Kumar Sharma
(Ph.D)
M. COM, MBA,PGDIM MAT. LLB,
LLM WITH PhD.
Mo.-9899882948-
santosh.sharma2013@gmail.com
H. No. 5113 Sector- 03,
Faridabad (121004)

39

Gender Differences in Health Promoting Lifestyle Behaviours Among College Students

Surjit Singh, Prachi Malik, Sakshi Kajla

Abstract

Purpose. This study investigates the influence of gender and sports participation on six domains of health-promoting lifestyle behaviors: health responsibility, physical activity, nutrition, spiritual growth, interpersonal relationships, and stress management.

Materials and methods. A cross-sectional design was employed with 185 participants. A two-way ANOVA was used to assess the effects of gender and sports participation on each lifestyle domain.

Results. Gender significantly influenced health responsibility, with females demonstrating higher engagement than males ($F(1,183) = 5.69$, $p = 0.05$). Sports participation was significantly associated with greater physical activity levels across both genders ($F(1,183) = 29.18$, $p < 0.01$). A marginal gender effect was found for stress management ($F(1,183) = 3.20$, $p = 0.08$), while nutrition, spiritual growth, and interpersonal relationships showed no significant variation by gender or sports participation.

Conclusions. Gender appears to influence health responsibility and possibly stress management, whereas sports participation is a strong predictor of physical activity. However, other psychosocial or environmental factors likely contribute to these health behaviors beyond gender and athletic involvement.

Keywords: Gender, Sports Participation, Health Responsibility, Physical Activity, Stress Management, Lifestyle Behaviors

Introduction

University life is a crucial phase in a student's personal development, marking their transition into adulthood and the formation of lifestyle habits that can have lasting effects on their health and well-being. During this period, students gain greater independence, face academic pressures, and navigate various social dynamics, all of which can impact their physical, mental, and emotional health. As such, promoting health-conscious behaviors during these years is vital, not only for immediate well-being but also for establishing habits that support long-term health. The Health-Promoting Lifestyle Profile II (HPLP-II), developed by Walker et al. (1995), serves as an effective tool for assessing and understanding the health-promoting behaviors of university students. This reliable instrument evaluates health-related behaviors across six key domains: health responsibility, physical activity, nutrition, spiritual growth, interpersonal relationships, and stress management. By examining how students engage in these behaviors, the HPLP-II provides valuable insights into the factors that influence a healthy lifestyle in university life (Al-Kandari & Vidal, 2007; Al-Qahtani, 2019; Walker et al., 1995).Several factors influence healthpromoting behaviors, including gender, athletic involvement, and academic field of study. Research has shown that female students generally demonstrate higher levels of health responsibility and engage more frequently in healthpromoting behaviors compared to their male counterparts (Al-Kandari & Vidal, 2007; Al-Qahtani, 2019). However, the degree of these gender differences can vary according to cultural contexts. For instance, research conducted in Tanzania found that gender disparities in health behaviors were less pronounced, emphasizing the role of cultural factors in shaping health practices (James & Mwembezi, 2022). Additionally, students who participate in sports are more likely to adopt structured health behaviors, particularly with regard to physical activity, and consistently engage in wellness practices compared to their non-athletic peers (Ferron et al., 1999; Pope et al., 2015; Núñez-Rocha et al., 2020).This study aims to explore how gender and athletic participation influence health-promoting behaviors among university students, utilizing the HPLP-II framework. By examining these factors, the research seeks to provide a deeper understanding of the determinants of health behaviors during emerging adulthood and offer insights to help develop strategies for fostering healthier campus environments (Gore et al., 2020; Pender et al., 1990; Sun et al., 2024).

Materials and methods

Study participants: A total of 187 individuals participated in the study, comprising 100 males and 87 females. Participants were further categorized based on their involvement in sports, resulting in 104 sports

participants and 84 non-sports participants.

Study organization: Six dimensions of health-promoting lifestyle behaviors were assessed using standardized self-report instrumental:

i. Health Responsibilities: Questionnaire assesses individual health behavior and responsibility.
ii. Physical Activity: Accounts for self-reported frequency and intensity of physical activity.
iii. Nutrition: Survey evaluating dietary habits and nutritional practices.
iv. Spiritual Growth: Validated scale measuring personal and spiritual development.
v. Interpersonal Relationships: Questionnaire examining social interaction and relationship quality.
vi. Stress Management: Survey assessing strategies for coping with stress.

Data were collected through an online survey platform. Participants provided informed consent prior to participation, and confidentiality was ensured throughout the process. All procedures adhered to ethical research guidelines.

Statistical analysis: Descriptive statistics, including means, standard deviations, and standard errors, were computed for each subscale. To assess the effects of gender and sports participation on health-related behaviors, two-way analysis of variance (ANOVA) were conducted for each outcome variable. Both main and interaction effects were examined. R-squared values were reported to estimate the proportion of variance explained by each model. The significance threshold was set at p = 0.05. All analysis were conducted using SPSS version 25.

Results

The results of the two-way ANOVA analysis are presented below, examining the independent and interactive effects of gender and sports participation on various dimensions of health-promoting lifestyle behaviors.

Table 1. Descriptive analysis of Health Promoting Lifestyle Behaviour

Variable	Sports Person (Male)	Non-sports Person (Male)	Sports Person (Female)	Non-sports Person (Female)
Health Responsibilities	27.35 ± 4.56	27.75 ± 4.64	29.77 ± 3.87	28.78 ± 6.33
Physical Activity	26.35 ± 4.69	23.73 ± 5.11	26.28 ± 3.87	21.50 ± 4.83
Nutrition	27.44 ± 4.51	27.85 ± 2.86	27.80 ± 3.62	28.11 ± 3.90
Spiritual Growth	28.42 ± 3.76	28.29 ± 4.20	29.33 ± 4.33	29.16 ± 4.80
Inter Relation	27.39 ± 4.06	28.12 ± 3.52	28.71 ± 3.81	28.14 ± 4.26
Stress Management	24.15 ± 4.97	24.02 ± 3.89	25.08 ± 3.94	25.40 ± 4.37

Note: Data are presented as Mean ± Standard deviation.

The descriptive analysis examined mean scores and standard deviations across gender and sports participation groups for six domains of healthpromoting lifestyle behaviors.

Health Responsibilities

Female sports participants reported the highest levels of health responsibility (M = 29.77, SD = 3.87), followed by non-sports females (M = 28.78, SD = 6.33), male non-sports participants (M = 27.75, SD = 4.64), and male sports participants (M = 27.35, SD = 4.56). These results suggest that gender may play a more influential role than sports participation in shaping health responsibility, with females—especially those involved in sports— reporting the highest engagement in health-responsible behaviors.

Physical Activity

Notable differences emerged based on sports participation. Male sports participants reported higher physical activity (M = 26.35, SD = 4.69) compared to their non-sports counterparts (M = 23.73, SD = 5.11). Similarly, female sports participants showed elevated activity levels (M = 26.28, SD = 3.87) relative to non-sports females (M = 21.50, SD = 4.83). These patterns underscore the substantial impact of sports engagement on physical activity across both genders.

Nutrition

Minimal differences were observed in nutrition scores. Male sports participants reported a mean of 27.44 (SD = 4.51), compared to 27.85 (SD = 2.86) for non-sports males. Female sports participants scored 27.80 (SD = 3.62), and non-sports females 28.11 (SD = 3.90). These findings suggest that nutritionrelated behaviors are relatively stable and appear unaffected by sports participation or gender.

Spiritual Growth

Female sports participants again reported the highest spiritual growth (M = 29.33, SD = 4.33), closely followed by non-sports females (M = 29.16, SD = 4.80). Males showed slightly lower scores, with sports participants at 28.42 (SD = 3.76) and non-sports males at 28.29 (SD = 4.20). Although the differences are not statistically significant, they point toward a potential gender influence on spiritual development, particularly

among females engaged in sports.

Interpersonal Relationships

Female sports participants had the highest mean score in interpersonal relationships (M = 28.71, SD = 3.81), followed by non-sports females (M = 28.14, SD = 4.26). Male sports participants reported lower scores (M = 27.39, SD = 4.06), while non-sports males slightly surpassed them (M = 28.12, SD = 3.52). These results suggest a minor trend where sports participation might enhance interpersonal skills more among females, although the differences remain non-significant.

Stress Management

Stress management scores were relatively uniform across groups. Female sports participants reported a mean of 25.08 (SD = 3.94), while non-sports females scored 25.40 (SD = 4.37). Among males, sports participants had a mean of 24.15 (SD = 4.97), and non-sports males scored 24.02 (SD = 3.89). While female sports participants exhibited slightly better stress management, the differences were not significant, suggesting a limited role of sports participation in influencing this domain.

Table 2. ANOVA Results for Health Promoting Lifestyle Behaviour

Table 2. ANOVA Results for Health Promoting Lifestyle Behaviour

Variable	Source	df	Type III SS	F	p	R^2
Health Responsibilities	Gender	1	136.34	5.69	0.05	0.038
	Sports	1	4.01	0.16	0.68	
	Gender × Sports	1	22.18	0.92	0.33	
Physical Activity	Gender	1	60.48	2.80	0.09	0.159
	Sports	1	628.97	29.18	0.05	
	Gender × Sports	1	53.63	2.48	0.11	
Nutrition	Gender	1	4.46	0.30	0.58	0.004
	Sports	1	6.13	0.41	0.52	
	Gender × Sports	1	0.10	0.00	0.93	
Spiritual Growth	Gender	1	36.41	2.01	0.15	0.011
	Sports	1	1.01	0.05	0.81	
	Gender × Sports	1	0.01	0.00	0.97	
Interpersonal Relationships	Gender	1	20.61	1.32	0.25	0.016
	Sports	1	0.30	0.02	0.88	
	Gender × Sports	1	19.35	1.24	0.26	
Stress Management	Gender	1	61.43	3.20	0.075	0.018
	Sports	1	0.40	0.02	0.88	
	Gender × Sports	1	2.25	0.11	0.73	

A two-way ANOVA was conducted to assess the effects of gender and sports participation on six dimensions of health-promoting lifestyle behaviors: health responsibilities, physical activity, nutrition, spiritual growth, interpersonal relationships, and stress management.

For **health responsibilities**, a significant main effect of gender was observed, $F(1, 183) = 5.69$, $p = .05$, with females reporting higher levels of engagement. No significant effects were found for sports participation ($F(1, 183) = 0.16$, $p = .68$) or the gender × sports interaction ($F(1, 183) = 0.92$, $p = .33$).

In **physical activity**, sports participation had a strong and statistically significant main effect ($F(1, 183) = 29.18$, $p = .05$), indicating higher activity levels among participants engaged in sports. The effect of gender approached significance ($F(1, 183) = 2.80$, $p = .09$), while the interaction term was not significant ($F(1, 183) = 2.48$, $p = .11$).

No significant effects were found for **nutrition**. Gender ($F(1, 183) = 0.30$, $p = .58$), sports participation ($F(1, 183) = 0.41$, $p = .52$), and their interaction ($F(1, 183) = 0.00$, $p = .93$) were all non-significant.

For **spiritual growth**, neither gender ($F(1, 183) = 2.01$, $p = .15$), sports participation ($F(1, 183) = 0.05$, $p = .81$), nor the interaction term ($F(1, 183) = 0.00$, $p = .97$) reached statistical significance.

Analysis of **interpersonal relationships** showed no significant main or interaction effects. Gender ($F(1, 183) = 1.32$, $p = .25$), sports participation ($F(1, 183) = 0.02$, $p = .88$), and the interaction ($F(1, 183) = 1.24$, $p = .26$) were all nonsignificant.

Finally, for **stress management**, gender showed a marginal effect that did not reach statistical significance ($F(1, 183) = 3.20$, $p = .075$), suggesting a possible trend toward greater stress regulation among females. Neither sports participation ($F(1, 183) = 0.02$, $p = .88$) nor the interaction effect ($F(1, 183) = 0.11$, $p = .73$) was significant.

In summary, gender significantly influenced health responsibility behaviors, and sports participation strongly predicted physical activity. No other main or interaction effects were statistically significant,

suggesting that the impact of gender and sports engagement may be domain-specific within the broader context of health-promoting lifestyles.

Discussion

The current study investigated the influence of gender and sports participation on six key aspects of health-promoting lifestyle behaviors: health responsibility, physical activity, nutrition, spiritual growth, interpersonal relationships, and stress management. The findings revealed domain-specific effects, with gender and sports participation each exerting influence in distinct ways. A significant gender difference was observed in health responsibility, with female students reporting higher scores than their male counterparts. This result aligns with findings by Al-Qahtani (2019), Ghanim et al. (2021), and Fashafsheh et al. (2021), who reported that female students were more inclined toward personal health management and preventative health behaviors, possibly due to sociocultural expectations and health awareness. Similarly, Al-Kandari and Vidal (2007) found that women tend to be more proactive in monitoring their health status and engaging in health-promoting routines. In contrast, sports participation emerged as a strong and consistent predictor of physical activity, regardless of gender. Students who actively participated in sports reported significantly higher levels of physical activity than non-athletes, supporting conclusions from Ferron et al. (1999) and Christian et al. (2023), who noted that athletic involvement is closely associated with more active and health-conscious lifestyles. Nacar et al. (2014) and Hansell et al. (2021) further corroborated that physical activity through structured sports can serve as a foundation for promoting other positive health behaviors among university students. Contrary to expectations, the study did not find significant differences in nutrition based on gender or sports participation. This diverges from the findings of Almutairi (2020), Mehri et al. (2016), and Karadag and Yıldırım (2010), who observed better dietary behaviors among physically active and female students. The lack of significant differences in this domain might be attributed to contextual factors such as limited access to nutritious food, differences in dietary knowledge, or the influence of academic disciplines. Amiri et al. (2023) and Chao (2023) emphasized that students enrolled in health-related programs often exhibit more health-conscious eating habits due to greater exposure to nutritional education. In the domain of spiritual growth, no significant differences were found across gender or sports participation groups, although females displayed slightly higher scores. This finding partially contradicts earlier research by Kim and Oh (2021) and James et al. (2022), who reported stronger spiritual engagement and emotional resilience among female students, often linked to better coping with stress and life challenges. Similarly, no significant gender or sports-related differences were observed in interpersonal relationships. This contrasts with studies by James et al. (2022) and NúñezRocha et al. (2020), which highlighted the role of gender and academic background in shaping relational dynamics and social interaction patterns. These differences could reflect cultural or contextual variations in how interpersonal relationships are perceived and reported. Regarding stress management, the study found a marginal gender effect, with female students reporting slightly better stress coping strategies. This trend is consistent with the findings of Sun et al. (2024), Kim and Oh (2021), and Sakamaki et al. (2005), who noted that female students often engage in more adaptive emotional regulation techniques. However, sports participation did not significantly affect stress management outcomes in this study. This finding diverges from the work of Gore et al. (2020) and Hansell et al. (2021), who emphasized the psychological benefits of physical activity, including stress reduction and improved mood. The inconsistencies observed in nutrition, interpersonal relationships, and stress management may be due to unexamined variables such as mental health conditions (Sun et al., 2024), academic pressure (Armand et al., 2021), perceived social

support (Núñez-Rocha et al., 2020), self-efficacy (Walker et al., 1987; Pender et al., 1990), and health literacy (Kim & Oh, 2021).

Moreover, the cross-sectional nature of the study limits causal interpretation, and the reliance on self-reported data introduces the risk of social desirability and recall bias. As pointed out by Al-Qahtani (2019) and Didarloo and Alizadeh (2015), sociocultural and institutional factors also play a role in shaping health behaviour outcomes and could account for some of the variances in findings. Despite these limitations, the study adds valuable evidence to the literature on health-promoting lifestyles among university students. The results emphasize the need for tailored interventions — particularly those focused on increasing physical activity through sports participation and enhancing health responsibility among male students. The absence of significant interaction effects further suggests that gender and sports participation independently influence health behaviors rather than operating synergistically. Future studies should consider longitudinal designs and integrate additional psychosocial variables such as motivation, academic discipline (Sadeghi et al., 2023), and access to wellness resources to develop more comprehensive health promotion strategies.This study's cross-sectional design limits causal inferences, as it captures data at only one point in time. The use of self-reported measures may introduce biases, such as social desirability or recall bias (Kim & Oh, 2021).

Additionally, the study's focus on a single institution and geographic area restricts the generalizability of the findings (Almutairi, 2020). Important factors like mental health, academic stress, and health literacy were not considered, which may explain the low explanatory power in the regression models (Sun et al., 2024; Pender et al., 1990). Finally, the study's quantitative approach may not fully capture the complexities of students' health behaviors, and qualitative insights could provide deeper understanding (Gore et al., 2020).

Conclusions

The present study examined the effects of gender and sports participation on various domains of health-promoting lifestyle behaviors among university students. Findings indicated that gender had a significant influence on health responsibility (F (1,183) = 5.69, p = 0.05), with females reporting higher engagement. In contrast, sports participation significantly predicted physical activity levels (F (1,183) = 29.18, p < 0.01), regardless of gender. No significant main or interaction effects were observed for nutrition, spiritual growth, interpersonal relationships, or stress management, suggesting these domains may be influenced by other psychosocial or environmental factors not captured in this model.

Overall, the results underscore the selective impact of gender and physical activity engagement on specific health behaviors, emphasizing the need for targeted health promotion strategies that address both biological and behavioural determinants. The low to moderate R^2 values across models indicate that further research is warranted to explore additional predictors of health-promoting behaviors among university students.

Acknowledgment

The authors express their sincere gratitude to the participants who volunteered their time and contributed valuable insights to this research. Special thanks are extended to the university sports coordinators for facilitating access to athlete and non-athlete populations, and to the statistical consulting team for their guidance during data analysis.

Conflict of interest

The authors declare no conflict of interest.

References

Al-Kandari, F., & Vidal, V. L. (2007). Correlation of the health-promoting lifestyle, enrolment level, and academic performance of college of nursing students in Kuwait. *Nursing and Health Sciences, 9*(2), 112–119. https://doi.org/10.1111/j.1442-2018. 2007. 00219.x

Almutairi, K. M., Alonazi, W. B., Vinluan, J. M., Almigbal, T. H., Batais, M. A., Alodhayani, A.

A., Alsadhan, N., Tumala, R. B., Moussa, M., Aboshaiqah, A. E., & Alhoqail, R. I. (2018). Health promoting lifestyle of university students in Saudi Arabia: a cross-sectional assessment. *BMC public health*, *18*(1), 1093. https:// doi.org/ 10.1186/s12889-018-5999-z

Al-Qahtani M. F. (2019). Comparison of health-promoting lifestyle behaviours between female students majoring in healthcare and non-healthcare fields in KSA. *Journal of Taibah University Medical Sciences*, *14*(6), 508–514. https://doi.org/10.1016/j.jtumed.2019.10.004

Amiri, M., Raei, M., Sadeghi, E., Keikavoosi-Arani, L., & Khosravi, A. (2023). Health-promoting lifestyle and its determining factors among students of public and private universities in Iran. *Journal of education and health promotion, 12*, 239. https://doi.org/10.4103/jehp.jehp_963_22

Armand, M. A., Biassoni, F., & Corrias, A. (2021). Sleep, Well-Being and Academic Performance: A Study in a Singapore Residential College. *Frontiers in psychology, 12*, 672238. https://doi.org/10.3389/fpsyg.2021.672238

Christian DS, Kagathra KA, Shah DD. (2023). Health-promoting lifestyle behaviours of nursing students in a tertiary care institute of a city in western India. *Southeast Asian J Health Prof, 6*(2), 28-32 https://doi.org/10.18231/j.sajhp.2023.007

Chao, D. P. (2023). Health-promoting lifestyle and its predictors among healthrelated and non-health-related university students in Taiwan: A crosssectional quantitative study. *BMC Public Health, 23*, 827. https://doi.org/10.1186/s12889-023-15760-2

Didarloo, A., & Alizadeh, M. (2016). Health-Related Quality of Life and its Determinants Among Women With Diabetes Mellitus: A Cross-Sectional Analysis. *Nursing and midwifery studies*, *5*(1), e28937. https://doi.org/10.17795/nmsjournal28937

Fashafsheh, I., Al-Ghabeesh, S. H., Ayed, A., Salama, B., Batran, A., & Bawadi, H. (2021). Health-Promoting Behaviors among Nursing Students: Palestinian Perspective. *Inquiry : a journal of medical care organization, provision and financing, 58*, 469580211018790. https://doi.org/10.1177/00469580211018790

Ferron, C., Narring, F., Cauderay, M., & Michaud, P. A. (1999). Sport activity in adolescence: associations with health perceptions and experimental behaviours. *Health education research*, *14*(2), 225–233. https:// doi.org /10.1093 /her/14.2.225

Ghanim, M., Al-Othman, N., Rabayaa, M., & Alqaraleh, M. (2021). Gender differences in health-promoting behaviors and psychological well-being of Palestinian medical students based on the HPLP II. *Palestinian Medical and Pharmaceutical Journal, 7*(2), Article 11 https:// doi.org/10.59049/2790-0231.1092.

Gore, M. N., Menon, K. C., Safai, A. A., Shukla, S., & Yeravdekar, R. (2020). Determinants of health-promoting lifestyles amongst Indian University students. *International Journal of Health Promotion and Education, 59*(3), 135–144. https:// doi.org/ 10.1080/ 14635240.2020.1726202

Hansell, A. H., Giacobbi, P. R., Jr, & Voelker, D. K. (2021). A Scoping Review of Sport-Based Health Promotion Interventions With Youth in Africa. *Health promotion practice, 22*(1), 31–40. https://doi.org/10.1177/1524839920914916

James, S., Mwembezi, G., & Chusi, T. (2022). Gender Differences in Healthy Lifestyle Behaviours: A Case of Students at the Institute of Rural

Development Planning in Dodoma, Tanzania. *European Journal of Health Sciences, 7*(2), 37–46. https://doi.org/10.47672/ejhs.1043

Karadag, M., & Yıldırım, N. (2010). Health Behaviors in Health Sciences University Students in Turkey. *Social Behavior and Personality: an international journal, 38*, 43–51. https://doi.org/10.2224/sbp.2010.38.1.43

Kim, S., & Oh, J. (2021). The Relationship between E-Health Literacy and Health-Promoting Behaviors in Nursing Students: A Multiple Mediation Model. *International journal of environmental research and public health, 18*(11), 5804. https:// doi.org/ 10.3390/ijerph18115804

Mehri, A., Solhi, M., Garmaroudi, G., Nadrian, H., & Sighaldeh, S. S. (2016). Health Promoting Lifestyle and its Determinants Among University Students in Sabzevar, Iran. *International journal of preventive medicine, 7*, 65. https://doi.org/10.4103/2008-7802.180411

Nacar, M., Baykan, Z., Cetinkaya, F., Arslantas, D., Ozer, A., Coskun, O., Bati, H., Karaoglu, N., Elmali, F., & Yilmaze, G. (2014). Health promoting lifestyle behaviour in medical students: a multicentre study from Turkey. *Asian Pacific journal of cancer prevention : APJCP, 15*(20), 8969–8974. https://doi.org/10.7314/apjcp.2014.15.20.8969

Núñez-Rocha, G. M., López-Botello, C. K., Salinas-Martínez, A. M., ArroyoAcevedo, H. V., Martínez-Villarreal, R. T., & Ávila-Ortiz, M. N. (2020). Lifestyle, Quality of Life, and Health Promotion Needs in Mexican University Students: Important Differences by Sex and Academic Discipline. *International journal of environmental research and public health, 17*(21), 8024. https:// doi.org /10.3390 / ijerph 17218024

Pender, N. J., Murdaugh, C., & Parsons, M. A. (2015). *Health Promotion in Nursing Practice*. 7th Edition, Pearson Education Inc., London.

Pender, N. J., Walker, S. N., Sechrist, K. R., & Frank-Stromborg, M. (1990). Predicting health-promoting lifestyles in the workplace. *Nursing research, 39*(6), 326–332.

Sakamaki, R., Toyama, K., Amamoto, R., Liu, C. J., & Shinfuku, N. (2005). Nutritional knowledge, food habits and health attitude of Chinese university students--a cross sectional study. *Nutrition journal, 4*, 4. https://doi.org/10.1186/1475-2891-4-4

Sun, C., Zhu, Z., Zhang, P., Wang, L., Zhang, Q., Guo, Y., Guo, L., Li, Y., Wang, P., Hu, B., Liu, M., Duan, J., Wang, Y., Wang, Z., & Qin, Y. (2024). Exploring the interconnections of anxiety, depression, sleep problems and health-promoting lifestyles among Chinese university students: a comprehensive network approach. *Frontiers in psychiatry, 15*, 1402680. https://doi.org / 10.3389/fpsyt.2024.1402680

Sun, C., Zhu, Z., Zhang, P., Wang, L., Zhang, Q., Guo, Y., Guo, L., Li, Y., Wang, P., Hu, B., Liu, M., Duan, J., Wang, Y., Wang, Z., & Qin, Y. (2024). Exploring the interconnections of anxiety, depression, sleep problems and health-promoting lifestyles among Chinese university students: a comprehensive network approach. *Frontiers in psychiatry, 15*, 1402680. https://doi.org/10.3389/fpsyt.2024.1402680

Walker, S. N., Sechrist, K. R., & Pender, N. J. (1987). The Health-Promoting Lifestyle Profile: development and psychometric characteristics. *Nursing research, 36*(2), 76–81.

WHO. (2020). Health promotion: Overview. *World Health Organization*. https://www.who.int/health-topics/health-promotion

Information about the authors:

Surjit Singh

Assistant Professor

Surjeet7772@gmail.com

S.N.S.M.K Govt. College

Behrampur, Bapauli

Prachi Malik

prachimalik019@gmail.com

Indira Gandhi Institute of Physical Education and Sports Sciences, University of Delhi, Benito Juarez Marg, South Campus, South Moti Bagh, New Delhi, Delhi 110021, India

Sakshi Kajla

kajlasakshi524@gmail.com

Indira Gandhi Institute of Physical Education and Sports Sciences, University of Delhi, Benito Juarez Marg, South Campus, South Moti Bagh, New Delhi, Delhi 110021, India

New Frontiers in Literary Criticism: Exploring Emerging Paradigms in 21st-Century Literature

A Critical Analysis ofInterdisciplinary Methods, Ecological Epistemologies, and Post-Humanist Discourse

Mridul Tiwari

ABSTRACT

The twenty-first century has witnessed an unprecedented transformation in literary studies, driven by anthropogenic climate crisis, rapid technological convergence, cognitive neurosciences, and expanding understandings of embodiment and non-human agency. Traditional humanist frameworks of literary interpretation are no longer sufficient to interrogate the complex realities of the contemporary Anthropocene. This paper provides a comprehensive theoretical and analytical examination of seven emerging sub-fields within literary criticism: Climate Fiction (Cli-Fi), Medical Humanities, Cognitive Literary Studies, Memory Studies, Cyber Literature, Posthumanism, and Blue Humanities. By mapping their theoretical origins, core methodological shifts, and key literary exponents, this study highlights how contemporary literary scholarship transcends traditional text-centric limits to establish dynamic interdisciplinary dialogues with science, technology, medicine, and marine ecology.

Keywords: *Anthropocene, Climate Fiction, Medical Humanities, Cognitive Poetics, Posthumanism, Blue Humanities, Cybertextuality.*

1.Introduction

Literary criticism in the early twenty-first century is experiencing a paradigm shift as profound as the linguistic and post-structuralist turns of the twentieth century. Where high theory once foregrounded textual autonomy, discourse analysis, and the deferred nature of meaning, contemporary literary scholarship is marked by a resolute turn toward materiality, embodied cognition, planetary ecology, and digital ontology. The neat demarcation between the humanities and hard sciences has dissolved in response to existential crises such as climate breakdown, algorithmic surveillance, global health panics, and the blurring boundary between human consciousness and artificial intelligence.

This article examines seven critical frontiers that have reconfigured modern literary inquiry: Climate Fiction (Cli-Fi), Medical Humanities, Cognitive Literary Studies, Memory Studies, Cyber Literature, Posthumanism, and Blue Humanities. Each discipline challenges anthropocentric, eurocentric, or purely textual assumptions, offering scholars fresh frameworks to evaluate narrative form, authorship, ethics, and human experience.

2. CLIMATE FICTION (CLI-FI)

Climate Fiction, commonly abbreviated as Cli-Fi—a term coined by media activist Dan Bloom—refers to literature that directly confronts global warming, ecological destruction, and the socio-political transformations of the Anthropocene. Unlike traditional science fiction set in distant futuristic galaxies, climate fiction is anchored in immediate or near-future earth realities, reflecting scientific projections of rising sea levels, biodiversity loss, extreme weather, and resource wars.

Theoretically, Cli-Fi draws heavily from Timothy Morton's concept of "hyperobjects"—phenomenological entities such as global warming that are so massively distributed in time and space that they defy traditional human modes of perception and narrative representation. Amitav Ghosh, in his landmark theoretical work *The Great Derangement: Climate Change and the Unthinkable* (2016), argues that the modern bourgeois novel has historically banished environmental catastrophes to the margins of improbable genre fiction, rendering mainstream literature complicit in ecological blindness. Cli-Fi shatters this reticence by placing ecological crisis at the center of narrative gravity.

Literary exemplars include Richard Powers' Pulitzer Prize-winning novel *The Overstory* (2018), which utilizes a non-linear network narrative to mirror arboreal communication networks, and Kim Stanley Robinson's *The Ministry for the Future* (2020), which bridges climate economics, policy, and speculative realism. Cli-Fi forces readers to recalibrate narrative scale—shifting focus from individual psychological drama to deep geological time and collective species survival.

3.MEDICAL HUMANITIES

The discipline of Medical Humanities sits at the intersection of medicine, narrative theory, bioethics, and human pathology. Emerging as a critical counterweight to the hyper-technological and clinical biomedical model, Medical Humanities asserts that illness, suffering, and healing are fundamentally interpretive, social, and narrative experiences.

A central pillar of this field is Rita Charon's theory

of "Narrative Medicine." Charon posits that effective clinical practice requires narrative competence—the ability to absorb, interpret, and be moved by the stories of illness told by patients. Rather than viewing the patient merely as a collection of symptoms to be diagnosed, narrative medicine emphasizes illness memoirs (pathographies), patient-doctor dialogues, and poetic representations ofmortality.

Critical works such as Arthur Frank's *The Wounded Storyteller* (1995) categorize illness narratives into quest, restitution, and chaos stories, illuminating how individuals reconstruct fractured identity through storytelling. Contemporary texts like Paul Kalanithi's *When Breath*

4. COGNITIVE LITERARY STUDIES

Cognitive Literary Studies (also known as Cognitive Poetics or Cognitive Narratology) bridges literary theory and the cognitive sciences, including evolutionary psychology, linguistics, and neuroscience. Moving beyond Freudian psychoanalysis, cognitive critics investigate how the human brain processes narrative structure, spatial imagery, character empathy, and metaphorical language.

Key theoretical frameworks include Theory of Mind (ToM)

—the cognitive capacity to attribute mental states to oneself and others—and conceptual metaphor theory pioneered by George Lakoff and Mark Johnson. Literary scholars such as Lisa Zunshine (*Why We Read Fiction: Theory ofMind and the Novel*) demonstrate that reading literature is a complex mental exercise in tracking multiple embedded perspectives and social inferences.*Becomes Air* (2016) and Kazuo Ishiguro's *Never Let Me Go*

(2005) examine bodily vulnerability, caregiving ethics, and the commodification of human organs, establishing Medicalon human consciousness acrosscultural boundaries.Humanities as a vital site for ethical and literary inquiry.

Emerging Field Primary Theoretical Anchor Core Analytical LensRepresentative Texts / ExponentsClimate Fiction (Cli-Fi) Anthropocene Theory,

Hyperobjects (Morton)Planetary scale, ecological crisis, non-human time*The Overstory* (Powers), A. GhoshMedical Humanities Narrative Medicine (Charon),

PathographyEmbodied suffering, clinical dialogue, care ethics*When Breath Becomes Air*

(Kalanithi)**Cognitive Studies**Theory of Mind (ToM),

Conceptual MetaphorMental modeling, empathy, neuro-poeticsL. Zunshine, Mark Turner, P.

Hogan**Memory Studies** Cultural Memory (Assmann),

Multidirectional MemoryTrauma, collective history, postmemoryM. Hirsch, *Maus*

(Spiegelman), W.G. SebaldFurthermore, cognitive studies examine the role of mirror neurons in generating emotional empathy during literary immersion. By analyzing how readers construct mental models of narrative worlds, cognitive poetics provides empirical and theoretical insight into why stories exert such a profound hold

Becomes Air (2016) and Kazuo Ishiguro's *Never Let Me Go* (2005) examine bodily vulnerability, caregiving ethics, and the commodification of human organs, establishing Medical Humanities as a vital site for ethical and literary inquiry.

on human consciousness across cultural boundaries.

Emerging Field	Primary Theoretical Anchor	Core Analytical Lens	Representative Texts / Exponents
Climate Fiction (Cli-Fi)	Anthropocene Theory, Hyperobjects (Morton)	Planetary scale, ecological crisis, non-human time	*The Overstory* (Powers), A. Ghosh
Medical Humanities	Narrative Medicine (Charon), Pathography	Embodied suffering, clinical dialogue, care ethics	*When Breath Becomes Air* (Kalanithi)
Cognitive Studies	Theory of Mind (ToM), Conceptual Metaphor	Mental modeling, empathy, neuro-poetics	L. Zunshine, Mark Turner, P. Hogan
Memory Studies	Cultural Memory (Assmann), Multidirectional Memory	Trauma, collective history, postmemory	M. Hirsch, *Maus* (Spiegelman), W.G. Sebald

1. MEMORY STUDIES

Memory Studies in literary criticism investigates how individual personal recollections and collective historical traumas are constructed, transmitted, altered, and commemorated through narrative forms. Transcending basic psychological definitions of memory, this field treats memory as a dynamic cultural, political, and textual act.

Theoretical anchors include Jan and Aleida Assmann's distinction between "communicative memory" (everyday short-term generational memory) and "cultural memory"

concept of "Postmemory"—the relationship that the generation after bears to the personal, collective, and cultural trauma of those who came before, transmitted through stories, images, and behaviors rather than direct experience.

Additionally, Michael Rothberg's concept of "Multidirectional Memory" argues against competitive memory frameworks, showing how different historical traumas (such as the Holocaust, colonial violence, and slavery) cross-pollinate and articulate each other in postcolonial literature. Authors like W.G. Sebald (*Austerlitz*)

and Toni Morrison (*Beloved*) epitomize memory studies by incorporating visual archival fragments and spectral hauntings to reveal th

2.CYBER LITERATURE & DIGITAL HUMANITIES

The advent of computing technologies, hypertexts, social media networks, and generative artificial intelligence has radically altered the nature of textuality, reader interaction, and narrative medium. Cyber Literature (or Electronic Literature) encompasses born-digital works that cannot be reproduced in print without losing their essential structural and interactive characteristics.

Espen Aarseth's foundational theory of "Ergodic Literature" and "Cybertext" forms the theoretical spine of this field. In ergodic literature, non-trivial effort is required by the reader to traverse the text, transforming the traditionally passive consumer into an active "scriptor" or co-creator. Cyber literature ranges from hypertext fiction with non-linear hyper-links (such as Michael Joyce's *afternoon, a story*) to interactive fiction, Twitter/X thread novels, generative poetry bots, and immersive VR narratives.

Furthermore, Cyber Literature interrogates how digital algorithms and social media platforms reframe human language, identity, and authorial authenticity, raising profound questions regarding where a text begins and ends in a networked hyper-connected world.

3. POSTHUMANISM

Posthumanism represents a decisive philosophical critique of traditional Enlightenment Humanism, which positioned the rational, white, Western human male as the central measure of all things. In literary criticism, critical posthumanism destabilizes rigid binary oppositions: human/machine, human/animal, natural/artificial, and mind/body.

Prominent theorists such as N. Katherine Hayles (*How We Became Posthuman*), Donna Haraway (*A Cyborg Manifesto*), and Rosi Braidotti have reconfigured critical theory by dismantling anthropocentrism. Haraway's concept of the "cyborg" serves as a metaphor for blurred boundaries between organic organisms and technological artifacts, rejecting notions ofessentialist purity.

In contemporary literary texts, posthumanist critique analyzes cyborgs, artificial intelligences, genetic modifications, and trans-species alliances. Works like Kazuo Ishiguro's *Klara and the Sun* (2021) examine empathy and consciousness through the eyes of an Artificial Friend, forcing readers to question the ethical boundaries of personhood and human privilege.

4. BLUE HUMANITIES

While ecocriticism historically focused on terrestrial landscapes—forests, mountains, wilderness, and agricultural fields—the emerging domain of"Blue Humanities" (or oceanic ecocriticism) directs critical attention toward the world's oceans, seas, rivers, and aquatic ecosystems.

Scholars such as Steve Mentz (*Shipwreck Modernity: Ecologies of Disaster*) and Hester Blum argue for a "wet globalization" and "oceanic turn" in cultural studies. The ocean is re-conceptualized not merely as a passive surface for human trade, imperial transport, or romantic contemplation, but as a dynamic, volatile, and non-human agency that shapes human history, literature, and climate regulation.

Blue Humanities interrogates texts ranging from Herman Melville's *Moby-Dick* to contemporary post-colonial oceanic poetry, examining middle passage trans-atlantic slave narratives, marine pollution, plastic waste, and deep-sea extraction. It offers a watery, fluid lens that challenges territorial, border-bound, and nation-state literary frameworks.

5.SYNTHESIS & INTERDISCIPLINARY SYNERGIES

The seven emerging fields examined in this study—Climate Fiction, Medical Humanities, Cognitive Studies, Memory Studies, Cyber Literature, Posthumanism, and Blue Humanities—do not exist in isolated academic silos. Rather, they form an interconnected web of contemporary critical inquiry that responds directly to the complex, hybrid crises of the twenty-first century.

For example, a posthumanist reading of a climate fiction novel often incorporates Blue Humanities frameworks to analyze ocean acidification alongside cognitive poetics to study reader empathy toward non-human species. Similarly, Medical Humanities and Memory Studies converge in pathographies dealing with neurodegenerative conditions like Alzheimer's disease,

where cognitive theories of mind illuminate textual representations ofmemory loss.

These theoretical intersections demonstrate that literary study in the modern era is no longer a insular exercise in aesthetic appraisal. Instead, literary scholarship serves as a vital interdisciplinary arena where scientific data, technological evolution, ecological ethics, and human experience meet to forge new ways of understanding our rapidly shifting world.

1 0. CONCLUSION

As we navigate an era defined by ecological instability, technological singularity, and unprecedented global interconnectivity, literary criticism must continuously expand its interpretive vocabularies. The emerging paradigms outlined in this paper reflect a vibrant, expanding discipline that remains deeply committed to ethical engagement, narrative rigor, and creative synthesis.

By breaking down traditional boundaries between text and context, science and art, human and non-human, these seven fields ensure that literary studies will remain central to understanding the urgent existential questions of the 21 st century and beyond.

WORKS CITED & REFERENCES

Aarseth, Espen J. *Cybertext: Perspectives on Ergodic Literature*. Johns Hopkins UP, 1997.

Assmann, Aleida. *Cultural Memory and Western Civilization: Functions, Media, Archives*. Cambridge UP, 2011 .

Blum, Hester. "The Oceanic Turn in Environmental Humanities." *Configurations*, vol. 20, no. 1 , 2012, pp. 25-35.

Braidotti, Rosi. *The Posthuman*. Polity Press, 2013.

Charon, Rita. *Narrative Medicine: Honoring the Stories of Illness*. Oxford UP, 2006.

Frank, Arthur W. *The Wounded Storyteller: Body, Illness, and Ethics*. University of Chicago Press, 1995.

Ghosh, Amitav. *The Great Derangement: Climate Change and the Unthinkable*. University of Chicago Press, 2016.

Haraway, Donna J. *Simians, Cyborgs, and Women: The Reinvention ofNature*. Routledge, 1991 .

Hayles, N. Katherine. *How We Became Posthuman: Virtual Bodies in Cybernetics, Literature, and Informatics*. University of Chicago Press, 1999.

Hirsch, Marianne. *The Generation of Postmemory: Writing and Visual Culture After the Holocaust*. Columbia UP, 2012.

Ishiguro, Kazuo. *Klara and the Sun*. Faber & Faber, 2021 .

Mentz, Steve. *Shipwreck Modernity: Ecologies of Disaster in Early Modern English Literature*. University of Minnesota Press, 2015.

Morton, Timothy. *Hyperobjects: Philosophy and Ecology after the End ofthe World*. University of Minnesota Press, 2013.

Powers, Richard. *The Overstory*. W. W. Norton & Company, 2018.

Rothberg, Michael. *Multidirectional Memory: Remembering the Holocaust in the Age of Decolonization*. Stanford UP, 2009.

Zunshine, Lisa. *Why We Read Fiction: Theory ofMind and the Novel*. Ohio State UP, 2006.

Mridul Tiwari

MA 2nd year .

Department of English,

KS Saket Post Graduate College,

Ayodhya, Uttar Pradesh, India